जन्मशती-हीरक-स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष्य में:-

❀ काव्य-त्रिवेणी ❀

(जैनाचार्य श्री नानक वंश के तीन श्रमण-कवियों की कृतियों का संकलन)

वल्लभ मुनि "प्राज्ञ-किंकर"



पुस्तक — • काव्य-त्रिवेणी

रचनाकार — • स्व. स्वामीनाथ सद्गुरुदेव पूज्य प्रवर श्री धूलचन्दजी म. सा. 'रेणु'

• स्व. राजस्थान केसरी, महामहिम, प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री पन्नालालजी म. सा. 'प्राज्ञ'

• स्वाध्याय-शिरोमणि, मरुधर-छवि, आशुकवि प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री सोहनलालजी म. सा.

सम्पादक — • वल्लभ मुनि 'प्राज्ञ-किंकर'

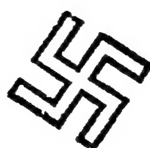
प्रकाशक — • श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा (राजस्थान) ३११०२१

संस्करण — • प्रथम एक हजार

समय — • ब्यावर वर्षावास वि. सं. २०४२

मूल्य — • १५ रुपये मात्र

मुद्रक — • मनोहर प्रिंटिंग प्रेस, ब्यावर (राज)



प्रकाशकीय :

नदी के दोनों किनारों मे नियतकालिक विरोध है । सहस्रों योजनों की अनेक वर्षों की यात्रा के पश्चात् भी ये किनारे कभी नही मिलते । नदी पर निर्मित सेतुवन्ध इन दोनो किनारों को मिलाने का उपक्रम है । ये सेतु एक किनारे को दूसरे किनारे की बात कहते है, उनकी बात सुनते है एवं परस्पर मेल कराते है ।

मानव-जीवन भी सरिता के दो तटों की भाति सासारिकता व आध्यात्मिकता के दो किनारो मे ग्रावद्ध है । मानव नदी की एक ग्रोर रहे संसार के किनारे से प्रस्थान कर ग्रध्यात्म के उस तट की सुखद अनुभूतियो को पाना चाहता है । इस तट पर खड़ा खड़ा वह उस तट के सुरम्य, अकल्पनीय किन्तु रहस्यपूर्ण दृश्यो से विमोहित होकर गमनोत्सुक भी है किन्तु नदी की विस्तीर्णता उसके चरणो की गति को कुंठित कर रही है । वह हत प्रभ, दिग्मूढ़-सा वना विचार मग्न हो गया है ।

इस समय उसका एक मात्र ग्रालम्बन है निर्मल, निश्छल भक्ति का दृढ सेतु । जो उसे ससार के छोर से उठाकर अध्यात्म की भूमि पर प्रतिष्ठापित करता है, प्राप्तव्य को प्राप्त करने में सहायता देता है । यही नही उसे प्राप्त कराकर उसकी हृदय-कलिकाग्रो को प्रस्फुटित भी कर देता है । भक्ति ही एक मात्र साधन है जो आध्यात्मिक पुरुषो के गुण-कीर्तन द्वारा हमारे मे निर्मल वैराग्य जगाती है, वन्दन-नमन द्वारा हमारे मे ऋजुभाव उत्पन्न करती है एवं ममत्त्व त्याग की भावना जगाकर हमारे अहकार-कुंजर का विनाश करती है । पाप-मल प्रक्षालिनी यह भक्ति संसार-सागर मे निमज्जित पुरुषों के लिए सौभाग्य-पोत बनकर उपस्थित है । धन्य है वे भव्य पुरुष जिन्होने भक्ति का ग्रवलवन लिया एवं एक सुगम-पथ का निर्माण किया-अपने लिए व ग्रौरों के लिए भी ।

भक्ति की यह धारा यदि उन महापुरुषों के कठ से प्रवहमान बने जो काव्यकला के ज्ञाता भी है तो सोने मे सुगध की उक्ति चरितार्थ होती है । काव्यमय भक्ति के स्वर मे सवेदना मुखर भाव से प्रकट होती है । उसमे हृदय

की निष्कपटता बोलती है एवं समाज व धर्म के क्षेत्र में व्याप्त विद्रूपताओं पर एक शालीन चोट भी करती है। उनके करुणा-विगलित हृदय का आत्म-निवेदन जन-जन का कल्याण करने में समर्थ होता है।

ऐसे ही तीन सन्त व भक्त कवियों की काव्यात्मक अनुभूतियो को संयोजित करने का इस ग्रन्थ मे प्रयास है। ये तीन सन्त कवि है- विद्वद्जनवरेण्य, सत-जन समुल्लासक श्रद्धेय श्री धूलचन्दजी म० सा०, सुदीर्घ विचारक क्रान्तद्रष्टा, राजस्थान केसरी, पूज्य प्रवर्तक श्रद्धेय श्री पन्नालालजी म० सा० एव मधुर व्याख्यानी आशुकवि, स्वाध्याय-शिरोमणि पूज्य प्रवर्तक श्री सोहनलालजी म० सा०। इन तीनो कवियो की वाणी ने अनेक युगो की भाव-धारा को अपने में समेटा हुआ है। स्व० धूलचन्दजी म० सा० की काव्यधारा वि० सं० १९५२ (दीक्षा सवत) के आसपास प्रवाहित हुई थी। जिसमे अनेक दोहे सवैये, कवित्त, स्तवन आदि थे, तो श्रद्धेय सोहनलालजो म० सा० की कलि-मलहारिणी वाणी आज भी भक्तजनो के कठ का हार बन रहो है जबकि मध्यवर्ती क्रान्तचेता कवि श्रद्धेय पन्नालालजी म० सा० की कालजयी वाणी शाश्वत सत्य को प्रकट करते हुए, अतीत और अनागत को जोड़ने का अपूर्व प्रयास कर रही है।

इन तीनों कवियों की वैराग्योत्पादक कविताएं एक स्थान पर ही पढ़ने को मिले, एक ऐसा संकलन तैयार हो जिसमें विभिन्न कालो में अभिव्यक्त सत्य एक साथ गुम्फित हो। इस भावना को साकार रूप दिया श्री वल्लभमुनिजी 'प्राज्ञ-किंकर के शुभ प्रयत्नों ने।' श्रद्धेय वल्लभमुनिजी म० सा० स्वयं काव्यरसिक व कुशल विवेचक है एव समय २ पर अनेक गीतिकाओं के माध्यम से सरस्वती के भडार को भरा है। साथ ही आपको श्रद्धेय धूलचन्दजी म० सा० के अतिरिक्त अन्य दोनों सन्तों के चरणों मे रहकर साधना करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ है। अत: तीनों कवियों के काव्य-भडार से रत्नचय करने के कार्य को आपने अपना कर्तव्य-कर्म मानकर यत्र-तत्र बिखरी पड़ी सामग्री को सकलित व संपादित किया, भावपूर्ण शैली में समीचीन व्याख्या भी प्रस्तुत की एवं इसे एक पठनीय एव मननीय स्वरूप प्रदान किया।

संयोग ही कहिए कि आगामी वि० सं० २०४४-४५ यह वर्ष 'समारोह त्रयी' के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है। श्रद्धेय पन्नालालजी म० सा० का जन्मशताब्दो वर्ष है, साथ ही श्रद्धेय पूज्य प्रवर्तक श्री सोहनलालजी म० सा०

भी अपने जीवन के ७६ वे बसन्त में प्रवेश कर रहे है। वि० सं० १९९४ से कार्यरत यह स्वाध्यायी सघ भी अतिशीघ्र ही ५० वे वर्ष मे प्रवेश कर जिनवाणी-प्रचार का कीर्तिमान स्थापित करेगा। इस पावन प्रसग पर इस ग्रन्थ का प्रकाशन एक सामयिक कदम है। आशा है यह प्रकाशन अवश्य ही साधक पुरुषो का कण्ठहार बनेगा।

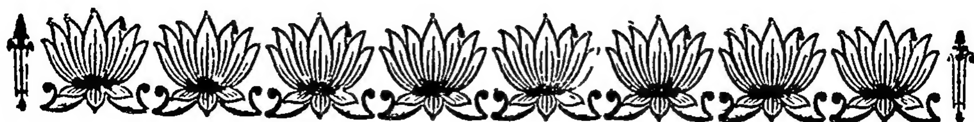
इसके प्रकाशन में अपने द्रव्य का सदुपयोग करने वाले महानुभावों के प्रति भी हम अपना आभार व्यक्त करते है जिनकी अनुकरणीय उदारता से यह प्रकाशन सभव हो सका है एव एक चिरप्रतीक्षित आवश्यकता की पूर्ति मे सहायक बने है।

मन्त्री :

श्री. श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ

गुलाबपुरा (राजस्थान)





आर्थिक सहयोग



साहित्य प्रकाशन में जिन महानुभावों ने आर्थिक सहयोग प्रदान कर साहित्य सेवा का महान् लाभ लिया है। उनका यह संघ हार्दिक धन्यवाद करता है ! दानदाताओं की शुभ नामावली इस प्रकार है:—

१.	श्रीमती	कमलाबाईजी	धर्मपत्नी	श्रीमान्	मूलचंदजी चोरड़िया	जयपुर
२.	,,	उर्मिलाबाईजी	,,	,,	जवाहरलालजी बोकड़िया	बम्बई
३.	,,	सूरजबाईजी	,,	,,	रिखबचंदजी डोसी	मसूदा
४.	,,	निर्मलाबाईजी	,,	,,	विमलचंदजी सचेती	जयपुर
५.	,,	चान्दबाईजी	,,	,,	शोभागमलजी चौपड़ा	बिजयनगर
६.	,,	सुन्दरबाईजी	,,	,,	बिरदीचंदजी चौरड़िया	,,
७.	,,	मदनबाईजी	,,	,,	नोरतमलजी पोखरणा	बाघसूरी
८.	,,	बिलमाबाईजी	,,	,,	शोभागमलजी लुणावत	विजयनगर
९.	,,	उमरावबाईजी	,,	,,	नोरतमलजी ,,	,,
१०.	,,	सुन्दरबाईजी	,,	,,	लादूलालजी नाबेडा	,,
११.	,,	मनोरथबाईजी	,,	,,	मोतीलालजी पोखरणा	नसीराबाद
१२.	,,	सायरबाईजी	,,	,,	भागचंदजी ,,	न्यारा
१३.	,,	शान्तिबाईजी	,,	,,	जवरीलालजी डोसी	ब्यावर
१४.	,,	एक गुप्त दान दाता				



सम्पादकीय :

'हितेन सहित साहित्यम्' साहित्य की इस व्याख्या ने अपनी सार्वभौम सत्ता को उजागर कर दिया है। जिसके द्वारा हित हो या जो धारण करने योग्य सद्‌गुणो की वृद्धि के साथ समाज का पथ प्रशस्त करता हो वह साहित्य है। सामाजिको के मानस मे रसास्वादन की अनुभूति करवाना, आनन्द की चल लहरी को प्रवाहित कर उन्हें आल्हादित करना साहित्य का ही कार्य है। साहित्य समाज का, देश का, कहना चाहिये कि समस्त जगती तल का आधार स्तम्भ है, पथप्रदर्शक प्रदीप है।

'अन्धकार है वहां, जहां आदित्य नही है।
मुर्दा है वह देश, जहां साहित्य नही है॥

कवि के इन मार्मिक शब्दो मे साहित्य ही जीवन है, प्राण है। इसी आधार या प्रकाश को पाकर अनेको भावनाशील भव्य प्राणी अपने जीवन को ज्योतिर्मान कर अज्ञान की अन्धतमिस्रा को दूर कर देने है। अनन्त असीम ज्ञानालोक को प्राप्त कर वे धन्य और कृत कृत्य हो जाते है। समाज मे ऐसा सत्साहित्य सदा से उपादेय रहा है और उसकी सेवा ही वस्तुतः श्रुत की सच्ची सेवा है।

पिछले कुछ वर्षो से मेरे मानस में एक भावना, एक तरंग उठ उठकर प्रेरित कर रही थी मुझे:-कि तू अपने पूर्वज गुरुजनो के साहित्य को सर्वजन हिताय क्यों नही कर रहा है ? बात सच भी थी। एक शिष्य का कर्तव्य भी होता है कि वह गुरु की विरासत में प्राप्त ज्ञान राशि को, उनकी साहित्यिक थाती को सुरक्षित भी रखे और जन कल्याणार्थ प्रसारित भी करे। स्वय को तृप्ति लाभ हो परन्तु उसके साथ जन जन को भी सतृप्ति हो, प्रकाश मिले, आत्मकल्याण में वे आगे बढ़ पाये, उससे अधिक लाभ और क्या हो सकता है।

अपनी इस भावना को मैने ज्योतिषाचार्य आगमज्ञानी प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री कुन्दनमलजी म० सा० के चरणों में रखी। आपके उत्साह भरे प्रेरक वचनो से आज्ञप्त होकर इस अनुष्ठान मे सलग्न हुआ! प्राचीन

हस्तलिखित एवं संकलित पत्रावलियों को टटोलता गया, जितना पाता गय उसे इस रूप में संजोता गया और वह प्रयास एक आकार बन कर पाठकों व कर-कमलों में उपस्थित भी हो गया।

प्रस्तुत संकलन में जहां पूज्य गुरुदेवों की प्रेरणा एवं शुभाशंसा क आभारी हूं वहीं शिष्या 'साध्वी रतनत्रयी' (ज्ञान, दर्शन व चारित्र) ने अपने एम.ए फाइनल की परीक्षा में व्यस्त रहते हुए भी मनोयोग पूर्वक जो सहयोग प्रदा किया उस कर्तव्य परायणता को विस्मृत करना अनुचित होगा। इसके लि वे हार्दिक धन्यवाद की पात्र है। प्रमोद के साथ औदासीन्य इस बात का है वि जिन ज्योतिषाचार्य प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा से कार्य का श्री गणेश किया था आज उसके समापन पर उनका सान्निध्य प्राप्त नहीं रहा। वे स्वर्गलोक की यात्रा पर आगे बढ़ गये।

प्रस्तुत पुस्तक में जैनाचार्य श्री नानक वंश के तीन श्रमण कवियों की कृतियो का सकलन है, तीन काव्य धाराओं का मिलन है! तदनुसार पुस्तक का नामकरण भी **'काव्य त्रिवेणी'** किया गया है। प्रथम धारा में स्व० सद्‌गुरु पूज्यपाद श्री धूलचन्दजी म० सा० 'रेणु' की कृतिया है। द्वितीय धारा मे स्व० महामहिम प्रवंतक पूज्य गुरुदेव श्री पन्नालालजी म० सा० 'प्राज्ञ' की एव तृतीय धारा मे स्वाध्याय शिरोमणि आशुकवि प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री सोहनलालजी म० सा० की कृतिया है। इस पुस्तक मे गुरुदेव श्री सोहनलालजी म० सा० के द्वारा रचित चरित्रो के अतिरिक्त अन्य कृतियों का समावेश है। अन्य छोटे बडे करीब ३०० चरित्र है जो अलग से संकलित किये जाने की सम्भावना है। तथा दोनो स्वर्गीय गुरुदेवों की उपलब्ध सभी कृतियों का सकलन यथा सभव इस मे कर दिया गया है।

यों तो तीनों ही सद्‌गुरुओं की कृतियों का पूर्व में क्रमशः 'धूल के फूल' 'प्राज्ञ पुञ्ज' एव 'महकते पुष्प' नाम से प्रकाशन हुआ है किन्तु उससे भी अधिक संकलन इसमें होने से यह प्रकाशन पुरातन होता हुआ भी नूतन है! जिसकी अनुभूति स्वय पाठकों को हो सकेगी।

अत्यधिक आमोद का विषय तो यह है कि आगामी वि. स. २०४४ की भादवा शुक्ला तृतीया से वि स २०४५ की भादवा शुक्ला तृतीया तक पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालालजी म० सा० का जन्म शताब्दी वर्ष आ रहा है। इसी सदर्भ में पूज्य गुरुदेव श्री सोहनलाल म० सा० अपने जीवन के ७५ वर्ष पार कर चुके होगे साथ ही श्री जैन स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा भी धर्म सेवा के

अपने ५० वर्ष सम्पन्न करने जारहा है। एक ही वर्ष मे तीन-तीन समारोह और वे भी देव-गुरु व धर्म की सेवा के। यदि एक स्वाध्यायी संघ के आद्यप्रवर्तक है तो दूसरे इसी संघ के प्रथम सदस्य रहे हुए है और तीसरा स्वय स्वाध्यायी संघ है ही। भला, ऐसा शुभावसर किस भव्य भावुक को आल्हादित नही करेगा? अत इन समारोह त्रयी का नाम भी **'जन्म-शती-हीरक-स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव'** सम्भवतः उचित ही प्रतीत होगा।

इसी समारोह-त्रयी के उपलक्ष्य मे इस पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। आगे की कृतियों को भी यथासंभव इस शुभावसर तक प्रकाशित करने का प्रयास किया जायगा।

इसमें मुझे अपनी ओर से कुछ भी नही रखना पड़ा है। सब कुछ तीनो श्रमण कवि सद्गुरुओं का ही है। मेरा केवल संकलन है, श्रम है। समाज के लब्ध प्रतिष्ठ पडित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल का मार्गदर्शन, एव डा. नरेन्द्रजी भानावत की मननीय भूमिका के सहयोग को स्मरण करना भी मेरा कर्तव्य है। वीतरागवाणी के विपरीत कही पर यदि भाव-भाषा का प्रयोग हो गया हो तो कृपया पाठक अवश्य सूचित करें।

ब्यावर वर्षावास
वि सं. २०४२

वल्लभ मुनि
'प्राज्ञ किंकर'



धर्माचार्य-धर्मगुरु-स्तुति

जीव, लाल, पुनि दीप महान, श्री मलूक, नानक गुणखान ।
जय निहाल, तुलसी गण-ईश, वीरभाण सुखलाल मुनीश ॥
अभय, हर्ष थे हर्ष-स्वरूप, भविजन वल्लभ, यश के स्तूप ।
श्री लिछमन, मगनेश मुनीन्द्र, मोती, विजय, गज रेणु-कवीन्द्र ॥
पूज्य प्रवर्तक, दीन-दयाल, धन्य धन्य गुरु पन्नालाल ।
पूज्य प्रवर्तक, दीन-दयाल, धन्य धन्य गुरु छोटेलाल ॥
पूज्य प्रवर्तक, दीन-दयाल, धन्य धन्य गुरु कुन्दनलाल ।
पूज्य प्रवर्तक, दीन-दयाल, धन्य धन्य गुरु सोहनलाल ॥
नमन करो इनके पद कंज, मिट जाये भव भव के रंज ।



– दस जय –

जय बोलो रे ज्ञानी गुणीजन की, जय बोलो ॥ टेर ॥
पहली जय अरिहन्त प्रभु की, दूसरी सिद्ध निरञ्जन की ।
तीसरी जय आचार्य देव की, चौथी जय उपाध्यायन की ॥
पाँचवी जय सब सन्त सती की, छठी जय जिन शासन की ।
सातवी जय जीवराज गणी की, आठवी नानक लिछमन की ।
नवमी जय गुरु प्राज्ञ की बोलो, दसमी प्रवर्तक सोहन की ॥



—: समर्पण :—

श्रद्धेय प्रवर

ज्योतिषाचार्य, आगमज्ञ

पूज्य प्रवर्तक, गुरु-वरेण्य

श्री १००८ श्री

श्री कुन्दनमलजी महाराज साहब



के 'रत्नत्रयी' तपः पूत,

श्रुत, सेवा और भक्तिमय

निश्छल त्रिवेणी – व्यक्तित्व को

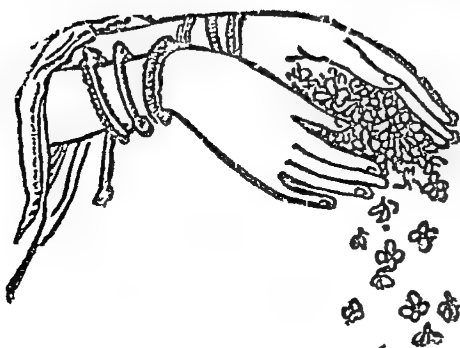
सादर सविनय

स

म

र्पि

त



'प्राज्ञ किंकर'

भूमिका :

जीवन और साहित्य का गहरा सम्बन्ध है। जीवन के विविध अनुभव भावात्मक स्तर पर साहित्य मे अभिव्यक्ति पाते है। ये अनुभव जितने परिपक्व यथार्थ, सच्चे और आत्म-मथन से गुजरे होगे साहित्य का सर्जन उतना ही मार्मिक और प्रभावकारी होगा। सन्त साहित्य की यह विशेषता है कि वह बौद्धिक चिन्तन का परिणाम न होकर आत्मानुभव का निचोड़ होता है। वहाँ विभाव उत्तेजना नही पैदा करते वरन् स्वभाव बनकर प्राणिमात्र के प्रति स्नेह-संवेदना जाग्रत करते है। सन्तो का जीवन निर्मल, चित्त वृत्तियाँ शुद्ध और आचार पवित्र होता है, वे राग-द्वेष से विरत होकर अखण्ड आनन्दानुभूति मे निमग्न रहते है अतः उन्हे जीवन और जगत का जो बोध होता है वह सम्यक्, तटस्थ और समत्व लिये हुए होता है। इस कारण उनके द्वारा रचित साहित्य चित्तवृत्तियों को परिष्कृत कर, आन्तरिक वीरत्व को जगाने और बिखरे शक्ति-कणो को सयोजित करने मे सहायक बनता है।

यह साहित्य प्रधानतया निर्वेदमूलक होता है और पार्थिवता से ऊपर उठाकर पाठक को परम पुरुषार्थ की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। जिनकी दृष्टि इन्द्रियो के विषय-सेवन की ओर उन्मुख रहती है और जो उपभोक्ता सस्कृति के उपासक है, वे इस साहित्य की रसवत्ता से इन्कार करेगे पर जो ज्ञान दर्शनमयी उपयोग चेतना से जुडे हुए है, वे इस साहित्य-सागर में छिपे भाव-मुक्ताओं से आलोक प्राप्त कर कृतकृत्य होगे।

जितने भी सन्त पुरुष हुए हैं, उन्होंने मानव के आत्म चैतन्य को जागृत करने का उपदेश दिया है। इन सन्तों में जैन सन्त अग्रणी रहे है। प्रत्येक जीव सुख दुःख के लिए स्वयं जिम्मेदार है। वह किसी दूसरे की कृपा या कटाक्ष पर जीवित नही है बल्कि स्वकृत कर्म ही उसके अस्तित्व का कारण है। आत्म कर्तृत्व की इस भावना से प्रेरित-प्रवाहित जैन साहित्य का स्वतन्त्रता, समानता, लोककल्याण और सर्वजीव समभाव की दृष्टि से विशेष गौरव और महत्त्व है।

जैन धर्म आत्म विजय और श्रमनिष्ठा का धर्म है। वर्ण, जाति, सम्प्रदाय, मतवाद से परे उसने मनुष्य की गुणवत्ता, और सम्यक्ज्ञान, दर्शनयुत, सम्यक् चारित्र और तप साधना को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। जिस

व्यक्ति ने साधना के बल पर अपनी समस्त योग्यताओं का विकास कर परमात्म शक्ति से साक्षात्कार कर लिया है और इस प्रकार जो जीव शिव बन गया है, वही उसका आराध्य है। प्रत्येक जीव को शिव बनने का अधिकार है। इस दृष्टि से जैन धर्म में प्रत्येक आत्मा को परमात्मा बनने का अधिकार दिया गया है।

आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया को, स्पष्ट करने के लिए विविध विधाओं और काव्य रूपो मे विपुल परिमाण मे जैन साहित्य रचा गया है। साहित्य की यह रचना-प्रक्रिया मुख्यतया लोक जीवन, लोकभूमि और लोक संस्कृति से जुडी हुई रही है। सत्य के प्रति निष्ठा, गुणो के प्रति प्रमोद और प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव इस साहित्य के मूल स्वर है। भगवान् महावीर ने जो देशना दी है वह अर्थागम रूप में सुरक्षित है। उसे ही आचार्यो ने ग्रहण कर उसके तत्त्व-चिन्तन को विविध रूपों मे विवेचित-विश्लेषित किया। चित्त-श्रेणी और लोकरूचि के अनुसार कथ्य और शिल्प में वैविध्य आता गया।

भारतीय धर्म और सस्कृति के यथार्थ स्वरूप का प्रतिबिम्ब जैन साहित्य मे देखा जा सकता है। ऐसे साहित्य के रचयिता प्रधानतः सन्त रहे हैं जो सत्य-शोधक और आत्म-साधक थे। वे राज्याश्रित नही थे अतः उनका साहित्य राज्य-प्रभाव व दबाव से बचा रहा। जनाश्रित होने के कारण सामान्य जन की चित्त वृत्तियो का वे तटस्थतापूर्वक चित्रण कर सके। इस दृष्टि से जैन साहित्य भारतीय सांस्कृतिक लोकजीवन का सच्चा दर्पण कहा जा सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ **'काव्य त्रिवेणी'** में जैनाचार्य श्री नानकरामजी महाराज की परम्परा से सबद्ध 3 कवियों—श्री धूलचन्दजी महाराज, श्री पन्नालालजी महाराज और श्री सोहनलालजी महाराज की काव्य-साधना के प्रमुख अश संकलित है। श्री नानकरामजी महाराज 19 वी सदी के प्रारभ के उत्कृष्ट क्रियावान सन्त थे। तत्कालीन धार्मिक जगत में व्याप्त बाह्य प्रदर्शन एवं आचार-शैथिल्य के खिलाफ उन्होने जबर्दस्त क्रान्ति की। अपनी साधना के बल पर उन्होने सम्यक्त्व और सद्ज्ञान का आलोक विकीर्ण किया।

जहाँ तीन नदियाँ मिलती है वह त्रिवेणी संगम कहलाता है। लोक में गंगा, यमुना और सरस्वती का मिलन त्रिवेणी संगम के रूप में प्रसिद्ध है।

यहाँ श्री धूलचन्दजी महाराज, श्री पन्नालालजी महाराज एवं श्री सोहनलालजी महाराज की काव्यधारा का विशिष्ट सगम है ।

श्री धूलचन्दजी महाराज उच्च कोटि के कवि और जैन आगमों के विशिष्ट अध्येता थे । उनका काव्य शास्त्रीय ज्ञान गहरा था । अपनी कविता में उन्होने दोहा, कुण्डलियां, छप्पय, कवित्त, सवैया और विविध रागो का सफल प्रयोग किया है । उनकी कविता का मुख्य स्वर नीति और सदाचार-मूलक है । विभिन्न दोहो मे विनय, सारल्य, ब्रह्मचर्य, प्रभुस्मरण, सत्सग, मनोनिग्रह, धैर्य, क्षमा, सजगता, दया, प्रेम, करूणा जैसे उदात्त जीवन मूल्यों को आत्मसात् करने की प्रेरणा दी है ।

प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी भाषा के वे प्रकाण्ड विद्वान थे । उनकी भाषा सहज और सरल होते हुए भी कही-कही पाडित्य पूर्ण और शास्त्रीय बन गयी है । कूटशैली और गूढार्थ व्यजना मे यह रूप देखा जा सकता है ।

कर्म की विचित्रता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि पर्वत से उत्पन्न नदी के पति अर्थात् समुद्र के उदर से जन्म लेने वाले तथा महादेवजी के ललाट पर वसने वाले चन्द्रमा को भी शान्ति कहाँ ? उसके पीछे भी राहु लगा हुआ है—

गिरिजापति घर जन्म पा, जा वसियो शिव भाल ।
राहु ग्रसित तोहि चन्द्र को, "रेणु" विषम विधि चाल ।।

कवि ने जिन वन्दनार्थ जो 8 दोहे लिखे है वे कूट शैली के दिग्दर्शक है । भगवान् ऋषभदेव के चरण-कमलो का स्मरण करते हुए कवि ने उनका सीधा नाम न लेकर कहा है– समुद्र की पुत्री जो लक्ष्मी है, उसका पुत्र कामदेव और उसका शत्रु महादेव और महादेव का वाहन वृषभ जिसका चिह्न है, ऐसे ऋषभदेव का स्मरण करता हूँ ।

उदधि सुता सुत तास रिपु, तसु वाहन जसु पाद ।
मांहि सुशोभित ते प्रभु, "रेणु" करत नित याद ।।

इसी प्रकार चन्द्रप्रभस्वामी का सीधा नाम न लेकर कहा गया है— पर्वत की पुत्री नदी, नदी का स्वामी समुद्र, समुद्र का पुत्र अमृत और अमृत का वाहन चन्द्रमा जिसका चिह्न है ऐसे प्रभु को नमन हो ।

महाकवि सूरदास ने 'साहित्य-लहरी' मे और महाकवि केशव ने इस प्रकार के क्लिष्ट प्रयोग करने में विशेष पांडित्य प्रदर्शन किया है। पर आलोच्य कवि धूलचन्दजी महाराज 'रेणु' की वृत्ति क्लिष्ट प्रयोग करने की नही है। जीवन में सादगी, सरलता और सदाचरण प्रवृत्त हो, इस भाव को सात वार यथा—सोम, मंगल आदि तथा कवर्ग, चवर्ग आदि व्यजनों को आधार बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यथा—

1. चन्द्र कहे हिय करो उजेरा (चन्द्रवार)
2. शुक्र कहे नित सुकृत कीजे (शुक्रवार)
3. कका करणी ज्ञान की (क व्यंजन)
4. लल्ला लालच अति बुरो (ल व्यंजन)

आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक चेतना जाग्रत करना भी कवि का लक्ष्य रहा है। तत्कालीन समाज मे आभूषणप्रियता का विशेष जोर था। इस ओर संकेत करते हुए कवि ने कहा है—

गहना कहे मुझे मत गहना; गहने में नहीं सार।
गहते-गहते ग्राहक हो गये, कुलटा जिम बेकार।

यहाँ सहज ही 'गहना' शब्द में यमक का प्रयोग हो गया है। वस्तुतः कवि का बल इस बात पर है कि शरीर की शोभा सोना, चांदी के गहनों से नही वरन् शील, विद्या और सदाचार से है—

'शील सुविद्या सदाचार का, गहना सब ही पहनो।'

कवि ने चरित काव्य की रचना भी की है। यथा-गुणसुन्दरी चरित्र। 22 ढालों में निबद्ध यह चरित काव्य दोहा तथा महलां मे बैठी राणी, कोरो काजलियो, पणिहारी, मारवाड़ी मांड जैसी रागों मे रचित होने से लोक भोग्य बन पड़ा है। रीतिकाल में दोहा, सवैया, कुण्डलियां, छप्पय और कवित्त लिखने का विशेष प्रचलन रहा। इनमे मुख्यतया शृंगार और वीररस की प्रधानता रही। हमारे आलोच्य कवि की यह विशेषता रही कि उन्होंने आत्मा की शोभा के वर्णन में शृंगार रस की और आन्तरिक वीरत्व को जागृत करनेमे वीररस की सार्थकता प्रतिपादित की।

इस 'काव्य त्रिवेणी' की दूसरी धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं पूज्य प्रवर्तक श्री पन्नालालजी म. सा. "प्राज्ञ"। समाज सुधारक, समाज सगठक और स्वाध्याय-ज्योति प्रज्वलित करने के सूत्रधार के रूप मे तो ये प्रसिद्ध है ही पर भावना और सवेदना के स्तर पर समाज को संगठित करने, जीवन-व्यवहार में व्याप्त अंध-विश्वासों और कुरीतियों का उच्छेदन करने एवं भारतीय जन-जीवन मे स्वातन्त्र्य भावना व राष्ट्रीय एकता का संचार करने के लक्ष्य से की गयी उनकी काव्य साधना का भी विशिष्ट महत्त्व हैं।

कवि 'प्राज्ञ' की काव्य चेतना के तीन मुख्य स्वर हैं-प्रभुभक्ति, राष्ट्र-एकता, और समाज-चेतना। उनका प्रभु राग-द्वेष और जन्ममरण से परे परम विशुद्ध अखण्ड, अव्याबाध आनन्दमय शुद्ध मुक्त चेतना है। विकारग्रस्त आत्मा को इस विशुद्ध परम चेतना से अपने कर्म-शत्रुओं को विनष्ट करने की प्रेरणा मिल सकती है। यद्यपि कवि अपने आराध्य को संकटमोचन स्वामी, तारनहार, दीनानाथ आदि रूपों में स्मरण करता है और उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना करता है, दास्य भावना के वशीभूत होकर अपना उद्धार नही करने के लिए उन्हे उपालम्भ भी देता है। पर कवि की प्रभु भक्ति के मूल में आत्म-विजय का भाव ही मुख्य है। आत्म-शक्ति जागृत करने की भावना से भवानी माता के रूप मे जिनवाणी की स्तवना करते हुए कवि ने कहा है—

सिन्धु सम ससार मे सरे, जन्म-मरण जल जान।
जिनवाणी नौका सम दाखी, अनन्त गुणों की खान॥

मिथ्यातम जग मे भर्यो सरे, खबर पडे नही काय।
जिनवाणी सम भानु उगिया, मिथ्या भ्रम हटाय॥

भारतीय स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए किये जा रहे प्रयत्नों और आन्दोलनों से कवि बेखबर नही है। उसका विश्वास अहिंसक आन्दोलनों मे रहा है। हिंसा आधारित प्रयत्नो के स्थान पर दया धर्म से प्रेरित सर्वधर्म समभाव का कवि ने सबको सन्देश दिया हैं—

हिन्दू और मुसलमान, सब को हम समभावें,॥ टेर॥
दया धर्म है सबसे आला, इसमे फर्क नहीं है।
वेद, पुरान, कुरान के अन्दर, जाहिर दर्ज सही है-
देखलो खोल किताब,॥ १॥

राष्ट्रीय एकता का मूल आधार भारतीय सांस्कृतिक चेतना से जुडना है। 'प्राज्ञ' कवि का मन बराबर यह महसूस करता रहा कि रहन-सहन, खान-पान और जीवन व्यवहार मे अंग्रेजियत की बू उत्तरोत्तर हावी होती जा रही है। इसके विरुद्ध वातावरण बनाकर भारतीय जीवन-पद्धति को पुनः प्रतिष्ठा आवश्यक है। इसी भावना से प्रेरित होकर कवि ने अंग्रेजीदां फैशन की कड़ी आलोचना की है। कवि ने कृष्ण का स्तवन, नटवरनागर, मुरली मनोहर और गोपीवल्लभ के रूप मे न कर राष्ट्रनायक के रूप में किया है—

कानां आवरे, आव-आव ब्रजवासी काना भारत बुलावे रे।

इस आह्वान में कवि ने प्रकारान्तर से भारत की तत्कालीन अधोदशा, नैतिक ह्रास और वढते शोषण का चित्रण किया है

कलयुग मांही बहुत कस मिल, प्रजा अति सतावे रे।
तात मात उन कुपुत्रो से, बहु घबराये रे ।।
गौ वंश भारत को निज धन, दिन-दिन घटियो जावे रे।
इसी समय में आप आयके, उसे बचावे रे ।।
बहुत काल से विपती सहे हैं, अन्न-वस्त्र बिन तड़फ रहे है।
ऐसे आन अनाथ भारत का सब संकट दो काट ।।

इस प्रकार कवि ने कृष्ण के मधुर लीलामय रूप के स्थान पर उसके शक्ति शील सम्पन्न राष्ट्रीय रूप की स्तवना की है।

कवि के काव्य में अभिव्यक्त समाज-चेतना का स्वर भी काफी प्रखर है। कवि के लिए काव्य मनोरंजन का साधन न होकर समाज सुधार का सशक्त माध्यम है। तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विलासिता, अपव्यय पर कवि ने जमकर प्रहार किया है। बढ़ती हुई सप्त व्यसन की प्रवृत्ति के दोषों का वर्णन कर कवि ने जीवन मे धर्माचरण की प्रवृत्ति बढे, इस पर विशेष जोर दिया है। स्त्रियों में पंचरंगी चूनड़ ओढ़ने की और पुरुषों में पंचरंगी पगड़ी बांधने की विशेष प्रथा रही है। कवि ने इसे आध्यात्मिक रूप देते हुए बहनों और भाइयों को प्रेरणा दी है कि सदाचार, सौजन्य, श्रेष्ठ आचार, शील और सम्पत की चूनड़ी ओढें तथा समता और तपस्या के रग से रंगी हुई पगड़ी बांधें—

सदाचार, सौजन्य, श्रेष्ठपन, शियल, सम्पत सुखकार ।
यह पचरगी ओढ चूनड़ी, करियो मोज अपारजी ।।
समता रग कसुम्बो रंगवावो, अन्दर जल गुलाव रलवावो ।
विविध तपस्या लहर नकावो,
भक्ति गुरु की करके बाधो-रंगीली पागड़ी ।।

कवि ने चरित्र काव्य भी लिखे हैं। "रक्षिका चरित्र" ६ ढ़ालों में निबद्ध रचना है। इसमे शील का माहात्म्य प्रकट किया गया है। रक्षिका विवाह पूर्व आजीवन शील व्रत ग्रहण करने के कारण अपने पति श्रवण को भाई के रुप मे स्वीकार करती है और तदनुरूप आचरण कर श्रवण को आत्मोद्धार की प्रेरणा देती है। "भागचन्द चरित" मे कर्म की गति के उतार-चढाव का रोचक वर्णन प्रस्तुत करते हुए दान की महिमा, बड़ों के प्रति श्रद्धा और आदरभाव, विनय, धैर्य, आदि भावो की मार्मिक व्यजना की गयी है। 'शील सप्तमी' में शीतला सप्तमी त्यौहार से सम्बन्धित अंध-विश्वासों पर गहरी चोट की गयी है।

सक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि की प्रज्ञा विविध स्तरों पर सामाजिक चेतना एवं राष्ट्रीय भावना को आध्यात्मिक सस्कारो से पुष्ट करती है।

'काव्य त्रिवेणी' की तीसरी धारा का प्रतिनिधित्व करते है:-आशु कवि प्रवर्तक श्री सोहनलालजी म सा.। श्री सोहनलालजी म. सा. की काव्य-साधना अत्यन्त सरल, सहज और सात्विक प्रभा से मण्डित है। विभिन्न धार्मिक, पौराणिक एवं लौकिक कथाओ को आधार बनाकर आपने शताधिक चरितमूलक प्रवध काव्यो की रचना की है। ये सभी चरित काव्य विभिन्न लोक प्रचलित राग-रागिनियो मे रचित होने से विशेष लोकप्रिय बन पड़े है। इस श्रेणी के कई चरितकाव्य स्वतन्त्र पुस्तक रूप मे प्रकाशित हुये है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे चरित काव्य से भिन्न मुनि श्री की मुक्तक रचनाएँ सकलित की गयी है। मुनि श्री का वर्णिक और मात्रिक छन्दो पर अच्छा अधिकार है। दोहा, हरिगीतिका, कवित्त, जैसे मात्रिक छन्दो के साथ-साथ द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, त्रोटक और सवैया जैसे वर्णिक छन्दों मे अपनी भावनाओं को सरल भाषा और सुबोध शैली मे अभिव्यक्त किया हैं। काव्य-धारा का प्रवाह साफ-सुथरा है। कहीं भी अवरोध और वक्रता नही है।

मुनि श्री की मुक्तक काव्य साधना के तीन मुख्य तत्त्व हैं-नीति औ सदाचार, शास्त्रीय सिद्धान्त निरूपण और कथात्मक कवित्त। नीति औ सदाचार के अन्तर्गत देव, गुरु और धर्म की सार्वजनीन व्याख्या प्रस्तुत क गई है। इसमें किसी वर्ण, जाति या सम्प्रदाय का पुट नही है। देव वह जिसने आत्मशक्ति को आच्छादित करने वाले कर्मो का नाश कर दिया है—

घनघाती कर्म को किये नष्ट और मिटा दिये भव के फेरे।
राग-द्वेष क्षय किये जिन्होंने, वही "देव" सच्चे मेरे॥

गुरु वह है जिसने अपनी काषायिक प्रवृत्तियों को मन्द कर, इन्द्रिय निग्रह कर लिया है—

कषाय पतली हुई जिन्हों की, रसना को वश में कीनी।
इन्द्रिय जीत बने वैरागी, "गुरु" शरण मैने लीनी॥

धर्म वह है जो प्राणिमात्र को आत्मवत् समझता है

माने आत्मवत् प्राणिमात्र को, कभी कष्ट नही उपजावे।
बनूं उपासक उसी धर्म का, यह मेरे मन मे आवे॥

नीति और सदाचार सम्बन्धी उपदेशों में कवि ने दान, दया, भाव-विशुद्धि, प्रभुभक्ति, समाज-एकता, परोपकार, रसना-संयम, सम्यक् श्रद्धा, विनय, शील आदि पर विशेष बल दिया है। धर्म के नाम पर व्याप्त अंध विश्वास और रूढ़ियों पर जगह-जगह चोट की गयी है। धर्म का सम्बन्ध आत्म स्वभाव और विवेक से है। विवेक रहित धर्म, धर्म न होकर मात्र रुढ़ि-पालन है। विशुद्ध धर्म का पालन न कर जो लोग धर्म के नाम पर पापाचरण करते हैं ऐसे लोगों की खबर लेते हुए कवि ने कहा है—

ते नर आक धतूर उगावत, कल्पतरू घर बाहर डाली।
देय अमोलक कीमत की मणि, लेकर कांच भया खुशहाली॥
हस्ती मिला गिरिराज समा, उसके बदले सर लेत कुचाली,
प्राज्ञ कृपा मुनि "सोहन" जो नर धर्म तजी अघ चाहत खाली॥

मुनि श्री की काव्य-साधना में आत्म-जागरण का सन्देश मुख्य है। मोहाभिभूत जीव को मोह-क्षय कर मोक्ष प्राप्त करने के लक्ष्य पर चलने की विविध रूपों और स्वरों में दी गयी है। कवि श्री जैन आगमों के

विशिष्ट अध्येता और व्याख्याता है। गूढ शास्त्रीयज्ञान को सहज-सरल बनाकर काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करने मे आपको विशेष सफलता मिली है। आगति-गति के थोकड़े को आधार बनाकर नरक, देव, तिर्यच और मनुष्य गति का स्वरूप सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

मुनि श्री की काव्य साधना की प्रमुख विशेषता है—कथाओं के कवित्त। मनुष्य कथाप्रिय है। कथा के माध्यम से जटिल से जटिल भाव को भी सहज-सरल बनाकर प्रस्तुत किया जा सकता है। सफल जीवन के लिए जिन आधारभूत गुणो की आवश्यकता है, उनसे सम्बद्ध गुणो की अभिव्यंजक धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, आगमिक, नैतिक, सामाजिक, लौकिक छोटी-छोटी कथाओं को वर्ण्यविषय बनाकर एक-एक कथा और घटना-प्रसंग पर मुनि श्री ने जो कवित्त लिखे है, वे हिन्दी काव्य इतिहास मे नवीन धारा का प्रवर्तन करते है। इन कवित्तों की भाषा बड़ी सरल और भाव अत्यन्त सुबोध होने से ये जन-जन के कण्ठहार है। इन कवित्तों मे श्रमनिष्ठा, सारल्य, परमार्थ भाव, बुद्धि-कौशल, मधुर वाणी, सत्-कर्म, विनय, सन्तोष, परोपकार, सम्यक् आहार, सयम, शील, स्वामीभक्ति, कर्तव्यपरायणता जैसे उदात्त गुणों को वाणी दी गयी है। लोक जीवन मे जो लोकोक्तियाँ प्रचलित है यथा—चोर की दाढी मे तिनका, जिसकी लाठी उसकी भैंस, ऊंट किस करवट बैठेगा, के पीछे रही हुई घटनाओ को आधार बनाकर जो कवित्त लिखे है, वे सीधे हृदय को छूते हैं। हृदय की सरलता को व्यक्त करने वाली घटना से संबंधित यह कवित्त कितना सहज-सरल बन पड़ा है—

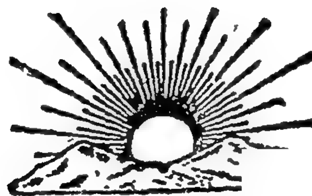
गुरु शिष्य चल आये, चेलाजी गोचरी जाये,
दाता ने पकौडे दिये, गिने तो बत्तीस है।
मार्ग मे करे विचार, गुरुजी का अति प्यार,
आधे तो देंगे ही अभी, खालूं बकसीस है।
खाते-खाते एक रहा, गुरुजी से आय कहा,
सुन के वृतान्त गुरु, लाये नही रीस है।
कैसे खाया ? ऐसे खाया, देख गुरु हरसाया,
"सोहन" सरल मुनि, बने जगदीश है॥

इस प्रकार 'काव्य त्रिवेणी' में संकलित तीनों कवि जैन काव्य धारा की नैतिक उद्‌बोधना और सामाजिक संस्कारशीलता का सामान्य प्रति-

निधित्व करते हुए भी अपनी विशिष्ट पहचान रखते है। सफल लेखक और क
श्री वल्लभ मुनिजी 'प्राज्ञकिंकर' ने इस ग्रन्थ के माध्यम से जिन तीन कवि
को हिन्दी जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया है उससे निश्चय ही सम-सामयिक हि
कविता को, जो आस्था, विसगति, कुण्ठा और दिशाहीनता से ग्रस्त है, आत
चिन्तन और समाज-संस्कार का धरातल मिलेगा।

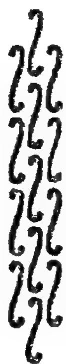
—डॉ० नरेन्द्र भानावत
एसोशियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज

7 नवम्बर, 1985



काव्य - त्रिवेणी

(प्रथम-धारा)



अद्वितीय-सहिष्णु, संयमनिष्ठ, बहुश्रुत, स्वामीनाथ

सद्गुरुदेव पूज्य श्री १००८ श्री



श्री धूलचन्दजी महाराज साहब

'रेणु'

卐

स्वामीनाथ - पूज्य

श्री धूलचन्द-गुरु-स्तुति

—※ मालिनी वृत्तम् ※—

जयति सुजनतानां, योजने योक्तृचन्द्रः,
सुगुण - गण - गरिम्ना, गीयमानो गुणीन्द्रः ।
सतत समितिसूक्त्या, सूरि - सूर्य - प्रकेन्द्रः,
जयतु दिवि हि देवैः, धूलचन्द्रो मुनीन्द्रः ।

—※ पद्यार्थ ※—

भवि को सन्मार्ग बताने से,
तुम "योक्तृचन्द्र" कहलाते हो ।
गुण गण गरिमा से स्तुत्य बने,
गुणियों में इन्द्र सुहाते हो ।।
समिति सूक्त के भाषण से,
आचार्य समान मुनीश्वर हो ।
'श्री धूलचन्द्र' गुरुराज आपकी,
सदाकाल हो जय जय हो ।।



जीवन-परिचय

जालिया II ग्राम बिजयनगर से पश्चिम में करीब ७ मील की दूरी पर खारी नदी के उत्तरीय तट पर बसा हुआ है। इसी ग्राम में वि सं. १६३६ की माघ शुक्ला ५ (वसन्त पचमी) को श्रीमान देवकिरणजी मालाकार के घर में पूज्य गुरूदेव श्री धूलचन्दजी म० सा० का जन्म हुआ। बाल्पकाल से ही आपकी मेघाशक्ति अत्यन्त तीव्र एव विलक्षण थी, इसी कारण आप वहां की सेकन्ड्री स्कूल के प्रथम श्रेणी के प्रथम छात्र थे।

वि सं. १६५१ के ग्रीष्मावकाश में पूज्य गुरूदेव श्री विजयलालजी म० सा० का जालिया में पदार्पण हुआ एव पुण्य योगात् आप को भी पूज्य गुरूदेव श्री की सेवामें आने और रहने का अवसर मिला। साधु पुरूषों के दर्शन व प्रवचन श्रवण से आपकी प्रसुप्त आत्मा में जागृति हो आई एव गुरूदेव श्री के साथ ही विहार कर गये। इसी वर्ष का चातुर्मास आपने गुरूदेव श्री की सेवामें रहकर नसीराबाद मे ही बिताने का दृढ़ निश्चय भो कर लिया।

वि सं. १६५१ के चातुर्मास का समय। आपका शास्त्रीय अध्ययन अनवरत चल रहा था। जालिया के माली समाज के कुछ भाइयों ने एक दिन नसीराबाद थाने मे पहुंच कर रिपोर्ट की कि हमारी समाज का एक लडका यहां जैन साधुओं के पास में रह रहा है उसे हमें पुनः दिला दें। थानेदार ने तत्काल स्थानक के बाहर जाकर बालक को बुलाया और थाने तक चलने को कहा। गुरु से पूछकर आप थानेदार के साथ थाने पहुंचे तो उसने अपना रौब ऐंठते हुए कहा–ओ बच्चे ! तू साधुओ के पास क्यों रहता है ? ये तेरे सम्बन्धी तुझे लेने आये है, इनके साथ अपने घर चला जा।

आपने अपने निश्चय को अडिग रखते हुए कहा–मै गुरूदेव के समर्पित हो चुका हूं। वे मेरे सर्वस्व है। अतः मैं जालिया II नही जाऊँगा। गुरू की सेवामे ही रहूंगा और साधु बनूंगा। थानेदार ने अपने सिपाही से कहा-इस लड़के को अन्दर बैठा दो। थोड़ी देर में अक्ल ठिकाने आ जायेगी। और आपको अन्दर बिठा दिया। आपने निर्भय होकर वहां महामन्त्र नवकार का अखण्ड जाप प्रारम्भ कर दिया।

थोड़ीसी देर में ही थानेदार के उदर में भयकर पीड़ा उत्पन्न हो गई। पीड़ा से व्याकुल हो कर कबूतर की भांति इधर उधर लोट रहे थे कि आपका एक मित्र (जो यही का एक श्रावक था) आ पहुंचा। थानेदार को इस प्रकार

पीडित देखकर पूछा मित्र ! क्या हो गया ? पेट मे भारी दर्द है, चैन नही ! कही मर न जाऊ ! थानेदार का जवाब सुनकर मित्र बोला-थानेदार जी ! कही निरपराध को सताया होगा किसी साधु पुरुष के चित्त को दुखाया होगा। बोलो ! सच बोलो !! सही है न ! थानेदार को समझने देर न लगी ! तत्काल उस बालक को पास में बुलाया और पूछा:- बोल। तूं क्या चाहता है। आपने कहा:-मैं साधु बनूंगा। मुझे मेरे गुरुदेव के पास पहुंचा दो। और कुछ नही चाहता। थानेदार ने उनके सम्बन्धियो को समझा दिया और भविष्य में कभी ऐसा न करने का उनसे पत्र लिखा लिया। बालक को पुनः सिपाही के साथ स्थानक में पहुंचा दिया। दैवयोगात् थानेदार का पेट दर्द भी मिट गया। यह थी आपकी नवकार मन्त्र पर अटूट आस्था।

वि सं. १९५२ की ज्येष्ठ कृष्णा १ को नसीराबाद के पास सोकलिया ग्राम मे गुरुदेव श्री ने आपको जैन श्रमण दीक्षा प्रदान की। दीक्षा लेने के साथ ही अपनी आत्मा की सौ सौ कलियों को पूर्ण विकसित करने के लिये आप आगम, व्याकरण, कोष, ज्योतिष आदि के अध्ययन में विनय से संलग्न हो गये। "खिण निकमो रहणो नही, करणो आतम ज्ञान" के अनुसार आप भारण्ड पक्षी की भाति सदा अप्रमत्त रहते थे। स्वाध्याय से निपटे तो लेखन मे और लेखन से निपटे तो स्वाध्याय मे लीन हो जाते।

आप सहिष्णुता के अद्वितीय धनी थे। आपकी जघा पर एकदा नासूर का रोग हो गया। उपचार करने पर भी वह गहराता गया गया तो अंत मे आपरेशन का निर्णय हुआ। वि.स. १९७६ मे जब आप मसूदा में विराजमान थे तब स्थानीय चिकित्सालय मे सेवारत डॉक्टर श्री छोटु भाईजी देसाई के द्वारा ऑपरेशन हुआ। बेहोश करने की दवा सूघे बिना ही आपने २ इन्च गहरा एवं ४ इन्च लम्बा चौडा ऑपरेशन करवा लिया। आपकी इस अद्भुत सहिष्णुता को देखकर डॉक्टर भी चकित रह गया।

येन केनापि प्रकारेण सयम साधना मे आई शिथिलता एवं मर्यादा-हीनता आपको सह्य नही थी। अपने शिष्यो के प्रति वे पूर्ण सावधान थे। आपकी आज्ञा प्राप्त कर जब प्रवर्तक श्री पन्नालालजी म० सा० ठा० २ वि० सं० १९९२ के फाल्गुन मास मे तीर्थराज पुष्कर पधारे और वही पास के ग्राम गनाहेडा में माताजी के नाम पर होने वाली हजारो भेसो की बलि को सुनकर दया-द्रवित हो गये। गुरू की आज्ञा मगवाकर आप माताजी के मन्दिर पर

जा बिराजे। २½ दिन तक प्रबल प्रयास के बाद बलि बन्द होने का कार्य सम्पन्न हुआ। इसी प्रसंग में आपने एक बाबा को बलि बन्द करने का उपदेश करते हुए मार देने की धमकी भी दे डाली। इस धमकी से उदण्ड बाबा घबडाकर भाग छूटा था, किन्तु जब आप अजमेर पूज्य गुरूदेव श्री के पास पधारे तो आपको सावद्य हिंसाकारी भाषा के प्रयोग पर प्रायश्चित देकर दोष का शुद्धिकरण करवाया। यह थी आपकी सयम प्रियता एवं शिष्यों के प्रति कल्याण भावना।

वि० सं० १९८६ का चातुर्मास थांवला सघ के विशेष आग्रह पर शारीरिक स्वास्थ्य का आगार रखते हुए स्वीकार किया। थांवला के लिए अजमेर से बिहार भी कर दिया। मार्ग में पैर में फोड़ा हो जाने से वह चातुर्मास पुष्कर राज में ही हो गया। वहीं पर श्वास रोग का आक्रमण होने पर भादवा सुदी १४ को सलेखना के साथ संघ साक्षी से संथारा किया तथा आध घन्टे बाद ही स्वर्गलोक को पधार गये।

आपका स्वभाव शांत था, प्रकृति सरल, मृदु एवं गम्भीर थी। प्रकाण्ड विद्वान् थे, अथक परिश्रमी थे, एवं उच्च कोटि के आगम व्याख्याता थे। आपकी लेखनी के अक्षर मोती जैसे थे। आपके द्वारा हस्त लिखित कई चरित्र, श्लोक, सवैया, दृष्टान्त, ग्रन्थ एव जैन तत्व ज्ञान की पुस्तकें आज भी विद्यमान है। ज्योतिर्विद्या पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपकी रचनाओ में लालित्य एव पाण्डित्य दोनों का अपूर्व सगम है। साहित्य रचना पर से प्रतीत होता है कि आप हिन्दी, गुजराती, उर्दू, संस्कृत, प्राकृत आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे।

क्या ?		कहाँ !

卐 मङ्गलाचरण 卐

१	१८	२१	२	२३
१९	१६	९	१४	७
२०	११	१३	१५	६
२२	१२	१७	१०	४
३	८	५	२४	२५

(तर्ज—श्री नेमीश्वर सम्भव०)

श्री आदीश्वर अरह जिनन्द, नमी अजित जिन पूनमचन्द ।
अश्वसेन कुल उदियो भाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥ १ ॥
मल्लिनाथ शान्ति वरदाय, सुविधि अनन्त प्रणम्या सुख थाय ।
सुपारस वर गुण-मणि-खाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥२॥
मुनि सुव्रत श्रेयांस दयाल, विमल धर्म जिन जग प्रतिपाल ।
पद्म प्रभु नेमिनाथ बखाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥३॥
वासुपूज्य कुन्थु जिनराज, शियलाभिनन्दन साध्या काज ।
सम्भव चन्द्र प्रभु सुमति सुजाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥४॥
वृद्धिकरण वर्द्धमान जिनेश, मल्लि मुनीन्द्र तनु धनु पच्चीस ।
इम थयो पणसठी यन्त्र प्रमाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥५॥
ये जिन जपतां सिझया काज, रंक केई लह्या राज समाज ।
त्रिकरण योग धरी वर ध्यान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥६॥
इम जाणी भविकां नित एह, जिन गुण जपियो धरी सनेह ।
'रेणु'लहो जिम अमर विमाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥७॥

दोहा

नमन करहुँ निशदिवस मन ! नमत बधत बहुमान ।
नरम 'रेणु' का उर्ध्वगमन, नग-सुत को पग थान ॥१॥

अर्थ

कवि अपने मन को संकेत करते हुए हमें एक हितकारी सदेश दे रहे हैं। उनका कथन है कि हे मन ! तू सदा नम्रता का सद्‌गुण धारण कर। क्योंकि नम्रता जीवनोन्नति की पहली सीढ़ी है और बिना नम्रता के कोई कभी ऊचा नहीं उठ सकता है । हम देखते है कि नम्र-नरम बना हुआ रजकण चरण-तल के चपेटे खाकर भी उसी व्यक्ति के मस्तक-शिखर पर जा बैठता है जो उसे चपेटे मारता है और नग-सुत याने पत्थर अपनी एक अकड़ाई के कारण पृथ्वीतल पर ही ठोकरें खाता रहता है ।

सारांश यह है कि हम भी विनय का सद्‌गुण धारण करें ॥१॥

दोहा

प्राण जाय पै धर्म ते, डिगते नहिं जो शूर ।
'रेणु" वही सुख अनुभवे, श्रद्धालु अकरूर ॥२॥

अर्थ

प्राणों की बलि देकर पर भी जो व्यक्ति अपने धर्म से—प्रण से किंचिन्मात्र भी नहीं डिगते–उसे नहीं छोड़ते, वस्तुतः वे ही शूर-वीर श्रद्धालु एवं सज्जन है तथा सच्चे सुख का अनुभव भी वे ही करते है ॥२॥

दोहा

'रेणु' सोना अरु समय, दो जग महंगी चीज ।
पाकर वृथा न खोइए, संचो सुकृत बीज ॥३॥

अर्थ

संसार में दो वस्तुएं मूल्यवान् है प्रथम सोना और दूसरा समय । ये दोनों वस्तुए हमें भाग्योदय से प्राप्त है अतः इन्हें व्यर्थ न खो कर सत्कार्य द्वारा पुण्य-संचय करना हमारे लिए अति श्रेयस्कर है ॥ ३ ॥

दोहा

'रेणु' वाणी इक बार सुन, समझू समझै सहल ।
बार बार वाणी सुने, पिण नहि समझै बैल ॥ ४ ॥

अर्थ

समझदार व्यक्ति वाणी को एक बार सुन कर ही उसके रहस्य को समझ लेता है किन्तु अनसमझ-मूर्ख व्यक्ति बैल की भाति वार वार वचन सुन कर भी वात को नही समझ पाता है ।। ४ ।।

दोहा

स्वजन, सम्बन्धी, द्रव्य बल, भुज बल, बल सुमित्त ।
'रेणु' सबन में श्रेष्ठ बल, बुद्धि बल सुपवित्त ।। ५ ।।

अर्थ

स्वजन सम्वन्धी वल, धन वल, भुज बल, तथा मित्र बल आदि अनेक बल ससार मे माने गये है किन्तु उन सब बलो मे एक बुद्धि बल ही सुपवित्र एव शुद्ध वल है ।। ५ ।।

दोहा

नगजेश गलभूषण भख, अङ्गज पति वर वाम ।
संच्यो ते बिन 'रेणु' कहे, नरतन निपट निकाम ।। ६ ।।

अर्थ

महादेवजी के गले के भूषण सर्प का भक्ष्य पवन है और पवनाङ्गज श्री हनुमान के पति (स्वामी) रामचन्द्रजी का स्त्री रत्न श्री सीताजी ने जिस शील धर्म का पालन किया है उस शील धर्म की आराधना के बिना यह नरतन पाना व्यर्थ है ।। ६ ।।

दोहा

पर वनिता विलसन तजो, चहो जो जीवन आस ।
'रेणु' कहे रण में रूल्या, रावण से नृप खास ।। ७ ।।

अर्थ

यदि हमे जीवन की परिभाषा मे जीने की अभिलापा है तो पर स्त्री सेवन की इच्छा का परित्याग कर देना चाहिए । क्योंकि एक परस्त्रीहरण मात्र से ही तीन खण्ड के स्वामी प्रति वासुदेव रावण जैसे वडे राजा भी समर भूमि मे समाप्त हो चुके हैं तो दूसरो का कहना ही क्या ।। ७ ।।

दोहा

गिरिजांगजवाहनभक्षक, तसु भख सुत ना ईश ।
'रेणु' तास तिय हार को, ईशानुज लियो शीश ।। ८ ।।

अर्थ

पार्वती के पुत्र श्री गणेशजी के वाहन चूहे' का भक्षक 'सर्प' प्रसिद्ध है तथा सर्प का भक्ष्य पवन है। पवन-सुत श्री हनुमान के स्वामी श्री रामचन्द्रजी की स्त्री सीताजी का हरण कर लेजाने वाले रावण का ईशानुज (लक्ष्मण) ने युद्ध-क्षेत्र में शीश उड़ा दिया था तो पर स्त्री लम्पट का क्या होगा यह विचारणीय है ॥ ८ ॥

दोहा

गिरिजापति घर जन्म पा, जा वसियो शिव भाल।
राहु ग्रसित तोहि चन्द्र को, 'रेणु' विषम विधि चाल ॥९॥

अर्थ

सागर के विशाल उदर से जन्म लेने वाले तथा महादेवजी के विस्तृत ललाट पर जा बसने वाले उस चन्द्रमा को भी शान्ति कहा ? ऊचे कुल मे जन्मा और ऊचा ही उसे स्थान मिला फिर भी उसके पीछे राहु लगा हुआ है। अहो ! वास्तव मे कर्म की गति विचित्र है ॥ ९ ॥

दोहा

'मथुरा' को उल्टा लिखो, मध्य वर्ण कर दूर।
जसु मुख शेष न 'रेणु' कहे, तसु मुख मध्य जरूर ॥१०॥

अर्थ

'मथुरा' शब्द को उल्टा लिख कर उसके मध्य अक्षर 'थु' को दूर कर देने पर शेष रहा 'राम' शब्द जिसके मुख से नही निकल पाता है तो उसके मुख पर सारा संसार मध्य अक्षर 'थु' तो अवश्य ही डालता है अर्थात् उसका सर्वत्र अनादर ही होता है ॥ १० ॥

दोहा

सब भूषण में श्रेष्ठ है, वाणी भूषण एक।
'रेणु' कहे धारो गुणी, सीखो सुखद विवेक ॥११॥

अर्थ

एक संस्कृत सूक्ति में कहा है कि 'वाग्भूषणं भूषणम्' अर्थात् वाणी ही सर्व आभूषणों में उत्तम आभूषण है। यदि वाणी अमृत-रस की कूंपी है तो जहर का घट भी है। विवेकपूर्वक कहा हुआ वचन अमृत है और अविवेक से कहा गया वचन विष है। अतः हमें अपने मुख से सदा ऐसे वचन निकालने चाहिये जो सुन्दर हो, मधुर हो और साथ में सर्व सुखप्रद भी हो ॥ ११ ॥

दोहा

मूरख वाद न कीजिए, जो खुद सच्चा होय ।
'रेणु' कहे हानि सिवा, लाभ तिहाँ मत जोय ।।१२।।

अर्थ

यदि व्यक्ति स्वयं सच्चा है अर्थात् विद्वान है तो वह कभी भी मूर्ख व्यक्ति के साथ वाद-विवाद न करे क्यों कि मूर्ख के वाद मे हानि व अपमान के अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नही मिलने का है। अतः हठी व मूढ व्यक्ति से विशेष बात न करने मे ही आत्महित सन्निहित है ।। १२ ।।

दोहा

बद भावों को हृदय में, मूल बसाओ नांहि ।
'रेणु' कहे सब शास्त्र को, सार भर्यो इह मांहि ।।१३।।

अर्थ

हमें हमारे मन मे भूल कर भी बुरे भावों को स्थान नही देना चाहिए। क्यो कि बुरे भावों से याने बुरे विचारों से व्यक्ति स्वय अपने आपका पतन व विनाश कर लेता है। अतः शुभ अध्यवसायो-विचारो को सदैव हृदय मे रखे क्यों कि शुभ भावों की प्रवृत्ति मे ही समस्त शास्त्रों का रहस्य भरा हुआ है ।। १३ ।।

दोहा

कसरत अरु ब्रह्मचर्य को, पुष्ट रख्या तन मांय ।
निर्बल कृशतन वृद्धता, 'रेणु' पास नहीं आय ।।१४।।

अर्थ

पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन व व्यायाम के करते रहने से शरीर में कमजोरी, दुर्बलता, एव वृद्धता पास तक नही फटकती है ।। १४ ।।

दोहा

बालक, बन्दर, स्वान, शिष्य, नौकर, विधवा नार ।
'रेणु' कहे इनको कदा, मुंह न लगानो सार ।।१५।।

अर्थ

कवि का कथन है कि उपर्युक्त बालकादि छहों प्राणियो को मुंह नही लगाना चाहिए। क्यो कि मुंह लगा हुआ बालक प्रमोद वश सभ्य स्थान पर वड़ों के चपेटा लगा देना दाढ़ी मूछ-या वस्त्र खीचना आदि अनुचित कार्य कर लेता है बन्दर व स्वान-कुत्ता अज्ञानता वश कभी काट सकता है। शिष्य-

नौकर को मुंह लगाने पर अनुशासन भग कर देते है और विधवा स्त्री का अति संम्पर्क तो सदा वर्जनीय कहा ही है क्योंकि उससे गौरवता मे हानि पहुंचने की आशंका बनी रहती है। इसलिए उपर्युक्त छहों को मुह लगाने से लाभ के स्थान में हानि ही विशेष होती है ।। १५ ।।

दोहा

'रेणु' शून्य मकान वन, युद्ध भूमि अरि मांहि ।
गाफिल हो सोवे सदा, प्राण नाश हो तांहि ॥१६॥

अर्थ

शून्य मकान में, वन में, युद्ध भूमि में, तथा शत्रु जनों के स्थान में जो व्यक्ति अचेत अवस्था में अर्थात् असावधानी से रहता है तो वहाँ उसे अपने प्रिय प्राणों से भी हाथ धोना पड़ता है ।। १६ ।।

दोहा

जार, जुवारी, चोर जन, राजद्रोही, बदमाश ।
पांचों संगति परिहरो, 'रेणु' चहो सुख आश ॥१७॥

अर्थ

जो व्यक्ति सुख पाने की आशा रखता हो उसे जार-स्त्रीलम्पटी की, जुवारी की, चोर की, राज्य विरुद्ध कार्य करने वालों की तथा बदमाश व दुराचारियों की सगति का अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए ।। १७ ।।

दोहा

नारी चोर जुवारि जन, बेइमान अपछन्द ।
'रेणु' सुघड़ ताहि गिनो, फंसे न इनके फन्द ॥१८॥

अर्थ

जो इन निम्नोक्त पाचों व्यक्तियों के फन्दे में नही फँसता है वस्तुतः वही समझदार पुरुष है। वे पाच ये है—स्त्री, चोर, जुवारी अविश्वासी, और पांचवा दुराचारी ।। १८ ।।

दोहा

कहनो तिरिया को करे, आप विचारत नांहि ।
सो नर उल्लू काठ का, 'रेणु' कहे जग मांहि ॥१९॥

अर्थ

जो व्यक्ति स्वय अपने मस्तिष्क से न सोचकर स्त्री जाति के कथनानुसार ही अपना कदम आगे वढ़ाता है वह व्यक्ति वास्तव मे काठ का उल्लू याने मूर्ख ही है ।। २० ।।

दोहा

बाल जवानी वृद्धपन, कोउ अवस्था होय ।
स्वतन्त्र रहिवो नारि को, 'रेणु' भलो नहिं कोय ॥२०॥

अर्थ

स्त्री जाति का किसी भी समय स्वछन्द रहना उचित नही है फिर भले ही बाल्यकाल हो, युवाकाल हो, या वृद्धावस्था ही हो। तीनों ही अवस्था मे नारी जाति का स्वतन्त्र निवास अच्छा नही है ॥ २० ॥

दोहा

विज्ञ न त्यागे विज्ञता, शठ को धनवन्त जोय ।
गणिकालंकृत पेखि के, कुलजा कुलटा होय ? ॥२१॥

अर्थ

मूर्ख व्यक्ति को धनवान देखकर विद्वान् पुरुष कभी अपनी विद्वत्ता का परित्याग नही करता है। आभूषणों से सुसज्जित वैश्या या व्यभिचारिणी स्त्री को देखकर क्या कभी कुलवती सदाचारिणी स्त्री, व्यभिचारिणी बन जाती है ? अर्थात् नही बनती ॥ २१ ॥

दोहा

विद्या बाधक वस्तु षट्, 'रेणु' तजो दिनरात ।
अलस, नींद, स्त्रीसंग, जुवा, नाट्य, खेल वाहियात ॥२२॥

अर्थ

यदि प्राणी विद्या-धन सग्रह करना चाहता है तो उसे विद्या में बाधा उपस्थित करने वाली निम्नोक्त ६ वस्तुए छोड़नी होगी । १–आलस्य, २–निद्रा, ३–स्त्रीसग, ४–जुवा, ५–नाटक, ६–व्यर्थ के खेल ॥ २२ ॥

दोहा

तन की रक्षा कर करे, पलक भलाई नैन ।
कहे सुने बिन 'रेणु' यूं, करत भलाई सैन ॥२३॥

अर्थ

जैसे हाथ शरीर की रक्षा करते हैं और पलक नैत्रो की रक्षा करते हें वैसे ही सज्जन पुरुष भी बिना कहे सुने दूसरो की भलाई करते है ॥ २३ ॥

दोहा

परदेशी, रोगी, निधन, शोकाकुल नर कोय ।
'रेणु' दर्शन मित्र को, औषधि रूपा होय ॥२४॥

अर्थ

विदेश में, रोगावस्था में, निर्धन काल में तथा शोक के समय में यदि प्राणी को मित्र का दर्शन हो जाता है तो उस समय वह दर्शन औषधि के समान काम कर दिखाता है। अर्थात् वह औषध से भी अधिक लाभदायक होता है ।। २४ ।।

दोहा

क्षण राजी, नाराज क्षण, रुष्ट तुष्ट क्षण होय ।
'रेणु' ऐसे पुरुष ते, दूर वस्यां सुख जोय ।।२५।।

अर्थ

जो व्यक्ति क्षण में प्रसन्न और क्षण में ही अप्रसन्न हो जाय अथवा क्षण क्षण में अपनी त्योरियां बदलता रहे ऐसे मनुष्य से दूर रहना ही सुखदायक है ।। २५ ।।

दोहा

शिष्य, मुसाफिर, वृद्धजन, पागल, मूरख, बाल ।
इनते मस्करि मत करो, "रेणु" कहे कोउ हाल ।।२६।।

अर्थ

उपर्युक्त छहो प्राणियों से किसी भी वक्त हसी मजाक नही करना चाहिए। इनसे मजाक करने पर व्यक्ति को नीचा मुंह करना पडता है। क्योंकि कलह का मूल हसी मजाक है ।। २६ ।।

दोहा

मतवाला, मूरख, रुजी, बालक, नारी पंच ।
गाली दिये "रेणु" कहे, बुरा न मानो रंच ।।२७।।

अर्थ

मदोन्मत्त व्यक्ति, मूर्ख, रोगी, बालक एवं स्त्री यदि ये पांचो अपशब्द सुना दें तो भी उसे बुरा नही मानना चाहिए ।। २७ ।।

दोहा

नीच हाथ धन जात ही, 'रेणु" मानि हो जात ।
हकुमत कर लागा जुलम, करने लगे कुजात ।।२८।।

अर्थ

अधम पुरुप के हाथ में अर्थात् तुच्छ दिल वाले व्यक्ति के पास मे धन आते ही वह अभिमान से उन्मत्त हो जाता है और फिर दूसरों पर अपना आदेश चलाता हुआ अन्याय युक्त अकार्य करने मे भी नही सकुचाता है ।। २८ ।।

दोहा

निज विद्या, धन, बुद्धिबल, समय परे दे काम ।
अपर भरोसे "रेणु" कहे, लेवे दुख बदनाम ।।२९।।

अर्थ

एक लोकोक्ति है "कण्ठे विद्या-अण्टे दाम" वाला व्यक्ति कभी कही पर विपत्ति नही पा सकता है ।" सम्भव है इसी लोकोक्ति का लक्ष्य कर कवि ने अपने विचार व्यक्त किए हो । उनका कथन है कि अपने पास की विद्या सम्पत्ति व बुद्धि समय आने पर काम करती हुई नाम को समुज्ज्वल बना देती है । इसके विपरीत दूसरों की सम्पत्ति, विद्या और बुद्धि पर आधारित रहना अपने आपको धोखे मे धकेलना और दु.ख व अवहेलना प्राप्त करना है ।।२९।।

दोहा

"रेणु" कहे कारज सदा, जो हो करो विचार ।
बिन सोचे करि क्यों लहो, पश्चात्ताप बिगार ।।३०।।

अर्थ

कवि का कथन स्पष्ट है । व्यक्ति को जो कुछ भी करना है उसे पूर्ण सोच विचार कर तथा गहन चिन्तन मनन के पश्चात् ही करना है । बिना सोचे व विचार किए सहसा कार्य कर लेना पश्चात्ताप व विनाश के झलकते लक्षण है ।। ३० ।।

दोहा

"रेणु" नतीजो भल बुरो, गहि मुख काढो बात ।
सहज कही सूली समी, खटकेगी दिन रात ।।३१।।

अर्थ

वक्ता को बोलते समय या बोलने से पूर्व अवश्यमेव वह विचार करना आवश्यक है कि मेरे द्वारा कथित शब्दों से कितनो का हित होगा और कितने प्राणियों का अहित होगा । हिताहित का पूर्णरूपेण ध्यान करने के पश्चात् ही वक्ता अपने मुख से वाणी मुखरित करे । कारण यह है कि बिना विचारे कहा गया वचन बाण का सा रूप धारण करता हुआ शरीर के ही नही अपितु हृदय के भी अनेकश: खण्ड विखण्ड कर देता है एव आजीवन कण्टक व शूली के समान खटकता रहता है ।। ३१ ।।

दोहा

"रेणु" नतीजो भल बुरो, लखि लव सुखद सुबात ।
"रेणु" सदा या ते कदा, पास्यो नहि सुख घात ।।३२।।

अर्थ

शुभ या अशुभ फल का विचार करके व्यक्ति को मधुर वाणी का ही उच्चारण करना चाहिए क्योंकि सुखप्रद वाणी के भाषण से कभी व्यक्ति के सुख प्राप्ति मे बाधा नही आ पाती है ।। ३२ ।।

दोहा

हुँडी चिक, बिल, चिट्ठी अरु, नोटिस दस्तावेज ।
'रेणु' पढ़ी समझो जिती, करो हस्ताक्षर में जेज ।।३३।।

अर्थ

उपरि कथित छहों वस्तुओ पर हस्ताक्षर करने में उतनी ही देरी करनी चाहिए जितने में इन्हें पढ़कर उसके रहस्य को समझ ले । नही तो शीघ्रता से कभी व्यक्ति स्वयं संकट मे फस सकता है ।। ३३ ।।

दोहा

धनी, बली, हाकिम, चुगल, वैद्य और विद्वान ।
भलो न इन्हें रिसाइवो, 'रेणु' चहो धन प्राण ।।३४।।

अर्थ

व्यक्ति यदि अपना श्रेय, धन व जीवन चाहता है तो वह इन निम्नोक्त छः व्यक्तियों के साथ वैर विरोध न करे । १. धनवान्, २. बलवान्, ३. अधिकारी, ४. चुगलखोर, (निन्दक,) ५. वैद्य-डाक्टर और ६. विद्वान् । क्योंकि इन्हे खिजाने से धन मे, जन में, तन मे एवं जीवन मे, हानि की सम्भावना रहती है ।। ३४ ।।

दोहा

'रेणु' जवानी वक्त अरु, इज्जत वाणी बात ।
हाथ गई फिर नावहिं, सफल करो हर भाँत ।।३५।।

अर्थ

यह तो प्रत्येक प्राणी के अनुभव की बात है कि गया यौवन, गया समय, बिगड़ी हुई इज्जत व मुंह से निकला वचन और निकली हुई बात ये पांचों चीजे लाख लाख प्रयत्न करने पर भी पुनः प्राप्त नही हो सकती । जब तक ये हमारे पास हैं तब तक इनका सदुपयोग करके सफली-भूत बना लेना चाहिए । अपने पास से जाने के पश्चात् न तो कुछ कर सकते हैं और न उन पर हमारा आधिपत्य ही रहता है । अतः इन्हे प्राप्त कर कुछ न कुछ शुभ कार्य करते रहना ही श्रेयस्कर है ।। ३५ ।।

दोहा

'रेणु' मुक्ता मिनख को, कीमत आब ते होय ।

बिगर आब बिहु तुच्छ लख, नर ईज्जत मत खोय ।।३६।।

जिस प्रकार मोती का मूल्य आब-पानी पर आधारित है उसी प्रकार मनुष्य का मूल्य भी आब-इज्जत पर निर्धारित है । बिना पानी के मोती का कोई मूल्य नही होता ठीक वैसे ही बिना इज्जत के मनुष्य की ससार में कोई कीमत नहीं होती । अतः मोती व मनुष्य को क्रमशः पानी व इज्जत के बिना तुच्छ जान कर व्यक्ति सदैव अपनी इज्जत को सुरक्षित रखे व बढावे ।। ३६ ।।

दोहा

काम, क्रोध, सुख, शर्म वश, धर्म हि छोड़े नांय ।

'रेणु' कहे वो विज्ञनर ! आदर लहे जग मांय ।।३७।।

अर्थ

जो व्यक्ति काम, क्रोध, सुख व लज्जा के वश होकर धर्माराधन करना नही छोड़ता है वस्तुत वही व्यक्ति ज्ञानी है एव अन्ततो गत्वा ससार में सन्मान का स्थानप्राप्त करता है ।। ३७ ।।

दोहा

धर्म शक्ति वैराग्यता, पण्डितपन जिह मांहि ।

'रेणु' कहे होते हुए, धर्म तजै शठ प्राहि ।।३८।।

अर्थ

धर्माराधन करने की समर्थता, विरक्तता, व विद्वत्ता इन तीनो के होते हुए जो धर्म साधना नही करता है वह महामूर्ख ही कहलाता है ।। ३८ ।।

दोहा

'रेणु' सधन निर्धन समय, सर्दी गर्मी काम ।

भय वश हो निजकृत्य को, तजै नहीं मतिधाम ।।३९।।

अर्थ

विद्वान पुरुष किसी भी अवस्था मे अपने नित्य कर्म को नही छोडता फिर भले ही सधनता, या निर्धनता का समय हो, सर्दी अथवा गर्मी के दिन हो यद्वा भोगो के मनोहारी साधन अथवा भय का भयावह वातावरण ही क्यो न हो ।। ३९ ।।

दोहा

समझ सोच प्रारम्भ करो, बिचे न बैठो त्याग ।
'रेणु' डरो मत विघ्न लखो, कृत्य सफल त्रय-माग ।।४०।।

अर्थ

कार्य को सफल सम्पन्न करने के लिए यहां तीन उपायों का दिग्दर्शन कराया गया है । वे ये है—

१ खूब अच्छी तरह सोच विचार कर कार्य प्रारम्भ करे ।
२. प्रारम्भ किए गए कार्य को बीच मे नही छोड़े एव,
३. कार्य की सफलता में आने वाले विघ्नों से नही डरें अपितु कार्य करने मे रत रहे । इस प्रकार सफनता प्राप्ति के ये तीन मार्ग है ।

दोहा

'रेणु' अपढ़ रहि उच्चपद, दरिद्र पने सुख थोक ।
दुष्कृत कर यश पाइवो, चहे सो मूरख लोक ।।४१।।

जो व्यक्ति निरक्षर अशिक्षित रहता हुआ उच्चपद चाहता है, दरिद्र दशा में सुख वैभव एवं बुरे कार्य करते हुए यश को चाहता है वह वस्तुतः मूर्ख है, अज्ञानी है । क्योंकि निरक्षर को उच्चासन, दरिद्र को सुख और दुष्कर्मी को यश कभी प्राप्त नही होता है ।। ४१ ।।

दोहा

चोर, जार, बदमाश की, सस्ती भी जो होय ।
मोल अजाणो वस्तु को, 'रेणु' रखो मत कोय ।।४२।।

अर्थ

कवि ने व्यापारी वर्ग को एक उद्‌बोधन किया है कि-चोर-व्यभिचारी तथा दश नम्बरी व्यक्तियो की सस्ती से सस्ती कोई भी वस्तु मिलती हो तथापि उस वस्तु का पूर्ण मूल्य जाने बिना अपने पास रखना उचित नही है ।। ४२ ।।

दोहा

चोर, जार, बदमाश जो, मुफ्त चीज कोउ देय ।
'रेणु' कहे समझो सुघड़, भूल चूक नहीं लेय ।।४३।।

अर्थ

यदि लुटेरा, स्त्री लम्पट व वदमाश व्यक्ति कोई वस्तु मुफ्त ही देता हो तो सुघड़, नेक पुरुप उसे भूल चूक कर भी नही ले ।।४३।।

दोहा

सद् वस्तु त्यागन करी, अनुचित गहे जो कोय ।
'रेणु' वली से दुश्मनी, करे सो मूरख होय ॥४४॥

अर्थ

जिस प्रकार बलि पुरुष से शत्रुता करने वाला निर्वल पुरुष मूर्ख कहलाता है ठीक उसी प्रकार श्रेष्ठ जीवनोन्नायक योग्य आध्यात्मिक वस्तुओं का त्याग करके पतनकारी भौतिक वस्तुओ को ग्रहण करने वाला पुरुष भी मूर्ख ही कहलाता है ॥ ४४ ॥

दोहा

'रेणु' कहे पर धन हरे, पर नारी अभिलाष ।
सज्जन को अपमानिया, निश्चय लेत विनाश ॥४५॥

अर्थ

कवि का कथन सर्वथा सत्य है । क्योकि विनाश या पतन उसी व्यक्ति का होता है जो धर्म के प्रशस्त पथ से पतित होकर अधर्म रूप उन्मार्ग मे चला जाता है । पर धन हरण करना, परस्त्री गमन करना एव सज्जन पुरुषों का अपमान करना अधर्म के ही अग है और इन अधर्म कार्य को करने वाले का यदि विनाश या पतन हो तो कोई असम्भव नही है । अधर्मी का सदा से विनाश होता आया है, हो रहा है और भविष्य में होता ही रहेगा ॥ ४५ ॥

दोहा

'रेणु' समर्थाई छते, करे क्षमा सुख रूप ।
दानी रहे निर्धन समय, ते नर गुणी शिर भूप ॥४६॥

अर्थ

जो समर्थ होकर भी क्षमा करता है उसकी बलिहारी है ! वह धन्य है ! बेचारा निर्वल-सत्त्व-हीन वैर का बदला ले ही क्या सकता है । जो सबल होने पर भी वैर का बदला नही ले अपितु क्षमा-गुण मे स्थित रहे वही धन्यवाद का पात्र है । वैर का बदला लेना उतना कठिन नही जितना कठिन क्षमा कर देना है । क्योकि क्षमा करने के लिए आत्म सयम एव हृदय-विशालता की नितान्त आवश्यकता होती है । इसी प्रकार निर्धन काल में दानी रहना-दीन दु खी की सेवा करते रहना भी अत्यन्त दुष्कर है । ये गुण विरलतर महा पुरुषों मे ही पाए जाते हैं । वस्तुतः उपर्युक्त महागुणो का धारक गुणी जनो के शिरो मुकुट के समान समादरणीय एव अभिवन्दनीय है ॥ ४६ ॥

दोहा

उत्तम मध्यम अधम के, 'रेणु' परखि विचार ।
यथा योग्य देणो तिन्हें, इल्म रु पद अधिकार ॥४७॥

अर्थ

व्यक्ति के उत्तम, मध्यम, तथा अधम जैसे विचार हो, अथवा जो जैसे विचारों वाला हो उसकी पूर्ण परीक्षा करके विचारानुसार ही उसे विद्या, पद व अधिकार देना चाहिए। योग्यता के विपरीत दिया गया शिक्षण, पद व अधिकार उसके स्वयं के लिए और अन्य जनों के लिए अहितकारक हो जाता है ॥ ४७ ॥

दोहा

आय बहुत अरु खर्च कम, प्रिय भाषी वलि नार ।
निरुज तन, अनुकूल सुत, 'रेणु' सुखद संसार ॥४८॥

अर्थ

संसार में अपना जीवन सुख पूर्वक वही व्यक्ति बीता सकता है जिसके निम्नोक्त सुयोग हों ? १. आय अधिक, २ आय से कम खर्च, ३. सत्य व प्रिय बोलने वाली स्त्री, ४. नीरोग देह, तथा ५ मन के अनुकूल कार्य करने वाला-आज्ञापालक सुशील पुत्र ॥ ४८ ॥

दोहा

धेनु, नारी, नौकरी, खेती, विद्या एह ।
'रेणु' कहे बेसुध रह्या, नाश होय पंचेह ॥४६॥

अर्थ

गाय, स्त्री, नोकरी, खेती और विद्या ये पांच चीजे विना देख रेख व विना श्रम के नष्ट हो जाती है ॥ ४६ ॥

दोहा

करज रहित, नीरोग तन, देशाटन स्वाधीन ।
बुध संगति, निर्भय पनो, 'रेणु' सुख कर पीन ॥५०॥

अर्थ

जो कर्ज रहित व तन से नीरोग हो, जिसका विदेश भ्रमण स्वतन्त्र हो, जो सत् संगति का रसिक एवं निडर हो वह सदैव सुखी जीवन जीता है ॥ ५० ॥

दोहा

शक्ति, उच्च अधिकार पा, करत भलाई नांहि।
'रेणु' कहे तसु बिहुँ गए, जग जन दुष्मन थाहि ॥५१॥

अर्थ

जो व्यक्ति शक्ति सम्पन्न एवं उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् भी प्राणियों का उपकार नही करता अपितु शक्ति व अधिकार की अहमत्ता में ही फूला फिरता है उसके समय आने पर बल व अधिकार भी चले जाते है और अनेक अन्य व्यक्ति शत्रु बन बैठते है अतः शक्ति व अधिकारिता प्राप्त करके सदैव सज्जनता के कार्य करते रहना चाहिए ॥ ५१ ॥

दोहा

सज्जन सो दुष्मन लगे, दुष्मन सज्जन लाग।
'रेणु' कहे तसु बिहुँ गए, उठै अचिंती आग ॥५२॥

अर्थ

जिस व्यक्ति को हितोपदेष्टा सत्पुरुष, दुष्मन से प्रतीत हों और दुष्ट जन सज्जन से मालूम होते हों अर्थात् जो सज्जनों से शत्रुता व दुर्जनो से मित्रता करता हो तो उस व्यक्ति के हृदय मे समय आने पर सज्जनों के दूर चले जाने से व दुष्टों से दु.खित हो जाने से पश्चात्ताप की भीषण ज्वाला धधक उठती है एव वह अन्दर ही अन्दर जलता रहता है ॥ ५२ ॥

दोहा

माया धन छाया समी, क्षण क्षण में क्षय थाय।
'रेणु' पाय अक्षय करे-ते जन दुर्लभ प्राय ॥५३॥

अर्थ

लक्ष्मी एक प्रकार से छाया के समान है। जिस प्रकार छाया कभी एक स्थल पर स्थिर नही रहती अपितु वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया आया करती है ठीक उस प्रकार ही यह माया है–लक्ष्मी है। यह भी किसी एक स्थान पर नियत नही रहती अपितु कभी यहां और कभी वहां इस प्रकार फिरा करती है और छायावत् न्यूनाधिक होती रहती है। किन्तु जो इस क्षय-स्वभाविनी चंचल लक्ष्मी को पाकर दान-पुण्य एव धर्म साधना के द्वारा अक्षय कर लेता है वस्तुतः वही व्यक्ति धन्यवाद का पात्र है ॥ ५३ ॥

दोहा

नारी नहारि कहाय जग, अत्यधिकारी होय।
'रेणु' ऐसी नारी पै, शठ विश्वासे कोय ॥५४॥

अर्थ

जो स्त्री अत्यधिक अधिकारों को पा कर पति को कुछ नहीं समझती हुई अपने आपको ही घर की स्वामिनी मानने लगती है वह स्त्री नारि-सिहनी ही है। ऐसी सिहनी स्त्री पर कोई मूर्ख व्यक्ति ही विश्वास करता है ॥ ५४ ॥

दोहा

तरु छेदक पोषक प्रति, छाया देत समान ।
'रेणु' सुजन, सर, सन्त, घन, सम गुण दायक जान ॥५५॥

वृक्ष, काटने वाले को एव पालने वाले को अर्थात् शस्त्र के प्रहार करने वाले को यद्वा पानी पिलाने वाले को समान रूप से फल फूल व छाया देता है। वह न छेदक पर रूष्ट होता है और न पोषक पर तुष्ट ही। अपितु वह सदा एक स्वभावी रहता है। इसी प्रकार सज्जन पुरुष, सरोवर, महात्मा, एव मेघ भी सब प्राणियों पर समभाव रखते हुए समान फल ही प्रदान करते है। इनमे विभिन्नता की न्यूनता अणुमात्र भी नही होती है। वस्तुतः इनका सम स्वभाव महान् है और समादरणीय है ॥ ५५ ॥

दोहा

आयु घटै तृष्णा बढ़ै, घट बढ़ मन परिणाम ।
'रेणु' कहे घट बढ़ नहीं, कर्म निकाचित आम ॥५६॥

अर्थ

व्यक्ति का ज्यों ज्यों आयुष्य घटता जाता है त्यों त्यो तृष्णा की वृद्धि होती है और साथ ही मनोभाव भी डिगमिगायमान बने रहते हैं। अर्थात् इन सभी मे घट बढ बनी रहती है किन्तु जिन निकाचित कर्मो का बन्धन हो चुका है उनमे कभी भी घट बढ नही हो सकती। उनका तो जितना बन्ध हो चुका है उतना उसका फल अवश्य ही भोगना पडता है ॥ ५६ ॥ अथवा

स्थानांग सूत्र में ४ प्रकार की वस्तुओ का वर्णन आता है:—

१. जो घटती ही रहती है .... .. वह है, आयु
२. जो बढती ही रहती है .... वह है, तृष्णा
३. जो घटती भी है और बढती भी है ... वह है, मन की भावना
४. जो न घटती है और न बढती है ... वह है, निकाचित कर्मो की स्थिति

इन्ही ४ वस्तुओं का इस दोहे मे कवि ने वर्णन किया है।

दोहा

दुर्जन नर अरु काक को, मन तन उज्ज्वल होय ।
'रेणु' कहे संसार मे, पतो न पायो कोय ॥५७॥

अर्थ

दुष्ट व्यक्ति का मन और कोवे (काक) का तन अपनी कालिमा को छोडकर कभी उज्ज्वल नही होने पाया है। अर्थात् दुर्जन का मन निन्दा-इर्ष्या आदि से कलंकित रहता है और कौवे का तन स्वाभाविक ही काला होता है अत: इन दोनों का मन व तन कही उज्ज्वल हुआ हो ऐसा ससार मे न सुना है और न कभी देखा ही है ॥ ५७ ॥

दोहा

धन ही से सब जन यहां, करते हैं सन्मान।
द्रव्य गए 'रेणु' कहे, करन लगे अपमान ॥५८॥

अर्थ

ससार स्वार्थ का घर है। जहाँ तक व्यक्ति से स्वार्थ पूर्ति होती रहती है वहाँ तक सारा परिवार व अन्य जन उस व्यक्ति का सत्कार व सन्मान किया करते है किन्तु ज्यों ही व्यक्ति स्वार्थ पूर्ति करने मे असमर्थ हुआ या धन हीन बन गया तो उसकी कोई सारसम्भाल नही करते। फिर भले ही वह निकट सम्बन्धी ही क्यो न हो उसका सर्वत्र अपमान होने लगता है। उसकी सार सम्भाल एक मात्र स्वार्थ-धन के पीछे ही थी ॥ ५८ ॥

दोहा

क्रोध, नदी, भयस्थानके, अघ, अजीर्ण के मांय।
काल-क्षेप 'रेणु' कहे, सदा होय सुखदाय ॥५९॥

अर्थ

क्रोध के आवेग मे, नदी के पूर में, भय के स्थान मे, पाप के कार्य मे, एव अजीर्ण में थोडे समय ठहर जाना बड़ा हितकारी होता है। थोडे समय ठहरने से हम बड़े बडे अनर्थो से बच जाते है। अर्थात् हमे विशेष हानि नही उठानी होती है ॥ ५९ ॥

दोहा

राग द्वेष जीते बिना, कभी न हो भव पार।
कल्पकोटि करणी करे, 'रेणु' नहीं कछु सार ॥६०॥

अर्थ

राग द्वेष इन दोनो की निवृत्ति के बिना कभी उद्धार होने वाला नही है। क्यों कि ससार का मूल ही राग द्वेष है। इष्ट वस्तु का सयोग हो जाने पर मन मे उनके प्रति ममत्व उत्पन्न हो जाना ही राग है और अनिष्ट पदार्थो

पर ग्लानि होना द्वेष है। राग द्वेष के हटे बिना हम चाहे करोड़ों वर्षों तक तप जप की साधना करते रहें, अनेक कष्टों व परीषहों को सहन किया करे किन्तु उससे हमारी मुक्ति नही हो पाती सच्ची मुक्ति तो राग द्वेष की मुक्ति से है! कहा है–कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव अर्थात् काषायिक भावों से मुक्त होना ही सच्ची मुक्ति है। अतः मुमुक्षु प्राणियों को यह उचित है कि वे कषाय वृत्ति का त्याग करते रहें ॥ ६० ॥

दोहा

सर्प, सन्त, अरु सिंह को, कबहुँ न छेड़ो कोय।
'रेणु' कहे शंका सुखद, छेड़्या भलो न होय ॥६१॥

अर्थ

सर्प, साधु एवं सिंह को कभी भी विशेष उत्तेजित नहीं करना चाहिए। इसके साथ जितनी शंका रख सके उतनी ही हितकारी है। क्योंकि कुपित हुआ सर्प-जीवन मुक्त कर सकता है, साधु अनिष्ट कर सकते है, और सिंह एक ही बार में जीवन का ख्वार किए देता है। अतः इन्हें कुपित नही करने में ही हमारा भला है ॥ ६१ ॥

दोहा

शक्ति, सम्पति, विद्याधन, दुर्जन के कर आय।
परदुख, गर्व, विवाद में, 'रेणु' व्यर्थ गमाय ॥६२॥

अर्थ

दुर्जनव्यक्ति शक्ति, सम्पत्ति व विद्या इन तीनों को क्रमश, परपीड़ा में, मान में, व वादविवाद में नष्ट कर देता है ॥ ६२ ॥

कुण्डलियां

वसुदाता प्यारो लगे, नहि केवल वसुधार,
वारिद को सब जग रटे, वारिधि नाम विसार।
वारिधि नाम विसार, वो है संग्रह करणा रो,
तां को फल यह भयो, नीचे स्थान रहिणा रो।
दानी मेघ सम गगन में, गर्जत 'रेणु' अपार,
वसुदाता प्यारो लगे, नहि केवल वसुधार ॥ १ ॥

अर्थ

कवि का कथन वस्तुतः सत्य है। समस्त संसार वारिद अर्थात् बादल को जितनी आदर की दृष्टि से देखता आया है उतनी आदर की दृष्टि से समुद्र को नही देखता है। क्योंकि एक ने देना सीखा है और दूसरे ने भरना। एक

जीवन=पानी देता है और दूसरा जीवन को भरता है अर्थात् सारे पानी को वह अपने मे समा लेता है। तो, जो दातार बना उसे रहने को स्थान भी ऊंचा आकाश मिला और जो सग्रहकार बना, उसको रहने के लिए स्थान नीचे पृथ्वी मिली। इसी प्रकार जो व्यक्ति दीन दुखियो की सेवा के लिए अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करता है वह दानी पुरुष मेघ के समान ऊंचा स्थान पाता हुआ विश्व के विराट् गगन मे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और जो कृपण व्यक्ति न स्वय खाता है और न दीन दुःखियो की सहायतार्थ सम्पत्ति का सदुपयोग ही करता है वह समुद्र की भाति नीचा स्थान प्राप्त करता हुआ पृथ्वी तल पर ही रेंगता फिरता है। अतः कहा है–

दातारों का मजा यही-धन खाने और खिलाने में।
कंजूषों का मजा यही धन जोड़ जोड़ मर जाने में ॥ १ ॥

कुण्डलिया

शक्कर घृत मैदा रु जल, कुड़छा आग कड़ाव,
चूलो ईन्धन सुघड़ जन, ए दश वस्तु मिलाव।
ए दश वस्तु मिलाव, बने जो सुन्दर हरवा,
यों भविकां नरतनादि, मिलै दश बोल सुगिरवा।
'रेणु' कहे तब जीव को, मोक्ष महल मिलनो सहल,
इम लखि सुधी उद्यत हुओ, चलण जहां नित चहल ॥ २ ॥

अर्थ

१–शक्कर, २–घी, ३–मैदा, ४–पानी, ५–कुडछा, ६–अग्नि, ७–कड़ाव, ८–चूल्हा, ९–इन्धन, और १०–सुघड आदमी, इन दश वस्तुओं का जब परस्पर मिलन होता है तब बडा आरम्भी हलवा- (सीरा) बनता है। इसी प्रकार जब आत्मा को मनुष्यभव आदि दश बोलो का सुयोग प्राप्त होता है तब आत्मा को मुक्ति महल मिलना सरल हो जाता है।

वे दश बोल ये है—

१. मनुष्य जीवन, २. आर्य क्षेत्र, ३. उत्तम कुल, ४. दीर्घ आयुष्य, ५. परिपूर्ण पाचों इन्द्रिया, ६. नीरोग देह, ७. सन्त समागम, ८. शास्त्र श्रवण, ९. श्रद्धा (रुचि), १०. संयम मे पराक्रम लगाना।

यदि हमें परमात्मा बनना है एव मुक्ति स्थान मे शाश्वत निवास करना है तो इन दश बोलों की प्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ॥२॥

कुण्डलियां

दुखप्रद दाम रु वाम को, मूढ करत नित ध्यान ।
स्वप्नान्तर ध्याये नहीं, वामाङ्गज भगवान ।
वामाङ्गज भगवान, कहो किम होय सुधारो,
गाँठ खाय कियो कर्ज, लेत पुनि अजहुँ उधारो ।
'रेणु' कहै ऐसी करी, फिर चाहो कल्याण,
कर्ज घटे, पूंजी बढे, तिम करो सकल सुजाण ॥३॥

अर्थ

कितना मूढ़ है व्यक्ति और कितना अन्तर है उसकी दृष्टि में। वह चाहता है सुख और उसके लिए अन्वेषण करता है दशों दिशाओं का। पर अभी तक खोज नही पाया है वास्तविक सुख को। और पाए भी कैसे। क्योंकि आज पर्यन्त उसकी दृष्टि भौतिक पदार्थों पर जमी रही है एक मात्र आध्यात्मिकसाधना को छोड़कर। वह रात दिन हाय धन ! हाय धन !! करता फिर रहा है चारो ओर। साथ ही उसने सुख मान लिया है पारिवारिक समृद्धि में। किन्तु अरे ! ये दोनों-कनक और कामिनी अन्ततः दुखप्रद ही है।

सुख देने वाले तो साधन है : धर्माराधन व प्रभु स्मरण। जिसकी आराधना व स्मृति स्वप्न में भी नही की तो वह क्यों कर सुख प्राप्त करेगा ? क्यों कर उसका कल्याण होगा।

जिस प्रकार पास की पूंजी को खा पी कर खर्च की, खूब कर्ज भी किया और आज तक फिर उधार ले रहा हो ऐसे व्यक्ति का कभी उद्धार नहीं हो सकता ठीक उसी प्रकार जो धर्म की पूंजी साथ में लाए थे उसे इस जन्म में खा पी कर खर्च की और अब धर्माराधन-प्रभु भजन आदि आगे की पूंजी को संग्रह करना छोड़कर एकमात्र जगज्जाल में ही रात्रि दिवस उलझा जा रहा है तो फिर कैसे उद्धार होगा ? जरा सोच तो सही दो मिनट !

अस्तु ! अब भी सुख चाहता है तो भौतिक पदार्थों से मुखडा मोड़कर, दुखप्रद कनक व कामिनी का संग छोड़कर प्रभुस्मरण मे अपने आपको अर्पण कर देना चाहिए। क्योंकि इसी में सत्य सुख है और परम आनन्द है ॥३॥

कुण्डलियां

प्राणधारी के प्राण हनी-शठ निज वाञ्छहि क्षेम,
ते नर चाहत जलधि पर-पाहन तरि वो जेम ।

पाहन तरि वो जेम, अवर दिशि उगवो दिनकर,
जहर हलाहल खाय, चहत पुनि जीवन सुखभर।
'रेणु' सुन्यो देख्यो नहीं, अग्नि स्पर्श हिम जेम,
प्राण धारी के प्राण हनी-शठ निज वाञ्छहि क्षेम ॥४॥

अर्थ

पर प्राणी के प्राणों का हनन कर जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है वह मूर्ख नही अपितु महामूर्ख है। अपने पेट में दूसरों के प्राणों की कबर बनाना सुखसमृद्धि को तिलाञ्जलि देना है और दिव्य लक्ष्मी को डण्डे से पीट कर भगाना है। हिसक प्राणी कभी अपने जीवन मे सुख व आनन्द नहीं पा सकता है। जो दूसरे प्राणियों को दुःख पहुंचायेगा वह क्या कभी सुख से रह सकेगा ? कभी नही ? जो दूसरों को मार कर स्वय सुख चाहता है, वह चाहता है समुद्र की अथाह जल राशि पर पत्थर तिराना। वह चाहता है पश्चिम दिशा में सूर्य का उगाना और हलाहल विष पीकर सुखमय जीवन विताना। साथ ही वह चाहता है, अग्नि में बर्फ की सी शीतलता पाना। किन्तु जिस प्रकार समुद्र पर पत्थर नही तिर सकता। पश्चिम में सूर्योदय नहीं हो सकता। विष खाकर जीवन जी नही सकता और अग्नि का स्पर्श बर्फ के समान नही बन सकता ठीक उसी प्रकार पर प्राणो का हनन कर स्वय आनन्द मे नही रह सकता, उसका तो पतन ही होना है ! कहा भी है—गाथा—

हंतूण परप्पाणे, अप्पाणं जो करेइ सप्पाणं।
अप्पाणं दिवसाणं कए णं नासेइ अप्पाणं ॥

अर्थात् जो व्यक्ति पर प्राणों का वध कर अपने प्राणों को जीवित रखना चाहता है वह थोडे दिनों के लिए याने एकमात्र जिह्वा-स्वाद की पूर्ति के लिए पापों का सचय कर अपने आपको विनाश के गड्ढे में धकेलना चाहता है। गड्ढे मे धकेलना ही नहीं अपितु उस हिंसा के प्रभाव से और भी अधिकतर दुःख पाना चाहता है। यदि विनाश से बचना है तो हमे हिंसक कार्य का परित्याग कर सदैव दया माता की आराधना करनी चाहिए ! क्योंकि—

"दया धर्म का मूल है" इत्यादि ॥४॥

कुण्डलिया

असलीश सेवा फल असल-नकली फल नकलीश,
जग जानत तोहि मूढ़ जन, नकल नमावत शीश।

नकल नमावत शीश-मानत पुनि नकल को असली,
"रेणु" तसु विद्वत्सभा, निरखि चरित्र सहु हंसली।
सेठ त्रिया सद्भाव सुत, समझो सकल सुधीश,
असलीश सेवा फल असल-नकली फल नकलीश ॥५॥

अर्थ

संसार यह अवश्य ही मानता आया है और मान भी रहा है कि असली पुरुष की सेवा असली फल देने वाली तथा नकली पुरुष की सेवा नकली फल देने वाली होती है। इतना जानते हुए भी आश्चर्य इस बात का है कि व्यक्ति अभी तक नकली को झुक झुक कर शीश झुका रहा है और उसे असली मानकर चल रहा है। किन्तु स्वर्ण स्वर्ण ही रहेगा चाहे वह मिट्टी मे ही क्यों न पड़ा हो और पीतल पीतल ही रहेगा चाहे वह सन्दूक में ही क्यों न रखा हुआ हो। नकली को असली मानकर चलने वाले व्यक्ति की वही अवस्था होती है जो अवस्था विद्वानों की-सभा मे मूर्ख व्यक्ति की होती है। अतः नकली को असली व असली को नकली मानने की क्षुद्र बुद्धि का परित्याग कर असली को असली व नकली को नकली समझने का प्रयत्न करें जिससे कि सत्यासत्य का निर्णय हो सके एव सर्वत्र आनन्द की चल लहरी प्रवाहित हो सके ॥५॥

२३ अक्षरीय सवैय्या

कान ते प्राण तजै हरिणां नयनां, वश प्राण पतंग दिया है।
घ्राण अली रस मीन मरी बहु, स्पर्श ते कुंजर दुःख सह्या है।
ए इतने इतनी बश होय के, 'रेणु' कहे भव फन्द गह्या है।
तेह अज्ञान शिरोमणि को क्या है, मानव जो वश धिग्ग जिया है ॥६॥

अर्थ

क्षोत्रेन्द्रिय (कान) के विषय में मुग्ध वना हुआ हिरण शिकारी का शिकार हो जाता है। चक्षुरिन्द्रिय (आंख) के विषय से पतंगा दीप शिखा मे गिर कर प्राण खो बैठता है। भंवरा घ्राणेन्द्रिय (नाक) के विषय मे वशीभूत वना हुआ कमल की पखुडी मे ही जीवन मुक्त हो जाता है। समुद्र की अपार जल राशि में स्वतन्त्र विचरने वाली मछली भी रसनेन्द्रिय (जिह्वा) के विषय में लोलुप बनी हुई मृत्यु का आलिंगन कर लेती है। और स्पर्शेन्द्रिय (शरीर) के विषय में मदोन्मत्त हुआ हाथी महावत के द्वारा वशीभूत कर लिया जाता है। अर्थात् ये सब एक एक इन्द्रिय के विषय में गृद्ध हुए जिससे ही इनको

अनेक कष्ट भोगने पड़े तो भला जो मानव पाचों इन्द्रियों की विषय वासना में मुग्ध व लुब्ध बना हुआ है उसकी क्या स्थिति होगी ? यह अतीव विचारणीय है ! जो पांचो इन्द्रियो के विषम विषय पर विजय प्राप्त करते हुए संयम की आराधना करते है वे वन्दनीय एव धन्यवादार्ह है ॥ ६ ॥

२३ अक्षरीय सवैय्या

भूल तो भ्रष्ट करे भल भानकुं, भूल बढ्या घट ज्ञान गमावे ।
भूल ते नीति रु धर्म सधै नहि, भूल हिया बिच सूल उपावे ।
भूल समी दुख खानि नहीं जग, भूल सदा गतमान करावे ।
भूल करो मत 'रेणु' कहे यह, भूल तज्या भगवन्त कहावे ॥ ७ ॥

अर्थ

मानव भूलों का पुतला है, उससे किसी न किसी रूप में भूल हो ही जाया करती है । इसीलिए भूल से होने वाली हानि का दिग्दर्शन कराते हुए कवि ने कहा है कि भूल एक बड़ी निकृष्ट प्रकृति है । वह व्यक्ति को अपने गौरव से भ्रष्ट कर देती है । कण्ठस्थ ज्ञान भी भूल के बढ़ने पर नष्ट हो जाता है । भूल करने वाले से न नीति की साधना हो पाती है और न धर्म की साधना ही । वह व्यक्ति के हृदय में एक प्रकार की सूल उत्पन्न कर देती है । अतएव भूल के समान इस विश्व मे और कोई दु.ख की खान नही है जिसका कारण यह है कि भूल के प्रसग से व्यक्ति को कभी अपमानित भी हो जाना होता है। इसीलिए कवि कह रहे हैं कि जो व्यक्ति भूल को तज देता है वस्तुतः वह भगवन्त बन जाता है ॥ ७ ॥

२३ अक्षरीय सवैय्या

भूल ते कष्ट लहे बहु मानव, हानि लहे निज माल गमावे ।
मात रु तात सुता सुत बन्धव, ईश गुरु को उलाहन पावे ।
उंच पदे न चढे कब हु अरु, नीच पदे वो दिनो दिन जावे ।
दोष अनन्त की खानि लखि कहे, 'रेणु' तजै वही धन्य कहावे ॥८॥

अर्थ

भूल करने वाले व्यक्ति को अनेकानेक कष्टो का सामना करना पड़ता है और समय आने पर जान माल की हानि भी उठानी पड़ती है । भूल होने पर माता-पिता गुरु आदि बड़े जनों का उपालम्भ पाना पड़ता है । भूल व्यक्ति को कभी उन्नति के पद पर नही चढ़ने देकर अवनति की ओर ही खीचती रहती है अत. भूल को अनेक दोषों की खान समझ कर जो भूल का परित्याग करता है वही व्यक्ति धन्यवाद का पात्र है ॥ ८ ॥

छप्पय

शिष्य तुजेच्छा होय, बुद्धि सम्पादन करना।
शिष्य तुजेच्छा होय, विपति सहु दूरे हरना।
शिष्य तुजेच्छा होय, सुभग शुध मारग जाना,
शिष्य तुजेच्छा होय, विपुल यश जग गवराना।
दुष्टता दूर निकारिवा, चहो जो मारग पाधरो,
'रेणु' सकल जंजाल तज, गुणी जन संग सदा करो॥ ९॥

अर्थ

सत्संग का महत्व दिखाते हुए हित-चिंतक गुरु अपने शिष्य से कहते हैं कि—

हे शिष्य! तेरी क्या इच्छा है? यदि तू सद्‌बुद्धि सम्पादन करना चाहता है? विपत्ति व संकटो को दूर हटाना चाहता है? सौभाग्यवर्धक सत्पथ पर चलना चाहता है? विश्व में अपनी यशः पताका फहराना चाहता है? अथवा दुष्टता को मूल से उखाड़ कर फैंकने का सरल व सीधा उपाय जानना चाहता है तो सब प्रपचों से अलग होकर एक मात्र महा पुरुषों की सत्सग कर अवश्यमेव तेरी सर्वकामना सफलीभूत होगी॥ ९॥

छप्पय

शिष्य तुजेच्छा होय, रम्य गुण सहु अवधारु,
शिष्य तुजेच्छा होय, धर्म शुध अमित बधारु।
शिष्य तुजेच्छा होय, कर्म पर्वत गन भेदूं,
शिष्य तुजेच्छा होय, विषय विष तरु वन छेदूं।
स्वर्ग मोक्ष सुख साधिवा, चहो जो मारग पाधरो।
'रेणु' सकल जंजाल तज, गुणी जन संग सदा करो॥१०॥

अर्थ

उपर्युक्त विषय को और सुदृढ़ करते हुए गुरु अपने शिष्य से कहते हैं कि-यदि तेरी इच्छा श्रेष्ठ गुणो को ग्रहण करने की हो? शुद्ध धर्म को आराधित करने की हो? कर्म रूपी पर्वतों को चूर करने की हो? यद्वा विषय रूप विषवृक्षो से सघन वन को छेदन-भेदन करने की हो, अथवा स्वर्ग एव अपवर्ग (मोक्ष) के सुख प्राप्त करने की हो, तो ससार के समस्त प्रपचो से मुक्त

होकर एक मात्र सन्त पुरुषों की संगति कर! तेरा अवश्यमेव कल्याण होगा ॥१०॥

छप्पय

पूर्व संचित कर्म नगन चूरक पवि मानो,
काम दावानल ज्वाल शांति कर वे जल जानो।
प्रचण्ड इन्द्रिय व्याल, वश्यकर मंत्र प्रधानो,
विघ्न तिमिर घन नाश करन दिनकर पहिचानो।
जनक जानि लब्धिलता, मुख्य द्विधा, बहु विध अवर।
दोष रहित तप ज करहि 'रेणु' वही धन्य नारि नर ॥११॥

अर्थ

तप के माहात्म्य का वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि-"तप" पूर्व संचित कर्म रूपी पर्वतों को चकनाचूर करने मे वज्र के समान है। विषय वासना रूप दावानल की प्रचण्ड ज्वाला को शान्त करने में जल के समान है। इन्द्रिय रूपी भयानक व्याल (सर्प) को वश में करने का प्रधान मत्र है। कष्टो के सघन अन्धकार को छिन्न भिन्न करने मे सूर्य के समान तेजस्वी है। अनेकानेक लब्धियों का उद्‌गम स्थान समझकर जो प्राणी काषायिक भावों से रहित तप की समाराधना करते हैं वे धन्यवाद के योग्य है। तप के मुख्य रूप से दो भेद हैं—आभ्यन्तर और बाह्य एव उसके अवान्तर भेद अनेक है ॥ ११ ॥

छप्पय

शीत उसन तिस भूख-अधर घन जल में टिकनो,
वध बन्धन कस मार, अवश तुच्छ मोले बिकनो।
आधि व्याधि अति विपति, सहत करी सकत न जाहिर,
सुख धारन मन धरहिं करहिं काजे बुध बाहिर।
इत्यादि अमित दुःख-पाप वश, सहे पर्यो तिरियंच में,
तास गति लखि 'रेणु' अब, जोरिय चित शुभ संच में ॥१२॥

अर्थ

उपर्युक्त पद्य मे तिर्यच गति के दुखों का सजीव चित्र है। पशु जीवन पराधीन जीवन है। वह अन्य मनुष्यादि जीवन के समान स्वाधीन जीवन नही है। पशु को पर वश अवस्था मे भूख-प्यास-सर्दी, गर्मी, वध, बन्धन कसादिक की मार सहन करनी पड़ती है और कर भी रहा है। उसे तुच्छ मूल्य मे

बिकना पडता है और अनेकशः आधि व्याधि के दुःखों से दु.खित होते हुए जीवन की आहुनी भी दे देनी होती है। वह कभी शान्ति से एक स्थान पर बैठने का विचार करता भी है तो उसे शान्ति कहा ! भार उठाते हुए न मालूम उसे कितने कोसों का भ्रमण करना पड़ेगा। पशु जीवन पराधीन होने के साथ दुःखमय जीवन है। जीवन पर्यन्त दुःखों का भोग भोगता हुआ अन्त में यहां से लम्बी यात्रा पर चला जाता है। पशु पराधीन अवस्था मे जितने कष्टो को सहन करता है उसके शताश में प्राणी स्वाधीन रूप से कष्टों को सहन कर ले तो उसके कल्याण में देरी नहीं हो सकती ! किन्तु स्वाधीन जीवन में अर्थात् मनुष्य जीवन में वह उस तिर्यचगति के भुक्त दु.खों को भूल जाता है और भौतिक पदार्थों की चकाचोंध मे मुग्ध बनकर आध्यात्मिक साधना से दूर चला जाता है। अस्तु ! अब भी ममता के पर्दे को हटाकर समता की सरिता मे रमण करने लग जाए तो उसके जन्म जन्म के पातक दूर हो सकते हैं और वह शुद्धस्वरूपी बन सकता है ॥ १२ ॥

२४ अक्षरीय सवैय्या

धन कारण केई विदेश भमे, सुत मात पिता युवती तजि के।
रण माहि लरे-दरियाव तिरे, सिह स्वापद से जु भिरै गजि के।
निज कीरति नीति रु धर्म तजी, अघ पोट धरं सिर पे सजि के।
कहे 'रेणु' अकारज कौन इसो, जग लोभि करे नहिं आप जिके ॥१३॥

अर्थ

व्यक्ति धन के लिए क्या क्या नही कर लेता है? वह धन के लिए माता-पिता-पुत्र-पुत्री-स्त्री आदि परिजनो का त्याग कर विदेशों की सड़कों पर घूमता फिरता है। रण में भूंझ पडता है। समुद्र को तिरने के लिए तैयार हो जाता है। यहां तक कि सिह जैसे भयावह हिंसक पशु से जा भिड़ता है। धर्म, नीति व मानवता, धनार्थी व्यक्ति के दिल से दूर चले जाते हैं। वह एक मात्र धन को ही सर्वोपरि मानकर धन के लिए अधर्म का कार्य करता हुआ नही हिचकिचाता है और अन्त मे अपने शिर पर खुशी खुशी अधर्म की पोट रख कर रवाना हो जाता है ! कहने का तात्पर्य यह है कि ससार में ऐसा कोई अकार्य शेष न रहा होगा जो कृपण=कजूष व्यक्ति न करता हो ॥१३॥

२५ अक्षरीय सवैय्या

जिनदेव समा जग देव कुं छोरि के, अन्यमति चरणां चित दीनो,
जिन बैन शुभामृत त्याग के मुग्ध हो, अन्यमति उपभाषित भीनो।

सब कंचन कामिनि त्यागी कुं त्याग के, मूरख ह्वे गुरु लालची कीनो,
इम पांच विसारि के कांच दियो चित, 'रेणु' कहे तिनको धिग् जीनो।१४।

अर्थ

जिसने राग द्वेष रहित वीतराग अरिहन्त प्रभु जैसे देव का त्याग कर रागी द्वेषी हरिहरादि देवो को देव स्वरूप स्वीकार किया हो ! जो अनेकान्तवादमयी जिनवाणी का परित्याग कर एकान्तवादियों की वाणी से प्रभावित हो रहा हो ! सर्व प्रकारेण कचन कामिनी के त्यागी-वैरागी-पञ्च-महाव्रतधारी-निर्ग्रन्थ गुरु को छोडकर जिसने कनक कामिनी के पिपासु को गुरु माना हो ! वह मूर्ख है, अज्ञानी है । उसने महामूल्यवान् रत्न का परित्याग कर अज्ञानता से कॉच को ग्रहण किया है ! तो, ऐसे व्यक्तियो का जीवन अन्धकार मय होने के कारण धिक्कार का पात्र है ।।१४।।

२५ अक्षरीय सवैया

जल को अति दुःखित देख दिया पय, आप समा गुण रूप अपारा।
पय के तन जारन जान परी तिहं, नीर जर्यो तां को नेक न जारा।।
इम नीर वियोग कुं देख दयानिधि, कूद पड़ा पय वह्नि मंझारा ।
जब नीर मिला तब तोष भया चित, 'रेणु' कहे मित प्रीति संसारा।।

अर्थ

सच्ची मित्रता का रहस्य समझाने के लिए इस पद्य मे दूध और पानी का उदाहरण दिया गया जो इस प्रकार है—

जब हमने पानी को दूध के साथ मिलाया तब दूध ने अपने दिल को दरियाव बनाकर पानी को अपना रूप व गुण दे दिया। तभी से दोनो मे परस्पर घनिष्ठ प्रेम हुआ। एकदा वही दूध जब अग्नि पर गर्म करने के लिए रखा गया तब पानी ने सच्ची मित्रता का अनूठा प्रेम दिखाया कि—दूध को न जलने देकर वह स्वयं अग्नि के ताप से भांप बनकर उड गया। इधर जब दूध को कुछ ताप लगा तब उसने सोंचा कि क्या बात है ! मुझे ताप क्यो ? देखा तो मेरा परम मित्र 'पानी' मुझे छोडकर ही नही गया अपितु मेरी रक्षा के लिए उसने हसते हसते अपने प्राणो का बलिदान कर गया। अब दूध से न रहा गया। वह परम मित्र के चले जाने से सतप्त हुआ और उसे खोजने के लिये चल दिया–आग की धधकती ज्वाला में अर्थात् उसमे उफान चढ आया। उफान को देखकर दूध में तत्काल पानी डाला गया अहो ! दूध को पानी क्या मिला मानो उसे खोया हुआ परम मित्र मिला। वह मित्र को पाकर बडा

सन्तुष्ट हुआ और शान्तभाव से यथास्थान पर चला गया। देखिए ! यह है सच्ची मित्रता का प्रतीक-दूध और पानी।

इसीलिए संसार में कहा जाता है कि मित्रता करनी है तो ऐसे मित्र से करिए जो कष्ट में छोड़ कर नहीं भागे अपितु अपने आपका जौहर करके मित्र की रक्षा करें।

मित्र को कष्टों में पड़ा देखकर जो मित्र, मित्र की सहायता नही करता अपितु दूर चला जाता है वह मित्र, मित्र नहीं अपितु शत्रु है, विश्वास घातक है। अतः मित्र हो तो दूध व पानी सा हो ! स्वार्थी नही किन्तु निःस्वार्थी हो ! जो समय आने पर काम दे सके ॥१५॥

कवित्त

दारु पिया सुधि जाय, जादवा नी जोम थाय,
गांजा औ चूरट पीता-तन में बिगार है।
भंग पी भंगेड़ी बनी, अमली कहावे पूरो,
तां के धर्म कर्म नेम, सधै न लिगार है॥
तमाखू पीवत होत, हिंसा षट् काया केरी,
सूंघ्या तन वदन घर, तां की शोभा टार है।
ऐसो नशो इह पर-लोक में निन्दित मानी,
'रेणु' कहे नहि तजे-पूरे वे गिवार है॥१६॥

अर्थ

कवित्त का अर्थ सुस्पष्ट है। दुर्व्यसनों से जीवन मे क्या क्या हानि उठानी पड़ती है, इसीका इस कवित्त मे दिग्दर्शन कराया गया है। दुर्व्यसन जीवन को सदा से पतित करते आए है-कर रहे है और भविष्य में भी करते रहेगे ! दारू के दुर्व्यसन से यादवों का जैसा वड़ा परिवार भी क्षय हो गया तो अन्य व्यक्तियों की क्या हस्ती है ? शराब पीने से पागलपन छाजाता है। गॉजा, चूरट पीने से शरीर का नुकसान होता है। भंग और अमल खाने वाले से धर्म, कर्म और व्रत नियम कुछ भी नही वन पाते है। तम्वाखू पीने से छह काया के जीवो की हिंसा होती है तथा खाने व सूंघने से शरीर मे कॅसर आदि रोग वढ जाते हैं और शरीर, मुख व घर की शोभा नष्ट हो जाती है। अतः दुर्व्यसन को इस लोक में तथा पर लोक में दु.खदायी व निन्दित जानकर भी जो व्यक्ति नही छोड़ता वस्तुतः वह मूर्ख है॥ १६॥

कवित्त

वेदहि पुरान काव्य, पढ़ि विप्र विज्ञ भयो,
गयो सो अचान एक, गणिका निवास में।
नाना फन्द डारि वैश्या, विज्ञ हूँ को वश करी,
रैन को बिताई दोनों, सुख के विलास में॥
प्रातः जाते विज्ञ देख, वैश्या बोली सुनो नाथ,
हुआ सो मिलाप कब, होगा इजलास में।
'रेणु' कहे बोल्यो विप्र, धर्म शास्त्र सांचे हैं तो,
आय के मिलूंगो आली, कुम्भीपाक वास में ॥१७॥

दोहा

'रेणु' विषय विष सम नहि, दुखद विषय परिणाम।
वैश्या-द्विज-सम्वाद सुन, तजो विषय नर वाम ॥१८॥

अर्थ

एक विप्र कठोर परिश्रम एव लग्न व स्फुर्ति के साथ अपने गुरु के पास मे विद्याध्ययन कर रहा था। उसने वेद-काव्य-छन्द-अलंकार-पुराण आदि अनेकविध ग्रन्थों का अध्ययन चिन्तन व मनन किया एवम् सम्पूर्ण कला मे कुशल होकर गुरु के चरणों में वन्दन कर—आश्रम से अपने घर की ओर रवाना हुआ! चलते हुए उसे एक शहर आया जिसमें वह अचानक वैश्याओं के मोहल्ले मे पहुंच गया और बिना जाने एक वैश्या के घर मे घुस गया। अन्दर पहुंचते ही वैश्या उठी और नाना प्रकार की वाक-जाल फैलाती हुई उस विप्र को अपने फन्दे में फसा बैठी। रात्रि विलासो मे बीती और प्रातः काल विप्र अपने ग्राम की ओर जाने के लिए जब तैयार हुआ तब वैश्या हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी कि नाथ! आप का अब कब मिलाप होगा? उत्तर देते हुए विप्र ने कहा—प्रिये! मैंने अपने गुरू के पास अनेकविध धर्म-शास्त्रों का अध्ययन किया है। उनमे सर्वत्र ही परस्त्री गमन का निषेध करते हुए परस्त्रीगामी को नरकगामी बतलाया है। अतः यदि वे धर्मशास्त्र सत्य अर्थ के कथन करते है तो मैं तुझे कुम्भीपाक में याने नरकावास मे आकर ही मिलूंगा।

आगे के दोहे में कवि ने इस विषय-वासना के त्याग का उपदेश प्रदान किया है—कि विषय विष से भी अधिकतर अनिष्टकारक है। विष के भक्षण

से व्यक्ति एक जन्म में ही जीवन रहित होता है किन्तु विषय वासना रूपी विष से भव-भवान्तर में दु:ख प्राप्त करना होता है। अत: विप्र और वैश्या के सम्वाद में भोगों का दु:खदफल श्रवण कर हमें विषय वासना से दूर रहना चाहिए एवं त्याग की पवित्र गगा में न्हाकर अपने मन को शुद्ध बनाना चाहिए ॥१७-१८॥

प्रार्थना १

(तर्ज—हे प्रभो ! आनन्ददाता)

शान्तिकर जिन शान्ति पारस-विश्वरक्षक ईश जी,
अज्ञ हम निज बालकों की, खबर लो जगदीश जी।
अविद्यादिक जाल में हम, फंस रहे जानो सभी,
नवयुवक सुत पे धर्म या सद्बुद्धि दो हे पितु! अभी ॥१॥

गुण वृद्ध गुरु माता पिता पद, नमत ना शरमा मरें,
हुक्म जैसा करें तैसा, उज्र बिन नित शिर धरें।
हो सहायक हम परस्पर, हृदय धर समयज्ञता,
उपयोगितादिक अमित शुभ गुण, सीखलें तजि अज्ञता ॥२॥

दीन अनाथ अशरण के, कष्टोपचारक बन रहें,
धर्म वत्सल सदोत्साही, वीर व्रत धरि वो चहें।
ब्रह्मचारी सदाचारी सद्विचारी हम रहें,
धर्म प्रेमी, दृढ़ नियमी, प्रेम युत सद् गुण गहें ॥३॥

बद राह तज सद् वाट पै हम, चरण धर निश्चल चलें,
दीजिए अस धीरता जिम, दुर्गुणादिक दल दलें।
देव सेवा, भक्ति गुरु की, धर्म में अविचल मति,
सम्पयुत श्री संघ की, वर भक्ति दो त्रिभुवनपति ॥४॥

संघ में रहे सम्प अनुदिन, द्वेष ईर्ष्या मद टरो,
स्वार्थता अपकारतादिक, दुर्व्यसन हिय ते हरो।

गुणनिधे ! गुणगण सबै, श्री संघ में उद्भव करो,
जैन धर्म स्वजाति की अति उन्नति हो विभुवरो ॥५॥

इह परलोक सुसीख पथ को, होय खुश स्वीकृत करें,
जगपते ! सहु शक्ति साधक, कर मया हम तन भरें।
न्याय सत्य सुनीति ते हम, रंच ना स्वपने टरें,
प्राण प्रिय त्यागें भले पिण, कृत्य पथ से ना मुरें ॥६॥

पूज्य श्री नानक गणी की, सम्प्रदायनुयायी गुणी,
जे हे चउविहे संघ तिनकी, विश्व में हो जय ध्वनि।
'रेणु प्रज्ञाचन्द्र' के दिल, सदानन्द मङ्गल भरो,
युवक जन मन कामना, प्रभु कर कृपा पूरण करो ॥७॥

प्रार्थना २

(तर्ज—एवन्ति सुकुमाल की)

प्रभात उठी भवि भाव धरी,
नित प्रभु गुण गावो प्रेम करी।
आनन्द आछे लीला लक्ष्मी,
पास्यो प्रभुता परम तरी ॥ टेर ॥

आदि नमुं श्री आदिनाथ प्रभु,
शिव मग दीध प्रकाश करी।
अरहनाथ चक्री जिन पदवी,
भोगवी अन्ते मुक्ति वरी ॥ १ ॥

नमीनाथ जिन नमियां नवनिधि,
अजितनाथ जित कर्म अरी।
पारसनाथ पारस सम दाता,
भेंट्या भव भय जाय टरी ॥ २ ॥

मनसा पूरण मल्लि मुनीन्द्र महा-
शान्तिनाथ जग शान्ति करी।
सुखद सुविधि जिन अनन्त नाथ,
शुभ प्रणमु सुपारस आस धरी ॥ ३ ॥

मुनि सुव्रत शुभदा गतिदायक,
श्रेयांस सकल अघ आधि हरी।
विमलनाथ विमल मति नायक,
धरम अनन्तगुण आत्म भरी ॥ ४ ॥

पद्म गंध सम पद्म प्रभुवर,
नेमीनाथ नमूं स्नेह धरी।
वासुपूज्य जग पूज्य कुन्थु जिन,
शीयल सयल सुध देत खरी ॥ ५ ॥

अभिनन्दन आनन्द – कन्द – प्रद,
सम्भव सम्भव सम्पत्ति वरी।
चन्दा प्रभु सुमति जिन स्वामी,
वर्धमान जप्या विपत्त जरी ॥ ६ ॥

मल्लि मुनीन्द्र तनु धनुष पचीसे,
शेष अङ्क इम पूर्ण करी ॥
'रेणु' सुखद प्रभुगुण इम गावो,
पावो सुख सम्पत्त सिरी ॥ ७ ॥



गजेन्द्र-स्तुति ३

(तर्ज—सिद्ध चक्र पद वन्दू रे, भविकां)

卐

गजमल मुनि गुण गावो-सुगुणां, गजमल मुनि गुण गावो रे।
तन सुख, धन सुख, सम्पति सगली पूज्य कृपाथी पावो रे। टेर।

जगत्पूज्य इक सहस अष्ट श्री नानकराम जी नामी रे।
ताँहि सिंघाड़े तपे तरणि जिम, मगन मुनि गुण धामी रे। सु.।

तास शिष्य ए शरद शशी जिम, शीतल छवि तन छाजे रे।
भवोदधि तारण सां प्रति नौका, गजमल गुणी गुण गाजे रे। सु.।

गच्छ उजागर, गुण मणि आगर-सागर बुद्धि विराजे रे।
स्व पर सिद्धान्त के ज्ञाता, थेवर बुध गणी आजे रे। सु.।

अष्ट सम्पदा धारक गणधर, रूड़ा रत्न-त्रय दाता रे।
बुद्धोपम षोडश पुनि पामे, अगणित जन गुण गाता रे। सु.।

बुधजन मांहि शार्दूल सिंह ज्यूं, सरस गिरा ये गूंजे रे।
सुनत सुजन मन मोद लहे पुनि, सकल सुपथ घट सूझे रे। सु.।

चिन्ता चूरण आप चिन्तामणि, दायक सुरतरु नामी रे।
चरमोदधि जिम अगम्य पूज्य गुण, जाणुं मैं शुभ गति गामी रे। सु.।

बहत्तर साल रसाल मसूदे, काति वद गुण गाया रे।
विजय मुनि सुपसाय लही भल, 'रेणु' चिन्तामणि पाया रे। सु.।

गुरु महात्म्य ४

(तर्ज—आखिर नार पराई है !)



धन सतगुरु उपकार कियो,
भवोदधि पार उतार दियो ॥ टेर ॥

श्रेणिक राजा बहुत मिथ्यात्वी, जिसको गुरु मिलिया अनाथी,
क्षायक समकित करदी साथी, गोत्र तीर्थंकर बाँध लियो । ध. ।

परदेशी राजा महापापी, रातदिवस जीवां ने कांपी,
चित्त प्रधान मनकर थिर थापी, केसीमुनि समझाय दियो । ध. ।

अर्जुन माली बहुत हत्यारो, नर षट् इक नारी ने मारो,
सुदर्शन जब कर लियो लारो, वीर प्रभु भव पार कियो । ध. ।

जो गुरुजी नो ध्यान जो ध्यावे, मन वांछित वो निश दिन पावे,
शोक संताप कबहुं नहीं आवे, हिरदा में चानणो गुरुजी कियो । ध. ।

मैं गुरु को नित शीश नमाऊं, क्रोड जिह्वा गुण पार न पाऊं,
अल्पमति किंचित् गुण गाऊं, [1]दधिसुत मुनि उपकार कियो । ध. ।

गज मुनि गज जिम तार दियो
'रेणु' मुनि समझाय दियो ॥धन०॥

१—मोतीलालजी म. सा.

प्रार्थना ५

(तर्ज—सिद्ध चक्र पद बदू रे, भविका)

卐

शांति जिनन्द पद वंदो रे भविका २ शान्ति जिनन्द पद वन्दों रे।
लायक, भक्ति वच्छल गुण वृन्दो रे ॥ टेर ॥

परम अमर सुख अनुभव करी थया, विश्वसेन नृप नन्दो रे।
मात सु अचिरा नी कूख उजालन, प्रकटे जग सुख कन्दो रे ॥भ॥

कुरुवर क्षेत्र अरु हस्तिनापुर नी, मारी को हरण अमन्दो रे।
संकट शोक निवारक पदवी, धारक धन्य जिन चन्दो रे ॥भ॥

कुंवर पद लही मंडलीक थई, पुनि भया भूपतीन्दो रे।
अतुल इन्द्रिय सुख भोगबी अन्ते, रहे जिम जल अरविन्दो रे ॥भ॥

पूर्ण प्रभुता अहि कंचुकी जिम, त्यागी के थया मुनीन्दो रे।
तप करी पूर्व कर्म चमू हर, लीनो ज्ञान दिनन्दो रे ॥भ.॥

भवि जीवन लखि हित सुपथ्यवत्, भल उपदेश दियन्दो रे।
अधिकारन को यों तसु पद ठवी, भवोदधि पार कियन्दो रे ॥भ.॥

अमित जीव उद्धार आप खुद, मुक्ति सुवास लियन्दो रे।
जन्म, कुंवर, नृप, चक्री, मुनि, जिन, ह्वै जन शांति कियन्दोरे ॥भ.॥

शान्ति सुदायक शान्ति जिनन्द पद, पेख भवि नित वन्दो रे।
'रेणु' सदा सुख सम्पत्ति अनुदिन, पामस्यो परमानन्दो रे ॥भ.॥

उपदेश-लालच पर ६

(तर्ज—फागण आयो रे)

卐

भविकां सुण लीज्यो-सुगुणां-सुण लीज्यो,
लालच केरा अवगुण आछां परखि लीज्यो रे
फिर थे तज दीज्यो ॥ टेर ॥

लालच धर लख जीव केई व्हाला साजन छोड़ो रे ।
वन रण गिरि विषमी जगां में जावे दौड़ी रे ॥ सु० १ ॥

पति सुख वाञ्छा वश हो वनिता, अग्नि में जल जावे रे ।
गोता खोर अगाध समुद्र में प्राण गमावे रे ॥ सु० २ ॥

चोरी जारी व्यसन बुरा सहु यो ही दुष्ट सिखावे रे ।
नर्क तिर्यंच का दुःख जीव ने, यो ही दिखावे रे ॥ सु० ३ ॥

हिंसादिक सब पाप केरो, बाप यही कहिवावे रे ।
अनरथ केरा स्थान इण ने ज्ञानी गावे रे ॥ सु० ४ ॥

मोह विटप के मूल सागे, क्लेश भुवन वलि जानो रे ।
क्रोधाग्नि उत्पन्न करवां में अरणी मानो रे ॥ सु० ५ ॥

पुण्य प्रताप, विवेक, सुकीर्ति, नीति, प्रीति, सगाई रे ।
दान धर्म, गुण थोक ने यो देत गमाई रे ॥ सु० ६ ॥

क्रोध कृतघ्न अपयशता दुख, वैर विरोध बुराई रे ।
निन्दादिक अवगुण जग जेता लेत बुलाई रे ॥ सु० ७ ॥

पिता पुत्र भरतार दारा, भाई भाई लड़ता रे ।
लोभे नड़िया निज पर जन ने मारे मरता रे ॥ सु० ८ ॥

कोणिक सूरी कन्ता कौरव, कनकरथ की साँची रे।
औरंगजेब यवनेश की लो कथा थे बांची रे ॥ सु० ९ ॥

लालच मांहि लाखां अवगुण, ज्ञानी देवां दाख्या रे।
मोक्ष जावता केई जीव ने नरकां नाख्या रे ॥सु० १०॥

लालच लाय बुझे नहीं क्यों हि, लोभी के दिल मांहि रे।
सन्तोषामृत जोलो हिय में प्रकटे नाहि रे ॥सु० ११॥

कल्प वृक्ष,सुर गवि,चिन्तामणि बांछित दाता गाया रे।
'रेणु' सहजे सन्तोषी के हाथे आया रे ॥सु० १२॥

उपदेश लोभ पर ७

(तर्ज—क्षमा किया सुख पामिए)



लोभ बुरो जग जानी केवल ज्ञानी दाख्यो जी।
आतम हित अर्थी जी के कबहुं नहीं अभिलाख्योजी ॥ टेर ॥

लोभ जिस्यो जग अनर्थी, देख्यो कहुं न सुनियो जी।
बुद्धि विनाशक मद्य गिन्यो, शांति विनाशक भनियोजी ॥ १ ॥

पाप चिंता दुःख मूल यो, सम्पति तरुणी फरसी जी।
स्नेह सघन वन बालबां अरणी एहिज दरसी जी ॥ २ ॥

च्यार हत्या चण्डाल नी करबा कुमति दाता जी।
द्रोह दुरित तरु सींचवा बरसाती घन माता जी ॥ ३ ॥

लाज धर्म नीति भली प्रीत सगाई जावे जी।
धरजा मरजा विसरजानी लोल्या एथी आवे जी ॥ ४ ॥

लालचवश गुण अणहुन्ता, निरगुणी का कहिवावे जी।
हूँस न पूरी जो होवे तो अछत्ता अवगुण गावे जी ॥ ५ ॥
उत्सूत्र प्ररूपे लोभ थी छापे इच्छित पन्थ जी।
पण्डित केई खण्डित हुआ, रचिया कूड़ा ग्रन्थ जी ॥ ६ ॥
कण्ठ कटावे लोभ ही वली दुर्गति पहुंचावे जी।
नमक हरामी सूम की पदवी इण थी पावे जी ॥ ७ ॥
सब गुण वाले दुष्ट यो अवगुण पूर बुलावे जी।
कुगुरु कुदेव कुधर्म नी कीरति क्रूर करावे जी ॥ ८ ॥
लोभ लड़ावे भूपति लोभ विदेश ले जाय जी।
कपि जिम नाच नचावहिं, करहिं अमित अन्याय जी ॥ ९ ॥
बड़ बड़ जोधा सूरमा धीर वीर सिरदारो जी।
जेर किया जग जीव ने यो लालच कामणगारो जी ॥ १० ॥
नव डूंगरियां नन्द नी आखिर काम न आई जी।
मर पहुंतो माठी गते यो लालच नरक नी साई जी ॥ ११ ॥
खण्ड सातमों साधवा संभूम चक्री चाल्यो जी।
सागर में डूबी मर्यो न रह्यो किण रो पाल्यो जी ॥ १२ ॥
कंस पिता उग्रसेन ने कठपींजर में दीधो जी।
सहुजन देखत कृष्ण जी अन्ते अन्त ज लीधो जी ॥ १३ ॥
लोभ बसे सुर सुर तणा रत्न चोर ले भागे जी।
षट् मासा लग दुःख सहे वज्र मार जब लागे जी ॥ १४ ॥
नाम कहुं इहाँ केतला ग्रन्थों में सब गाया जी।
दशमां गुणठाणां लगें जग वासी जिण के मांया जी ॥ १५ ॥
सन्तोषामृत पीकर दिल की लाय बुझाई जी।
'रेणु' कहे धन्य ते मुनि जेहनी सफल कमाई जी ॥ १६ ॥



उपदेश लोभ पर ८

(तर्ज—धूसो बाज्यो रे)

卐

समझो सब लोभ यो दुःखदानी,
समझो मन लालच दुःखदानी ॥ टेर ॥

पाप को बाप, मूल पुनि मोह को,
दुर्गति दूत कह्यो ज्ञानी ॥समझो० १॥

कूड़ को कोष, क्लेश को कारण,
गूढ़ कपट करे अज्ञानी ॥समझो० २॥

विशद विवेक विज्ञान विनाशन,
लोभ दुरित यो मद्य पानी ॥समझो० ३॥

शुभ गुण कांपक, दुर्गुण मिलापक,
सयण विछोह करवानी ॥समझो० ४॥

लोभ यो वल्लभ बाल बिकावे,
करवावे कृत्य बदफानी ॥समझो० ५॥

रण में लड़ावे, राज में झगड़ावे,
फेरवे ते यश पर पानी ॥समझो० ६॥

घर में धरे धन काठे छाने,
लोभ वशे करे दिल ठानी ॥समझो० ७॥

धन कर धरती पूरण कोउ पावे,
तृष्णा बधे तोई अधिकानी ॥समझो० ८॥

लालच वश बहु जाल में पक्षी,
कांटे में मच्छी फंस जानी ॥समझो० ९॥

सागर शाह की देख दशा सहु,
तृष्णा तजज्यों बद जानी ॥समझो० १०॥
पूरव पुण्य बिना, श्रम कीने,
पावे नहिं कोई एक आनी ॥समझो० ११॥
'रेणु' कहे सहु जन इम जानी,
करणी करज्यो मन मानी ॥समझो० १२॥

उपदेश दगाद्रोह पर ६

(तर्ज—आज रंग बरसे रे म्हारा०)

卐

सुगुणां सुणज्यो जी थे दगा द्रोह दुःख दायक तजज्यो जी।
मूलन भजज्यो जी टुक दगा द्रोह चित्त सरलता धरज्योजी ॥ टेर ॥

दुर्लभ नर भव सकल साज युत लह्यो थे पुण्य प्रभावो जी।
तिरन की विरिया दुर्गति भणी किम कपट कमावो जी ॥सु. १॥

कुशललता उत्पन्न करवा ने माया वन्ध्या मानो जी।
सत्यरूप रवि अस्त होन कुं सन्ध्या जानो जी ॥सु. २॥

नरकादिक दुर्गति तरुणी को, वरवा ने वरमाला जी।
महामोह गज वशवा कारण सुन्दर शाला जी ॥सु. ३॥

उपशम कमल विनाशन वारु, हिमराशि बतलाई जी।
अपयशता दुःख व्यसन बुलावा, दूतियां गाई जी ॥सु. ४॥

उठत बैठत बोलत डोलत, जागत स्वपनो आवत जी।
तोलत मापत लिखत हिया बिच, जाल जमावत जी ॥सु. ५॥

नर छल कर स्त्री पदे सिधावे नारी नपुंसक थावे जी ।
पंडग छलकर नरक निगोदे, बहु दुःख पावे जी ।।सु. ६।।

जैन वैष्णव यवन ईसाई धर्मशास्त्र के मांई जी ।
कपट बुरो कहियो कानूने, सजा भी गाई जी ।।सु. ७।।

द्रव्ये पर ने ठगे सो खुद ही, भावे वो ही ठगावे जी ।
निडर होय पय पीता *मिनको कमर भंगावे जी ।।सु. ८।।

दगो सगो नहि होत किसी को, जगत कहावत सांची जी ।
लेख पुरातन धर्म ग्रन्थ का लीज्यो थे वांची जी ।।सु. ९।।

स्तन पय पावन मिस लेकर के, कपट कृष्ण से कीधो जी ।
दुखदायी अंजाम तांहि को, पूतना लीधो जी ।।सु. १०।।

कौरव कपट कियो पांडव से, जुवा रम्या ऋद्धि छीनी जी ।
अन्ते पाण्डव तात तणी ऋद्ध जीत के लीनी जी ।।सु. ११।।

प्रिय मदन मारण ने शाह इक, बहु विध कीध उपायो जी ।
सुत सह सेठ मुवो घर ईश्वर कुंवर ते थायो जी ।।सु. १२।।

चंपक ने वनराज इत्यादिक अमित उदाहरण पाया जी ।
समझी लीज्यो सुगुण इण थी, दगा दुखदाया जी ।।सु. १३।।

पाक सरल दिल राख बहु विध, शांति सुधारस पीज्यो जी ।
'रेणु' सदा मन इच्छित ईज्जत, नित नवी लीज्यो जी ।।सुगुणां।।१४।।



---

*बिल्ली

उपदेश सात वारों पर—१०

(तर्ज—हांक प्रभु को धर्म पियारो)

卐

हाँक प्यारे सात बार में, सुकृत कर कर संग सकल जन-
बांधो अखिल खजाना रे क प्यारे ॥ टेर ॥

सूर्य कहे मैं तो गगन में फिरता, स्थिर चर सब जीवायु को हरता,
छिन छिन जात धर्म बिन बिरथा, इम जाणी पंचाश्रव तज-
के, जिन भाषित मग जाना रे क प्यारे० ॥ १ ॥

चन्द्र कहे हिय करो उजेरा, भोग जोग अन्तर बहुतेरा,
किहाँ लघु सरसव किहां सुमेरा, फल किंपाक भोग ओपम-
अरु जोग अमृत फल दाता रे क प्यारे० ॥ २ ॥

भोम कहे भगवन्त की वाणी, इह भव पर भव में सुखदानी,
स्वर्ग और अपवर्ग निशानी, अन्यमति उपभाषित दुखदा-
वचन को दूर त्यजाना रे क प्यारे० ॥ ३ ॥

बुद्ध कहे हिय बुद्धि विचारो, काम क्रोध मद मोह कुं मारो,
ज्यूं भवनिधि से होत निकारो, अक्षय अमित सुख सिद्धालय में-
वास हुंसी मतिवाना रे क प्यारे० ॥ ४ ॥

गुरूवार दिन गुरु चेतावे, राग द्वेष थी कर्म बंधावे,
कर्म बांध दुर्गति दुख पावे, स्वर्ग मोक्ष सुख चाह हुवे तो-
कर्म बीज छिटकाना रे क प्यारे० ॥ ५ ॥

शुक्र कहे नित सुकृत कीजे, पर भव जाता सम्बल लीजे,
दीर्घ पंथ ज्यूं सुखे बहीजे, बिन खर्ची संसार में दुखिया-
देख ग्रहो धर्म ध्याना रे क प्यारे० ॥ ६ ॥

शनी कहे संसार नी माया, विनसत बार लगे नहिं भाया,
इन्द्र चाप जिम अथिर कहाया, तज ममता अनरथ को-
खान सुं समता ग्रह तू सुजाना रे क प्यारे० ॥ ७ ॥

सातवार में जो अनर्थ करसी, ते नर नर्क कुंभी में परसी,
चतुर्गति संसार में रुलसी, जैन धर्म शुभ बोधबीजता,
फिर मुश्किल है पाना रे क प्यारे० ॥ ८ ॥

सात वार शिक्षावण ऐसी, सुन कर सुध मारग में बहसी,
ते नर मोक्ष पुरी सुख लेसी, गुणसठ साल में 'रेणु' कहे नित
वरते परम कल्याणा रे क प्यारे० ॥ ९ ॥

卐

उपदेश कक्का छत्तीसी पर ११

– दोहा –

पार्श्व जिनन्दपद वन्दि के, गुरुपद शीश नमाय ।
कहुँ उपदेश छत्तीसिका, सकल भव्य सुखदाय ॥१॥

(तर्ज—ख्याल की)

तुम सुणो भवि जीवां, कक्का छत्तीसी हिरदे धारियो ॥ टेर ॥

(क) कक्का करणी ज्ञान की सरे, कही जिनाज्ञा मांय ।
ज्ञान बिना करणी वृथा सरे, जोवां सूत्र को न्याय रे ॥ १ ॥

(ख) खख्खा खजाना धर्म का सरे, खूब लेवो तुम लार ।
द्रव्ये सुख अनन्त पामस्यो सरे, परभव मोक्ष तैयार रे ॥ २ ॥

(ग) गग्गा गर्व न कीजिए सरे, गर्व किया गुण जाय ।
देखो रावण सा गर्व थी सरे, धक्का नर्क में खाय रे ॥ ३ ॥

(घ) घग्घा घट परिणाम दान में, कबहुं न करिए भाई।
पंचक अच्युत स्वर्ग चढ्यो पिण, रह्यो सुधर्म के मांई रे ॥ ४ ॥

(ङ) नन्ना नारी जात पैं सरे, मत विश्वासो भूल।
देखो प्रदेशी श्राद्ध को सरे कियो नारी कस सूल रे ॥ ५ ॥

(च) चच्चा चरचा-ज्ञान की सरे, करो सुअवसर देख।
केशी प्रदेशी जिम हुसी सरे, धर्म वृद्धि सुविशेष रे ॥ ६ ॥

(छ) छच्छा छल दुखदा कह्यो सरे सूत्र में ठामोठाम।
शंख राय लव छल करी सरे, नारीपनो लह्यो श्राम रे ॥ ७ ॥

(ज) जज्जा जगत बुराई तज कर, करो भलाई सूत।
नहि तो दुष्ट दिवान परै तुम, बनोगे जीवित भूत रे ॥८॥

(झ) झज्झा झूंठ न बोलिए सरे, कष्ट पड़य पिण रंच।
वसु लव झूंठ उच्चारता सरे, कियो सातमी कूंच रे ॥९॥

(ञ) नन्ना नमणो अति भलो सरे, सब गुण प्रकटत आय।
भरत भ्रात भयो केवली सरे, टुंक नमता लघु भाय रे ॥१०॥

(ट) टट्टा टेक धर्म की करियो, अवर टेक तज दूर।
वज्रकरण जिम पामस्यो सरे, संकट में सुख पूर रे ॥११॥

(ठ) ठट्ठा ठाकुर धर्म का सरे, चलो तिनाज्ञा मान।
दोय घड़ी शुद्ध चालतां सरे, उपज्यो केवल ज्ञान रे ॥१२॥

(ड) डड्डा डर जिनराज नो सरे, द्वितीय गुरु लौकीक।
जो इतनो डर राखि के सरे, कर्यो सो कारज ठीक रे ॥१३॥

(ढ) ढढ्ढा ढील न कीजिये सरे, धर्म विषे क्षणमात।
देखो यशोधर नृप तणी सरे, संजम ग्रहण की बात रे ॥१४॥

(त) तत्ता तस्करी छोड़ियो सरे, ज्यूं जग जश सुख होय ।
नहि तो सत्यघोष द्विज परे सरे, मार पड़ेगी तोय रे ॥१५॥

(थ) थथ्था थिर यौवन नहीं सरे, तिम तन धन परिवार ।
थिर इक निज धर्म धारतां सरे, भयो भरत भवपार रे ॥१६॥

(द) दद्दा दान सबन में सरे, अभयदान परधान ।
गोत्र तीर्थङ्कर बांधियो सरे, मेघरथ दान प्रमान रे ॥१७॥

(ध) धध्धा धीरज धारियो सरे, धीरज बहु गुणखान ।
गज भोजन सादर मिले सरे, टुक टुकड़ा सम स्वान रे ॥१८॥

(न) नन्ना निज तिय नेह में सरे, अति मत मुरझो सैन ।
महीधरा के मोह से सरे, मरण लह्यो जयसेन रे ॥१९॥

(प) पप्पा परवधु दृष्टि से सरे, कबहुं न निरखो भूल ।
कीचक द्रोपदा देखतां सरे, भीम कियो कससूल रे ॥२०॥

(फ) फप्फा फिर कस पाइए सरे, गत घटिका नर कोय ।
जे रहि तामे चेतियो सरे, महाबल नृपवत् होय रे ॥२१॥

(ब) बब्बा बाणी जिनतणी सरे, है सुखदा तिहुं काल ।
ज्यूं जननी पय पीवतां सरे, होत पुष्ट लघुबाल रे ॥२२॥

(भ) भब्भा भज नवकार को सरे, सकल विघ्न वन आग ।
सुरतरु सा सुख संपजे सरे, जिम जग्यो सुदर्शन भाग रे ॥२३॥

(म) मम्मा मर्म न दाखिए सरे, नर नारी का कोय ।
शाह, प्रिया, सुत, नारी, नो सरे, मरण मर्म थी जोय रे ॥२४॥

(य) यय्या या माया तणी सरे, मत करो कोउ गुमान ।
कमलापति तज सम्पदा सरे, मुवो कौशम्बी रान रे ॥२५॥

(र) रर्रा रोस निवारिए सरे, बहु तप जारण आग ।
कुरड़ कुरड़ से तपी मुनिस रे, नरक गया व्रत भांग रे ॥२६॥

(ल) लल्ला लालच अति बुरो सरे, करा सकल गुणपात ।
सुरप्रिय निज तात की सरे, करी दुबारे घात रे ॥२७॥

(व) वव्वा वाद शठ जीव सू सरे, करता गुण नहीं कोय ।
ज्यूं खंदक पालक तणी सरे, बात लेवो तुम जोय रे ॥२८॥

(श) शश्शा शील शुद्ध पालतां सरे, कोटि विघ्न टरि जाय ।
शिव सुख पामें सहज में सरे, ज्यूं सीय नारद न्याय रे ॥२६॥

(ष) षष्षा खोटी देह का सरे, नेह करो मत भूल ।
सनत्कुमार चक्री परे सरे, जाणों क्षणभंगूर रे ॥३०॥

(स) सस्सा सच्च बाणी तणी सरे, महिमा जगत अनेक ।
देखो राय सभा मध्य में रहि पंचा की टेक रे ॥३१॥

(ह) हा हासो परिहरो सरे, जां ते बहुत बिगार ।
देखो द्रोपदा हास्य सूं सरे, खपि अक्षौहणी अठार रे ॥३२॥

(क्ष) क्षमा धर्म उर धारता सरे, टरत सकल जंजाल ।
देखो खंदक गज मुनि सरे, मुक्ति गया भव टाल रे ॥३३॥

(त्र) त्रत्रा त्राता धर्म को सरे, तजी अधम मग जाय ।
ते नन्दन मणियार जिमि सरे, मरी विराधक थाय रे ॥३४॥

(ज्ञ) ज्ञज्ञा-ज्ञानी गुण कियां सरे, घट तम सकल नसाय ।
वीर जिनन्द पद वन्दता सरे, गौतम चउदा पूर्वी थायरे ॥३५॥

विजयराज गुरुराज कृपा से, "रेणु" जोड़ सुनाय
कक्का छत्तीसी धारज्यो सरे, जीवन उज्ज्वल थाय रे ॥३६॥

~

उपदेश जाति विषेयक १२

(तर्ज—गजल ... .)

अये अजीजों देखियो, जाति किधर को जा रही !
पथ पूर्वजों का त्याग के, उन्मार्ग जा दुःख पा रही ॥टेर॥

यवन अत्याचार रूग् की, लघु ब्याह सच औषध बनी ।
पर हा ! जमाने फेर से या दवा सो रूज रूपा भई ॥१॥

सूंठ मृगमद औषधि है – शीत की, नहीं उष्ण की ।
रूज हुवे, सेवत उष्ण में, जो पूर्व, तन में थे नहीं ॥२॥

बल बुद्धि आयु कम हुआ, रोगीष्ट अंगज हो रहा ।
धन धर्म यश उत्साह आदि, गुण युक्त जन किम जन्महि ॥३॥

जाति भक्त जन्मे बिना, सुधार नहि यों समझि के ।
बद व्याह पथ को रोक दो यों वक्त नसीहत दे रही ॥४॥

सुख के साधन सर्व थे, जीवों को जमाने पूर्व में ।
अब तो अति दुर्लभ भया, जल अन्न तन पोषण यही ॥५॥

श्रेष्ठ जन के आय का तो, पथ दिनों दिन रुक रहा ।
बद खर्च को फैलाय क्यों, दुख बीज बोते हो सही ॥६॥

विवाह मोसर भोज्य में, कम खर्च कर कारज करो ।
ल्हाण उठा दो ठोल सूदा, निशि भोज्य में न भला कहीं ॥७॥

गहने की बद रश्म में फस, भारत ए गारत हुवा ।
सीखो पड़ला में भेजना, जो रश्म पूर्व थी वही ॥८॥

आतीशबाजी रण्डी अरु, खर्च बाजे का तजो ।
कम खर्च पथ सेवन करो, ज्यों दुख न पावे निधन ही ॥ ९ ॥

विधर्मी होने से बचावो, स्वजाति के विधवा शिशु ।
कर प्रबन्ध समुचित दिखादो, समाज उन्नत युत मही ॥१०॥

जाती सहायक फण्ड अब, हर ग्राम होना चाहिए ।
खासी रकम होने से आगे, सुखद फल होगा सही ॥११॥

अये सुभक्तों ! कमर कस, बनो सहायक, मत हटो ।
'रेणु' कहे फिर हो रहेगी, पूर्व सी उन्नति वही ॥१२॥

उपदेश जाति विषयक १३

(तर्ज—पूर्ववत् गजल)

टुक चश्म दिल के खोल देखो, जैनियों क्या हो रहा ।
धन धर्म बेड़ा जाति का, भव सिन्धु में कित जा रहा ॥ टेर ॥

होना जरूरी खर्च वहाँ तो, तंगदस्ती हो चली ।
तंगदस्ती की जगह में व्यर्थ व्यय का पथ गहा ॥ १ ॥

धर्माभिमानी सच ईमानी बन पूर्व जन अधर्म दहा ।
हा ! पूर्वजों के अब हुए हैं, धर्म गुमाना धर्महा ॥ २ ॥

वर संप रख हितकर परस्पर, समाज को उन्नत किया ।
पर आज हा ! निज उन्नति का, ध्यान दिल में है कहाँ ॥ ३ ॥

गरीब के गले मोसने, खाने कमाने ऐश में ।
अरु स्वजाति अधःपतन में, वीरपन माना अहा ॥ ४ ॥

उठो चेतो अये अजीजों ! बीती बिसारो आज से ।
जाति संरक्षक बनो, धन, प्राण को अर्पण करा ॥ ५ ॥

एकता के सूत्र में सब होके जाति रु धर्म के ।
लेश अपव्यय बदरश्म को मेट दो जो हो जहाँ ॥ ६ ॥

पूर्वजों के पुत्र हो तो पूर्ववत् कारज करो ।
'रेणु' कहे फिर उदय होगा, धन धर्म यश गौरव यहाँ ॥ ७ ॥

卐

उपदेश जाति विषयक १४

(तर्ज—पूर्ववत् गजल)

उठो चेतो जैनियों सोते हो किस वे भान में ।
थे पूर्व कैसे अब हो कैसे, देखो जरा निज ज्ञान में ॥ टेर ॥

क्या तुम्हारा ज्ञान था, क्या तुम्हें सम्मान था ।
थी दशा क्या ही यही जो, आज पड़ती कान में ॥ १ ॥

वह तुम्हारा जीव दया का, झण्डा किस हाथों गया ।
कुछ खबर तुम को नहीं है, जगत किस चालान में ॥ २ ॥

बाल वृद्ध विवाह आदि और वैश्या नृत्य को ।
जड़ से हटा के दिल लगा दो, समाज सेवा दान में ॥ ३ ॥

विवाह मोसर आदि में जो व्यर्थ व्यय है रोक दो ।
गहने बना दुलहिन सजा क्यों फंसते फंसाते कुवान में ॥ ४ ॥

कन्या के गहना भेजने की बदरश्म अति चालू करी ।
क्या लाभ हानि है इसी में, कुछ तो लावो ध्यान में ॥ ५ ॥

सारे झगड़ों को मिटा लग जावो जाति उत्थान में ।
मत हटो पीछे कभी नौबत पड़े गर प्राण में ॥ ६ ॥

विद्या का संचार कर त्यागो कुरीति दूर सब ।
'रेणु' कहे सही पामस्यो, सुख शांति सकल जहान मे ॥ ७ ॥

~

-: गूढार्थ-जिन-वन्दनाष्टक :-

दोहा

उदधि सुता सुत तास रिपु, तसु वाहन जसु पाद ।
मांहि सुशोभित ते प्रभु, 'रेणु' करत नित याद ॥ १ ॥

अर्थ

उदधि समुद्र का नाम है । समुद्र की पुत्री लक्ष्मी[1] और लक्ष्मी का पुत्र कामदेव और उस का शत्रु महादेव और महादेव का वाहन वृषभ (बैल) प्रसिद्ध है । तथा वृषभ का चिह्न हैं जिनके चरण-कमलों में ऐसे प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवस्वामी का मैं सदा स्मरण करता हूं ॥ १ ॥

दोहा

गिरिजा पति के पुत्र का, वाहन जे पद-कंज ।
शोभित हैं ते ईश नित, 'रेणु' नमै तजि रंज ॥ २ ॥

अर्थ

गिरि अर्थात् पर्वत और पर्वत से उत्पन्न होने वाली गिरिजा नदी कहलाती है । नदी का पति समुद्र और समुद्र का पुत्र अमृत है । अमृत का वाहन चन्द्रमा और चन्द्रमा का चिन्ह है जिनके चरण कमलों में ऐसे अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ को मेरा नमस्कार हो ।

---

[1]यहाँ पर जो समुद्र की पुत्री लक्ष्मी बताई गई है उसका कारण यह है कि पुराणो मे समुद्र मन्थन की एक मान्यता चली हुई आ रही है । वे समुद्र मन्थन से चौदह-रत्नों को उत्पत्ति मानते आए है, जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

दोहा—श्री, मणि, रम्भा, वारुणी, सुधा, शख, गजराज ।
कल्पद्रुम, शशी, धेनु, धन, धन्वंतरि, विष, बाज ॥

यह दोहा द्वि-अर्थक है। इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार होता है—नदी का पति समुद्र और समुद्र का पुत्र चन्द्रमा तथा चन्द्रमा का वाहन मृग (हिरण) है। तो, मृग का चिन्ह है जिनके चरण-कमलों मे ऐसे सोलहवे तीर्थपति श्री शांतिनाथ स्वामी को मेरा नमस्कार हो ॥ २ ॥

सोरठा

अचल सुकुमरी ईश, सुत वाहन चरणां सहज।
सोहत ते जगदीश, 'रेणु' तांहि वन्दन करे ॥ ३ ॥

अर्थ

अचल पर्वत का नाम है। पर्वत की पुत्री नदी और नदी का स्वामी समुद्र है। समुद्र का पुत्र अमृत और अमृत का वाहन चन्द्रमा है। चन्द्रमा का चिन्ह है जिनके चरणों मे ऐसे अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ को वन्दन करता हूं।

यह सोरठा भी द्वि-अर्थक है-! इसका दूसरा अर्थ ऊपर कथित दोहे के समान ही जानना चाहिए ॥ ३ ॥

दोहा

अचल सुता पति पुत्र का, वाहन जसु पद मांय।
राजत है ते ईश नित, नमत 'रेणु' सुखपाय ॥ ४ ॥

अर्थ

इस दोहे का अर्थ व दूसरा अर्थ उपर्युक्त सोरठे के समान ही समझले।

दोहा

तरु अम्बा पति सुत सखा, जनक तास बड़भ्रात।
'रेणु' कहे तस सुत प्रभु, भविक नमो उठ प्रात ॥ ५ ॥

अर्थ

तरु वृक्ष को कहते है। वृक्ष की माता पृथ्वी और पृथ्वी का पति इन्द्र है। इन्द्र के पुत्र अर्जुन और अर्जुन के मित्र श्री कृष्ण है। श्री कृष्ण के

पिता वसुदेव जी और वसुदेवजी के बडे भाई श्री समुद्र विजय जी तथा उनके सुपुत्र एवं बावीसवे तीर्थंकर श्री नेमीनाथ प्रभु को मेरा नमन हो ।।५।।

हेम सुता पति तिलक हो, जनक सुता पति तात ।

तस बड़बन्धव तास सुत 'रेणु' नमें दिन रात ।। ६ ।।

अर्थ

हेम पर्वत को कहते है । पर्वत की पुत्री पार्वती और पार्वती के पति महादेवजी । महादेवजी के मस्तक का तिलक चन्द्रमा है और चन्द्रा का पिता समुद्र है समुद्र की पुत्री लक्ष्मी और लक्ष्मी के पति श्री कृष्ण हैं । श्री कृष्ण के पिता वसुदेवजी और वसुदेवजी के बडे भाई श्री समुद्रविजय जी के सुपुत्र श्री नेमीनाथ प्रभु को सदैव मेरा सविधि वन्दन हो ।।६।।

दोहा

कृतिका अग्रज रिक्षपति, तां को जनक निधीय ।

पती तात बड़बन्धु सुत, वन्दहुँ चरण त्वदीय ।। ७ ।।

अर्थ

कृतिका नक्षत्र के आगे का नक्षत्र रोहिणी है । रोहिणी का पति चन्द्रमा और चन्द्रमा का पिता समुद्र है । समुद्र की निधि लक्ष्मी है और लक्ष्मी के पति श्रीकृष्ण है । श्रीकृष्ण के पिता जी के बड़े भाई समुद्रविजय जी के सुपुत्र श्री नेमीनाथ प्रभु को मैं नमस्कार करता हूं ।।७।।

दोहा

आखू स्वामी के जनक, गल भूषण पद जेह ।

अंकित है ते नित नमो, 'रेणु' कहे धरि नेह ।। ८ ।।

अर्थ

आखु चूहे का पर्यायवाची नाम है । चूहे के स्वामी श्री गणेश एवं श्री गणेश के पिता महादेवजी है । महादेवजी के गले का भूषण सर्प है और सर्प का चिन्ह है जिनके चरण-कमलो में ऐसे तेवीसवे तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु को मैं सस्नेह सविधि वन्दना करता हूं ।।८।।

~

लोभः दुःखों का मूल

दोहा

सद्गुरु-चरण-सरोज-द्वय, मतिदायक गुणपोष ।
ते प्रणमी अब कहत हूँ, तोष - लोभ, गुण - दोष ॥ १ ॥

लालच कर लाखों लखी, पाया दुःख अनपार ।
त्यागत भवत्यागी तिर्या, सुनो कथन श्रीकार ॥ २ ॥

ढाल १. (तर्ज—पनजी मुन्डे बोल)

लालच दूरे छोड, छोड़ छोड़ लालच को भविकां,
निरख बुराई रे ॥ लालच ॥ टेर ॥

धनिक शाह धनदास श्री पुर में, निवसे धन अभिलाषी रे ।
पारस पावन मिस संतन की, करे सेव शाह खासी रे ॥ १ ॥

इम बीतो बहु काल न मिलियो, बांछा पूरणवारो रे ।
शाह सुधारन एहवे आये, सिद्धेश्वर सारो रे । २ ॥

भक्ति करी खुश कियो सिद्ध को, नाथ ! पारस मुझ दीजे रे ।
सिद्ध कहे खुश होय दियो वर, जेह सुनीजे रे ॥ ३ ॥

अर्ध पाद बिन तन सहु फरस्यां, वस्तु कनक सम थास्ये रे ।
मुनि बन्दी खुश होय चल्यो अब, वर अजमास्ये रे ॥ ४ ॥

दोहा

हर्षित हाटे हालियो, कीधो कनक अपार ।
धन्य भाग मानत धनो, पहुंचो बाग मंझार ॥ १ ॥

ढाल २. (तर्ज—पणिहारी जी हेलो)

सहु तरु तन थी फरसिया,— सुनो श्रोताजी—
थयो सोवनमय बाग — श्रोताजी ।

देख-देख हरख्यो घनो — सुनो श्रोताजी-
धन मुनि धन मुझ भाग — श्रोताजी ॥ १ ॥

अवर धाम जिहां जे हूँता — सुनो श्रोताजी-
सहु किया कनक आवास — श्रोताजी ।
धन्य-धन्य दुनियां वदे — सुनो श्रोताजी-
कर्मवतो धनदास — श्रोताजी ॥ २ ॥

धनमद छक्यो धनदास जी — सुनो श्रोताजी-
स्वपर लखे कुछ नांय — श्रोताजी ।
गुण सुणतो जावे घरे — सुनो श्रोताजी-
भोजन समय भयो आय — श्रोताजी ॥ ३ ॥

दोहा

किम मद छूटै शाहनो, कुमति टरै कहो केम ।
सरस कथा सहुँ को सुनो, जिम बीती कहुं तेम ॥ १ ॥

ढाल ३. (तर्ज—महाने भून्डो लागेजी)

लालच आछो नांहीजी — लालच०
ज्ञानी रह्या सहु-गाय — लालच० ॥ टेर ॥

बाहिर भीतर परिषद् सारी, शाह लखी आदर दीनो ।
झारी भाणो ले भामिनी आई, हिवे सुनो चरित्र नवीनो ॥ १ ॥

भाजन भोज्य ज़लादिक फरस्या, सहु थया कनक समानो ।
भूख तृषा नी पीड थी शाहजी, दिल में अति अकुलानो ॥ २ ॥

चिंता स्थित थो शाह जिहां, तिहां पुत्र सुता चलि आया ।
वर्जत अड़िया कनक हो पड़िया, शाह दिल अति घबराया ॥ ३ ॥

झट पट जावो सिद्ध बुलाओ, मुनि माया सहु हरस्यूं ।
सिद्ध न पायो शाह मुरझायो, हाय हिवे स्यूं करस्यूं ॥ ४ ॥

छते पुत्र हा भयो निपूतो, भोज्य बिना सही मरसूं ।
गृहस्थ ढंग बिनठो हा ! अब हूँ, स्यूं करुं इण बहु ज रसूं ॥ ५ ॥

एम विलाप करे बहु शाह जी, रड़े पड़े मुरछावे ।
चेतन करवा स्हाणी आई, वा पिण जड़वत् थावे ॥ ६ ॥

दोहा

चेत लहि लखि नार-गति, पति चित भयो अति ख्वार ।
हा हा ! देव दीधो किसूं, दाज्या ऊपर खार ॥ १ ॥

ढाल ४. (तर्ज—हूं किमकर दिन काढ्ंगो हो सुण नणदीरा वीर)

हूँ किम कर दिन काढ्ंगो, अहो सिद्ध ऋषिराज ॥ टेर ॥

पुत्र सुता बिहूं परभव पहुंता, पद्मिनि पिन मुई आज ।
अन्न बिना हूँ, पिन हिवे मरस्यूं, वेग आओ महाराज ॥ १ ॥

हा हा ! किम मुज कुमति उपनी, किम मांग्यो वर राज ।
ज्ञानी होकर आप दियो क्यूं जिनसे विनठो काज ॥ २ ॥

धन थी धायो अति घबरायो आयो शरणे आज ।
माया समेटो दुःखड़ो मेटो, करो कृपा ऋषिराज ॥ ३ ॥

दिवसज चौथे, ऋषि जी पोते, तुर्त खडा रह्या आय ।
साह लखि हरस्या मुनिपद फरस्यां, सिद्ध सोवन सम थाय ॥ ४ ॥

जीवन आस हुँती अब तांई, सा सहु गई मुनि संग ।
आतम तारुं, जर को छारूं, टारूं कर्म कुढंग ॥ ५ ॥

मुहूर्तान्तर में मुनिवर चेत्या, चेत लह्यो पुनि शाह ।
सिद्ध यूं आहे, शाह स्यूं चाहे, माया समेटो नाह ॥ ६ ॥

दोहा

सोना कारण शाह सुन, खोय कनक हुवो ख्वार ।
अक्षय सोवन आ मिल्यो, किम अब करो नकार ॥ १ ॥

सोने घर सूनो कियो, खरो कनक अघ खान ।
सोना मांहीं गुन हुंता तो, किम तजता भगवान ॥ २ ॥

इन कारन कहूँ आपने, सुनो संत सिरताज ।
आपद टारो आज ही, सफल बने सब साज ॥ ३ ॥

ढाल ५. (तर्ज—गोपीचन्दरी देशी में)

मया करी मुनि माया समेटी, जे जिम था ते तिम थाया रे लो ।
शाह स्वजन मन हरस न माया, अगणित मुनि गुण गाया रे लो ।
आज नगर में सिद्ध ऋषि आया,
अद्भुत आनन्द छाया रे लो ॥ टेर ॥

मुनि महिमा सुन नागर जन आया, दर्शन कर सुखपाया रे लो ।
धन्य मुनि धन्य करणी तुम्हारी, करत प्रशंस सवाया रे लो ॥२॥

अति तृष्णी जन अति दुख पावे, तोष में सुख मन चाया रे लो ।
आशा अवगुण ओलख आछे, त्यागी बनो बाई भाया रे लो ॥३॥

सुन शाह स्हाणी भया बैरागी, दान धर्म ना थया रागी रे लो ।
अवर अन्य केइ तृष्णा त्यागी, धर्मी बण्या बड भागी रे लो ॥४॥

दम्पती निजातम धर्म आराधी, अंते सुरगति साधी रे लो ।
इम जाणी भवि तृष्णा को त्यागो, ग्रहो संतोष समाधी रे लो ॥५॥

महामुनि मगनेश तणां शिष्य, विजय मुनि गुणदाई रे लो ।
तास शिष्य मुनि 'रेणु' या जोडी, तोष भाव चितलाई रे लो ।।६।।

गुन्नीसो पिच्यासी वर्षे, द्वितीय सावन सुखदाई रे लो ।
नूतनपुर पर्यूषण पर्वे, सकल सभा मन भाई रे लो ।।७।।

न्यूनाधिक कहिवाणो कांई, मिच्छामि दुक्कडं थाई रे लो ।
वक्ता श्रोता घर मंगल माला, नित-२ थास्ये सवाई रे लो ।।८।।



-: ईश भजन ही सहु सुख देही :-

(तर्ज—पावन पुरूषोत्तम भगवान-राम की)

चित्त धर सुणज्यो हो श्रोता गण सारा आछयो एह आख्यान ।
आछयो एह आख्यान, सुनकर अमल करो गुणवान ।।टेर।।

बली भूप ने निबल नृपति को, राज्य पाट लियो छीन ।
बाहिर काढ्यो, वन जा ठाडो, गहि केवल कोपीन ।। १ ।।

ध्यानारूढ मुनि गुण धरि ने, तपे तपस्या पूर ।
सकल देश में सौहरत पसरी, ज्यूं किरण उगंते सूर ।। २ ।।

सुन महिमा राजा की राजा, चिंते मन में आम ।
निबल नमायो अजस कमायो, कीनो निकमो काम ।। ३ ।।

तो हूँ जाऊं, पाछो ल्याऊं, द्यूं बली आधो राज ।
अजस उखारूं, जस विस्तारूं, राखूं कुल की लाज ।। ४ ।।

आडम्बर ले आयो राजा, ऊभो तपसी पास ।
बेकर जोडी सहु मद छोडी, एम करे अरदास ।। ५ ।।

राज तुम्हारो ले लो सोरो, बली कहो कुछ आज।
ते सहु देस्यूं पिण संग लेस्यूं, मानो अरज महाराज ॥ ६ ॥

विनती मानो हो अलवेसर, उभो अरज करूं करजोर।
अरज करूं कर जोर—मेरे हो स्वामी सिरमोर ॥ टेर ॥

ध्यान छोर ध्यानी कहे वानी, आप हो सब रखवार।
दरस दिरायो सहु भर पायो, दान और मनुहार ॥ ७ ॥

नहि नहि मांगो सब कुछ देस्यू रहस्यूं आज्ञाकार।
क्या नृप मांगूं देत नटोगे, नटूं न मांगो सार ॥ ८ ॥

जनम-जनम में जीवन पायो, धायो तिण थी राज।
प्रसन्न भये तो जल्दी दीजे, अमर जीवन महाराज ॥ ९ ॥

धन धारन केई धसत धंध में, निज धर्न करत प्रयान।
ऐसो न चाहूं नित धन पाऊं, बगसो मोहि सयान ॥१०॥

घटत बढत अरू आत जोत से, चाहूं न यौवन रूप।
अविघट यौवन रूप दीजिये, मांगूं तुमसे भूप ॥११॥

निराबाध सुख खुशी रंज बिन, अपर भी देवो आप।
एह सुनी घबरायो क्या यूं, लगी जबां पर छाप ॥१२॥

साहब भाखो जबां को राखो, नाखो कांई निसास।
कुछ तो आखो जैसो तैसो, बंधवाओ विश्वास ॥१३॥

क्या मुख केऊं क्या तुझ देऊं, इन्द्र न दे सके आप।
ईश भजन थी ए सहू पावे, के सुकृत परताप ॥१४॥

ऐसी जान आन वन मांहीं, धर्यो प्रभु को ध्यान।
जे जे च्हास्यूं ते सहू पास्यूं, करस्यूं करणी अमान ॥१५॥

भूप तथास्तु कही खमायो, बनियो जेह कशूर ।
पात्र मान मुनिजी समझायो, परम धरम को मूर ॥१६॥

नृप घर आयो पाप घटायो, धर्म बढ़ायो धीर ।
मोक्ष सिधायो आनन्द पायो, मेटी तन मन पीर ॥१७॥

अमित जीव उद्धार आप फिर, मोक्ष विराज्या जाय ।
सुकृत के बल 'रेणु' मुनि नित, मन वांछित फल पाय ॥१८॥

गुन्नीसे तैयांसी बरसे, मांघ तीज गुरुवार ।
ढाले मसूदे, चित आसूदे, जोरी आनन्दकार ॥१९॥



सफल कीजिये जन्म को

(तर्ज—आज रंग बरसे रे)

प्रीतम धारो रे ······ (पिऊ अवधारो रे)
या सीख सुखद सुनि, जन्म सुधारो रे ॥ टेर ॥

धनी सेठ घर धंधा मांही, दिवस गमातो सारो रे ।
पिउ प्रतिबोधन धण यों भाखे, बारम्बारो रे ॥ १ ॥

ईश भजन, पुण्य संचय करबा, यह तन पिउजी मिलियो रे ।
लालच विषय में फंस के एहलो, गमें सो थलियो रे ॥ २ ॥

देवा ने पिण दुर्लभ देही, सो थे पिउजी पाई रे ।
व्यर्थ गंवा पिछतास्यो ज्यूं, नृप राणो पछताई रे ॥ ३ ॥

पारसमणि सम नर तन पाकर, सेठा जन्म सुधारो रे ।
काल चन्दे आया घबरास्यो, क्यूं न विचारो रे ॥ ४ ॥

साठ घड़ी मां आठ घड़ी तो, सुकृत संचय कीज्यो रे।
बहुत कही पिण पिऊ न मानी, आगे सुणीज्यो रे ॥ ५ ॥

सेठ भयो बीमार एक दिन, कहे सेठानी से वानी रे।
वैद्य बुलाओ दवा करावो, अच्छो सयानी रे ॥ ६ ॥

अरु जक आया, रुज बतलाया, नुसखा तुरंत लिखाया रे।
पथ्य बता के वैद्य सिधाया, सहु हरसाया रे ॥ ७ ॥

दवा सेठानी त्यार कराई, ताक मांहि धरवाई रे।
सेठ पूछियो संध्या समये, बनी के नांही रे ॥ ८ ॥

बनी बनाई धरी ताक में, अब तक क्यों नहिं दीनी रे।
जल्दी क्या है दे देऊंगी, कब देगी नादानी रे ॥ ९ ॥

आज कल परसों तरसों में, दे ही दूंगी दवाई रे।
किस काम आयगी दवा जान-मेरी हुई हवाई रे ॥१०॥

मरने को तो आप प्रीतमजी, भूल मानते नाँहीरे।
कौन न माने मरन को प्यारी, जग रह्यो जाई रे ॥११॥

सुकृत संचय करबा जब-२, कहती तब यों उचरते रे।
समय पाय सब कर ही लेंगे, क्या हम मरते रे ॥१२॥

मरण मानते तो ऐसी वाणी, पिउजी कहते नांही रे।
आज दवा के मिस से मृत्यु, याद में आई रे ॥१३॥

रोग नाश के लिए दवा को, जैसे लग्यो उमाहो रे।
त्यूंही मृत्यु के फन्द से बचबो, क्यूं नहिं चाहो रे ॥१४॥

बनी २ में फेर बनालो, दीप थी दीपक थाई रे।
चेतो प्रीतम जी तिरन की विरिया, दुर्लभ पाई रे ॥१५॥

मानी सेठ सेठानी केरी, बन्यो सेठ वैरागी रे।
दीध दवाई अरूजक होई, हुवो सुकृत रागी रे ॥१६॥

श्रावक व्रत शुद्ध पाल दम्पती, अंते सुर पद लीनो रे।
विदेह क्षेत्र से जास्ये जहां है, धाम सुखी नो रे ॥१७॥

उन्नीसो तैयासी बरसे, माघे प्रतिपद आई रे।
'रेणु' मुनि या जोरी मसूदे, सब मन भाई रे ॥१८॥

ईश - मिलन

तर्ज (कांटो लागो रे-देवरिया)

सहु मिल सुणज्यो जी भविका! भलभावे, दे सद्गुरु उपदेश।
....दे सद्गुरु.... धार्या मिट जावे भव कलेश ॥ टेर ॥

कनकपुरी इकशाह नो सुत थो, मतिसुन्दर मति-धाम।
कंवराणी मनमानी स्यानी, लघु सुत इक अभिराम ॥ १ ॥

दरिद्र सतायो तब घबरायो, बसियो जाय विदेश।
तिहाँ धनी इक शाह घर राख्यो, जानी पुरुष विशेष ॥ २ ॥

अन्य दिने गुण ओलख शाह जी, निज धन नायक कीध।
सेवा सारे वित्त बधारे, सहु मांही जस लीध ॥ ३ ॥

बरसा मांही हुआ कोटि-ध्वज, सुखे गमावे काल।
महल बनावे सब मन भावे, करे सुजन-प्रतिपाल ॥ ४ ॥

हिवे सुत लारे, वर्ष अठारे, मांही बंधियो आय।
सब गुण वारो मोहनगारो, पूछे मात से जाय ॥ ५ ॥

किहां निवसे मुझ तात मातजी, है कुण से रंग रूप ।
पूरब दिशि को कही सिधाया, तुम सम सकल स्वरूप ॥ ६ ॥

अवस्थान्तर को भेद समझ ले, अवर भेद कछु नांय ।
एह सुनी ऊमाहो उपनो, ली खरची संग मांय ॥ ७ ॥

मिलन को जातां, संग ली माता, खोजत पहुंच्या जाय ।
खुद उणियारे कंवर ओलखी, रह्यो मजुर्या मांय ॥ ८ ॥

नूतन पेख पिता सब पूछ्यो, दीनो सकल सुनाय ।
मात किहाँ छे ? तात ! इहां छे, मिलिया त्रिहुं सुख मांय ॥ ९ ॥

श्रावक व्रत सुध पाले दम्पती, दे समकित की नींव ।
अंते कर संथारो पाया, शिवपुर सुक्ख अतीव ॥१०॥

पुत्र समो मोक्षार्थी मानव, मोक्ष धाम परदेश ।
मात समानी सद्गुरू वानी, पिता समो विश्वेश ॥११॥

निश्चल चित धर ईश मिलन को, जीव जो करहि प्रयास ।
मति सुन्दर ज्यूं मुश्किल नांहीं, राखो दृढ़ विश्वास ॥१२॥

साल तैयासी वर्धनपुर में, माघ चौथ शनिवार ।
ईश मिलन की आश रखो नित, 'रेणु' कहे यही सार ॥१३॥

~ सामाजिक सन्देश ~

(तर्ज—म्हारे घरे पधारो जी, रूठोडा शिवशंकर)

म्हाने भूंडी लागे जी, सहु ने भुंडी लागे जी......
गहणा की बद चाल, सहु नें भुंडी लागे जी ॥ टेर ॥

गहणा चाल विषम विष जैसी, प्रायः दुख फलदाता ।
कुलटा व्यभिचारी बणबावा, या दूती गुण-घाता ॥ १ ॥

विलासता वश होय धनिक जन, गहणा गति अपनाई ।
धनिक डूब फिर निधन डूबोवा, पाहन नाव बनाई ॥ २ ॥

गहना चाल असुन्दर ओलख, त्यागो तिणरी बान ।
गहना गुप्त अरथ को आखे, तिण में द्यो टुक ध्यान ॥ ३ ॥

गहना कहे मुझे मत गहना, गहने में नहीं सार ।
गहते-२ ग्राहक हो गये, कुलटा जिम बेकार ॥ ४ ॥

दागीना कहे दागी दीना, जग जन देह अपार ।
रमा सुनीति आय ईज्जत अरू, शरम सुकीरति सार ॥ ५ ॥

हिवड़े पिण नहीं रहूँ नचीतो, कर रह्यो जो मुझ काज ।
तो पिण मूरख मुझ संग्रहणे, गिणे न काज अकाज ॥ ६ ॥

ऐश बढावे लाभ घटावे, खरच बढा ऋण राखे ।
अजस उपावे भूख नवावे, भूषन भाव यों भाखे ॥ ७ ॥

समथ धनिक हद राखो मेरी, यही सच अलंकार ।
बेहद बसबो दुःख में फंसवो, इम आखे अलंकार ॥ ८ ॥

दाग्या ज्यूं दागी तन पाछो, आवूं निज आगार ।
मैं नहीं सीरी बनूं तोहि मुझ, पहिरे मूढ अपार ॥ ९ ॥

चोरी करावे धाड़ पड़ावे, गहना गरथ गमावे ।
नित्य मांडतो भाव भविक सुन, गहना गति विषमावे ॥ १० ॥

शील सुविद्या सदाचार का, गहना सब ही पहनो ।
'रेणु' सदा सुख सम्पति पास्यो, सुचो सजन अरू बहनो ॥ ११ ॥

दोहा

अयि सज्जनो बांचि के, करि दिखलाओ काज।
अपव्यय तजि सद्व्यय भजो, उन्नत होय समाज ॥ १ ॥

अपढ बाल, अरक्षित त्रिया, अरू अपंग जो होय।
सहायक फण्ड बढाय के, सहाय करो सहु कोय ॥ २ ॥

~ सुकृत संचय - कीजिये ~

* दोहा *

सुख मांही करनी करे, ते बहुला नर जान।
दुख मांही ईश्वर भजे, मिले परम सुख स्थान ॥ १ ॥

पहली ढाल (तर्ज– हो सरदार थारो पचरंग पेच्यो .....)

सुभगा नगरी जाणिये रे, सूरसेन भूपाल।
दल बल सेना सज करी रे, आये दुर्ग पुर चाल ॥
हो राजाजी, निबल नमाई बाहिर काढयो जी महाराज ॥ १ ॥

वैराग्य व्रत आदरी रे, धर्यो ध्यान वन मांय।
लब्धिवन्त मुनिवर हुये रे, जगत प्रशंसा थाय ॥
हो राजाजी, सुन के आयो,मुनि पे चालो जी महाराज ॥ २ ॥

कर जोडी राजा कहे रे, अर्ज सुनो मुनिराज।
अविनय कीधो आपरो, थे माफ करो महाराज ॥
हो मुनिराज, अपनो राज्य आप फिर लेवोजी महाराज ॥ ३ ॥

अधिक और फिर लीजिये रे, कीजिये महर दयाल।
मुनि कहे मुझ सुधा लीवो, रे, धन्य आप भूपाल ॥
हो राजाजी, मुझ मन तृष्णा अधिक सतावे जी महाराज ॥ ४ ॥

मम मन वांछित कामना रे, नहीं दे सकते आप ।
विरथा वचन खुलावतां रे, लागे मुनि नो श्राप ॥
हो राजाजी, सुन के फिर पीछो इम बोले जी महाराज ॥ ५ ॥

देश नगर भंडार ही रे, तन धन जीवन प्राण ।
इच्छित वस्तु लीजिये रे, लो गुरु कहनो मान ॥
हो ऋषिराज, अबतो जल्दी मुझ फरमावो जी महाराज ॥ ६ ॥

—दोहा—

अम्मर जीवन, नित्य धन, अविघट यौवन रुप ।
'रेणु' अदुख सुख रंज बिन, देहूँ खुशी मम भूप ॥ १ ॥

ढाल दूसरी (तर्ज– पनजी मुण्डे बोल)

भूप मुझ दीजे रे, ले लीजे लाहो इच्छित कीजे रे ॥टेर॥

और न चाहूँ भूप सुनो मुझे, अविचल जीवन दीजे रे ।
मुक्त पुरी को राज देय, जग में जस लीजे रे ॥ १ ॥

तन धन यौवन राज्य खजाना, मो कूं नाय सुहावे रे ।
नित्य धन्न अरु अविघट यौवन, मुझ मन भावे रे ॥ २ ॥

सुन राजा मुख से यों बोले, ये नहीं हमरे पासे रे ।
कहो क्या देऊं नाथ आज मै करु अरदासे रे ॥ ३ ॥

इन्द्रादिक और देव सुरासर, नहीं देवन की शक्ति रे ।
सुकृत संचय प्रभु भक्ति सूं, मिले जो मुक्ति रे ॥ ४ ॥

तब ही तो मै नृप इस वन में, ईश्वर ध्यान लगाया रे ।
सुकृत संचय करु जिसे, सब फन्द मिटाया रे ॥ ५ ॥

नृप कर जोड़ी कहे मुनि से, धन्य तुम्हारी वाणी रे ।
जगत फन्द तज भजत प्रभु, मिलसे शिव राणी रे ॥ ६ ॥

इम जाणी ने अहो भवि प्राणी, सुकृत संचय कीजे रे ।
नरतन पाकर धर्म करी, यूं लाहो लीजे रे ॥ ७ ॥

"रेणु" मुनि की अरजी ऐसी, अचिरानन्द सुणीजे रे ।
पाप श्राप सन्ताप दास का, अलगा कीजे रे ॥ ८ ॥



~ तृष्णा त्यागे, सुख मिले ~

(तर्ज- हो सरदार थारो पचरग .....)

तृष्णा भव तरु बीज है रे, तृष्णा दुख की खान ।
इच्छा तजी आदर लहे रे, तांको कहूँ आख्यान ॥
हो श्रोतागण, थे तो ध्यान लगाकर सुणज्यो जी सहु कोय ॥१॥

भोगासक्त एक भूपति रे, राज्य काज विसराय ।
मंत्रीश्वर को राज्य भार दे, बस्यो महल में जाय ॥
हो मंत्रीश्वर, एक दिन नृप से मिलबा जावे जी नृपद्वार ॥ २ ॥

भूप द्वार पर खडो मंत्रि पिण, खबर लिवी कछु नांय ।
अति घबरा कर निज घर जाकर, कह्यो पुत्र से जाय ॥
हो हित शिक्षा म्हारी, पुत्रां सारी थे सुणज्यो जी सहु एम ॥ ३ ॥

अल्प समय में घर धन लेई, जाय बसो अन्य ठाम ।
मैं निज आतम कारज करस्यूं, रमसूं आतमराम ॥
हो पुत्रा चहुँ, वाणी तात नी मानी सुखें जाओ जी विदेश ॥ ४ ॥

शेष वित्त सहु दान पुण्य कर, मंत्री विपिन मझार ।
तन, मन तृष्णा तज हुवो ऋषिवर, निरखन ईश दीदार ॥
हो मंत्री बिन लारे,गड़बड़ सारे, मच गई राज रे मांय ॥ ५ ॥

भूप बुलायो मंत्री न पायो, अकुलायो अवनीश ।
चहूँ दिशि चर भेजी खबर कराई, वन पाया मंत्रीश ॥
हो मौन न खोले, ध्यान अडोले, चर आई बोलेजी खास ॥६॥

अति आडम्बर भूपति वन में, आयो मंत्री पास ।
योगी ज्यूं तन मुख नृप निरखी, बोल्यो तुझ शाबास ॥
हो इतनो पद पाके, तजिया हो आके, काढ्यो थे कोई सार ॥ ७ ॥

पुलकित मुख हो मंत्री दाखे, सुन हो तुम नरपाल ।
तृष्णा तजतां प्रभु गुण भजतां, इतनो कमायो माल ॥
हो दिन चार कमाई, देऊं बतलाई, जिण में संशय नांय ॥ ८ ॥

आप मिलन प्रतीक्षा में तो, घण्टों बीतता राज ।
पिण नहीं मिलनो होत, अबे तो खुद ही पधार्या आज ॥
हो दिन चार कमाई, दीधी बतलाई आगे की फेर बतावस्यूं ॥ ९ ॥

दृढ विश्वास धरी तज आशा, ईश गुणालय होय ।
"रेणु" लहे पद निश्चल निश्चय,संशय धरो मत कोय ॥
हो इहां शहर मसूदे, चित्त आसूदे, ढाल बनाई जी राज ॥१०॥

卐 अथ गुण सुन्दरी चरित्र 卐

दोहा

यादव कुल–सिर–सेहरो, प्रणमूं नेम कुमार ।
राणी राजुल परिहरी, वरि शिवरमणी सार ॥ १ ॥

दुष्ट भूप निज पुत्री को, रंक ने दी परणाय ।
पिण निज भाग्ये दम्पती, पाम्या सुख सरसाय ॥ २ ॥

तेह चरित चतुरां तुम्हें, सुणज्यो देई कान ।
आप–कर्मो आख्यान में, आस्ये अभिनव ज्ञान ॥ ३ ॥

ढाल पहली (तर्ज—धर्म दलाली चित करे ··········)

जम्बु द्वीप ना भरत में, भद्दिलपुर अति सारो जी ।
राजा श्री अरिकेहरि, प्रजा भणी सुख कारो जी ॥ १ ॥

शील तणी महिमा सुणो ॥ टेर ॥

शीलादिक गुण सोहती, कमल माला तसु देवी जी ।
पुत्र नहीं तिण कारणे, देव देवी बहु सेवी जी ॥ २ ॥

इम करतां पुत्री थई, गुण सुन्दरी दियो नामो जी ।
पुत्र परे महोत्सव कियो, पाले धाय पंच तामो जी ॥ ३ ॥

गिरि गुहा में निर्भय पणे,कल्प वेली जिम बाधे जी ।
तिम गुण सुन्दरी बाधती, अष्टम वर्ष आराधे जी ॥ ४ ॥

कलाचार्य पासे ठवी, चौसठ कला भणी रींजी जी ।
देश भाषा सगरी ग्रही, बण गई शारदा बीजी जी ॥ ५ ॥

दोहा

पाठक परीक्षा पुत्रि नी, राजसभा विच देह ।
हर्षो भूप बहु धन दई, पहुंचायो निज गेह ॥ १ ॥

ढाल दूसरी (तर्ज—अलगी रहनी ए देशी)

जोवन जोर में झील रही रे, देखी हरसी माता ।
पुत्रि परणाऊं हाथ सूं रे, तो पासूं सुख साता ॥ १ ॥

सुणज्यो प्राणी, मोह महा दुखदानी ॥ टेर ॥

विविध वसन पहरावी ने रे, भूजण सहु तन साजो ।
दास्यां बहु साथे देई रे, मेली पिता पे माजी ॥ २ ॥

राय देखी हरस्यो घणो रे, ग्रही निज गोद में लीधी ।
पुत्री निरूपम पुत्र सी रे, मुझ ने देवां दीधी ॥ ३ ॥

पेख सहु उमराव मुसद्दी, राज रमणी रिद्ध एह ।
पाम्यो ना कोई भूपति रे, श्राण्यो गर्व श्रछेह ॥ ४ ॥

पुत्री वर घर रूवडो रे, जोवणो जग सहु जोय ।
प्रथम हि मुझ घर नी सहू रे - संपति जोऊं जे होय ॥ ५ ॥

दोहा

गर्व छक्यो नरपति तदा, दाब न सकियो गात ।
उछलि बाहिर नीसर्यो, कुत्सित गर्व कुपात ॥ १ ॥

ढाल तीसरी (तर्ज—रे जाया तुझ विन)

मद माच्यो भूपति वदे जी, सांभलो जन सहु साद ।
तुम्हें लही सुख सम्पदा जी, ते केहनो परसाद ॥
रे सुगुणां ! दाखो बात विचार ॥ १ ॥

सभा जन सगला कहे जी, इक वाणी चढि वाद ।
सुख सम्पति हमे भोगवां जी, स्वामी तुम परसाद ॥
भूपति जी ! तुम ईश्वर जग तात ॥ २ ॥

गुण सुन्दरी सुणियो तदा जी, हड़ हड़ आयो जी हाँस ।
भूपति पूछे पुत्री सूं जी, किम हंसि तेह प्रकाश ॥
हे पुत्रि ! तू स्याणी सुविनीत ॥ ३ ॥

सुता भणे सुणो तात जी रे, ए सहू भाखे जी झूंठ ।
मर्म कोई जाणे नहीं जी, भाखे जिम तिम लूंठ ॥
पिताजी ! हांजीड़ा सहु कोय ॥ ४ ॥

जेहवा बांधे मानवी जी, तेहवा ते फल पाय ।
सुख दुख दाता को नहीं जी, कर्म बिना जग मांय ॥
पिताजी ! एहिज सांची बात ॥ ५ ॥

दोहा

मै नहि भाखी मुक थकी, ए जिन भाषित वाच ।
सुख दुख दाता कर्म है, बले कहूं सुणो सांच ॥ १ ॥

ढाल चौथी (तर्ज—रे जीवा जिन धर्म कीजिये)

चक्री हरि भूपति घणां, इन्द्र बले इन्द्राणी ।
रंक भिखारी सभी जणां, कर्म भोगवे प्राणी ॥ १ ॥

कर्म सबल जग जाणिये, ॥ टेर ॥ नर कोई है नांई ।
अगर होवे तो कीजिये, सहु ने इक [1]दांई ॥ २ ॥

१ समान

रीसाणो राजा सुणी, भाखे तू रे अजाणो ।
मुझ सामर्थ्ये भोगवे, सुख दुख सहू प्राणो ॥ ३ ॥

आप कर्मा के तू मुझ कर्मो, आप कर्मो हूं तातो ।
राजा सुण कोप्यो घणो, ए अपछन्दा री वातो ॥ ४ ॥

ढाल चतुर्थी ए थई, नृप पुत्री पे रूठो ।
चिंते नृप कन्या वयण को, करणो है हिवे झूठो ॥ ५ ॥

दोहा

क्रोधाकुल भूपति भणे, निज मंत्री ने तेड़ ।
ल्यावो ढूंढी नगर से, दुखी माणस मुझ केड़ ॥ १ ॥

मंत्री ढूंढ़े सहु नगर, दुःखित जन सिरदार ।
कठियारो सिर भारी ग्रही, फिरतो लख्यो वजार ॥ २ ॥

आण्यो राजा पे तदा, पेख भूप कहे एम ।
इण ने या परणा विने, करस्यूं हियो मुझ हेम ॥ ३ ॥

ढाल पांचमी (तर्ज—कथ तमाखू परिहरो०)

मंत्री कहे कर जोड़ ने, इतनो न करिये रोष-मोरा लाल ।
कोड़ी पर कटको किसी-सांच कह्यां सूं दोष-मोरा लाल ॥ १ ॥

काज विमासी कीजिये, जिम जग सोभ लहाय-मोरा लाल ।
इण ने पुत्री परणांवतां, हाण हांसी घर थाय-मोरा लाल ॥ टेर ॥

छोरू कुछोरू हुवे सदा, पिण न हुवे मात कुमात-मोर लाल ।
कन्या कुत्सित भणी देवतां, लाजे क्षत्री जात-मोरा लाल ॥ २ ॥

राणी पिण बरजे घणी, या मुझ पेट नी जाल-मोरा लाल ।
काग गले कंचन तणी, नहीं शोभे वर माल-मोरा लाल ॥ ३ ॥

राणी मंत्री आदि दे, बरज रह्या नर-नार-मोरा लाल ।
राजा हठ माने नहीं, थयो नगरे हाहाकार-मोरा लाल ॥ ४ ॥

गुण सुन्दरी कन्या तदा, सल नहीं घाल्यो नाक-मोरा लाल ।
भाग्य लिख्यो वर पामियो,ए जिनमत नो वाक्य-मोरा लाल ॥ ५ ॥

दोहा

पाणिग्रहण करावियो, लीधा भूषण जेह ।
वस्त्र अमोलक पिण लिया, तृण जिम तोड्यो नेह ॥ १ ॥

ढाल छठी (तर्ज—पणिहारी जी हेलो)

वसन मलिन पहराविया — सुणो श्रोताजी—
गहणा दीना असार — श्रोताजी ।
मुझ निजरे आजे मती — सुणो श्रोताजी ।
कर्म ते पामिजे सुख सार — श्रोताजी ॥ १ ॥

हंसमुखी लारे हुई — सुणो श्रोताजी ।
आगे कठियारो पिउ पाल — श्रोताजी ।
जीरण घर पडियो जिहाँ — सुणो श्रोताजी ।
आया दम्पति चाल — श्रोताजी ॥ २ ॥

कठियारो कहे सांभलो — सुण प्यारी ए ।
तू अति रंभ समान — प्यारी ए ।
मैं निरभागी पिउ मिल्यो — सुण प्यारी ए ।
प्रकट्यो पाप प्रधान — प्यारी ए ॥ ३ ॥

तात बात खोटी करी — सुण प्यारी ए ।
दीधी मुझ ने ब्याह — प्यारी ए ।
हूँ निर्धन सिर सेहरो — सुण प्यारी ए ।
कोई न करे मुझ चाह — प्यारी ए ॥ ४ ॥

राजी थई तुमने कहूं — सुण प्यारी ए ।
मन भावे जिहां जाय — प्यारी ए ।
इच्छित वर गही कीजिये — सुण प्यारी ए ।
सफल जनम जग मांय — प्यारी ए ॥ ५ ॥

दोहा

सेल समा पिउ वयण सुन-मती थई दिलगीर ।
गद् गद् वाणी ऊचरे-सुण नणदी रा वीर ॥ १ ॥

ढाल सातवी (तर्ज—मारवाड़ी माड़)

प्रीतम ने प्रमदा भणे रे, साहस मन में धार ।
इण भव में सिर सेहरो थे हो, वालम हो मुझ प्राण ॥ १ ॥

हो नीका करि सुणज्यो, फेर न धुणज्यो,
एहवी बात अजोग ॥ टेर ॥

चिंतामणि पिउ पामियो रे, मुझ मन हर्ष अशेष ।
आज पछे इसी वारता रे, भाखज्यो मा अविशेष ॥ २ ॥

छाया तनु लारे रहे रे, तिम हूं रहस्यूं लार ।
कष्ट विपति पड़ियां थकां कांई, कदियन लोपूं कार ॥ ३ ॥

वयण सुणी हरस्यो घणो रे, था सुन्दर अमलोक ।
पुन्य जोगे मुझ ने मिली मैं तो, कर लीनी तहकीक ॥ ४ ॥

रायतणी निन्दा घणी रे, बोइज अबला बाल ।
धन गुण सुन्दरी बालिका थांरो, जस गावे बाल गोपाल ॥ ५ ॥

जनक कुयश काने कदा रे, सुणबो नही मुझ नीक ।
चालो हिवे पिउ ने कहे कांई, अन्य ठाम लखि ठीक ॥ ६ ॥

दोहा

तिहां थी चाली आविया, पोतनपुर मझार ।
सुखे रहे तिहां दम्पती, मोली बेचि बजार ॥ १ ॥

ढाल आठमी (तर्ज—दलाली की)

एक दिन भारी लेवण काजे-गयो गहन कान्तार ।
विलम्ब ज.ण भोजन लेई भामिनी, चाली जिमावण सार ॥ १ ॥

सुज्ञानी जन सांभलोजी, भलो दम्पती चरित्र उजमाल ॥ टेर ॥

चक्रेश्वरी भुवने जई भामिनी, बैठी रे जोवे बाट ।
एहवे प्रीतम आवत पेख्यो, अलग कियो उच्चाट ॥ २ ॥

दम्पती भोजन जिमी उठ्या, बैठा बेहु उछरंग ।
इतरे मेहलो बरसण लागो, मूसलधार अभंग ॥ ३ ॥

अल्प समय जल प्रबल भयो जिहां, आई नदी तट पूर ।
दम्पती बैठा वन देहरे, आथमियो तिहां सूर ॥ ४ ॥

संध्या कृत्य विधि सांचवो रे, बैठी सतो पिउ पास ।
धर्म भेद भिन्न २ करी भाख्या, ज्यूं मुनि इच्छुक पास ॥ ५ ॥

सुण प्रीतम प्रतिबोधियो जी, लीनी समकित सार ।
सविधि व्रत पहिलो ग्रह्यो रे, जाव जीव सुख कार ॥ ६ ॥

क्षेपक श्लोक

देवेषु देवस्तु निरज्जनो मे,
गुरौ गुरूर्यस्तु शमी दमी मे ।
धर्मेषु धर्मोऽस्तु, दयापरो मे ।
त्रीण्येव तत्त्वानि, भवे भवे मे ॥ १ ॥

सम्यक्त्वं यस्य जीवस्य, हस्ते चिन्तामणिर्भवेत् ।
कल्पवृक्षो गृहे यस्य, कामगवं नु गामिनि ॥ २ ॥

क्षेपक त्रिभगी छन्द

व्रत पहिले शिक्षा, त्रस नी रक्षा, करिवे तिक्षा, यत्न करी ।
अपराध विहीनं नहीं किहीनं, जीतब छीनं, क्रोधकरी ।
द्विकरण प्रमाणं, योग तिठाणं, हने न प्राणं, बुद्धिमती ।
भजु लाल कहानं, इह गुणवानं, तुरत लहानं, स्वर्गगती ॥ १ ॥

दोहा

हरिया तरू थी जीव का, तुझ साक्षे तजि अम्ब ।
सुण चलकी चक्रेश्वरी, करु परख अविलम्ब ॥ १ ॥

वरसि रह्यो वन सरित जल, उतर्या दम्पति जेह ।
घर आवि सुख में बिहुं, दिवस बितायो तेह ॥ २ ॥

ढाल नवमी (तर्ज- सुमति जिनेश्वर साहिबाजी)

प्राते प्रीतम वन में जई जी, कीधी मेहनत अनपार ।
पिण शुष्क तरु नहीं पामियो जी, फिर आयो आगार ॥ १ ॥

नियम शुद्ध पालज्यो इम जग वासी नर नार ॥टेर॥

भूखा सूता दम्पती जी, फेर गयो वन मांय ।
दिवस सात इम बीतिया, पिण शुष्क तरु नहीं पाय ॥ २ ॥

तो पिण मन नहीं म्लानता जी, नहीं भूख नो सोच ।
चित दृढ लखि चक्रेश्वरी जी, प्रसन्न थई आलोच ॥ ३ ॥

सवैया-तेबीस अक्षरीय

भूख तो भ्रष्ट करे कुलवान कूं, भूख घरोघर भीख मंगावे ।
नीच की चाकरी भूख करावत, निर्मल वंश कु मैल लगावे ।
भूख विदेश में खूब फिरावत, राव रू रंक अनाथ कहावे ।
भूख समी नहि कुदशा अन्य जू, भूख पापिणी अकृत्य करावे ॥

पुनः ढाल ऊपर वाली

मनुष्य जन्म सफलो कियोजी, व्रत पाली खंग धार ।
देवी उसे सुखी थायवा, सुणो करे तेह प्रकार ॥ ४ ॥

मलयागिरि थी बावनो जी, शुष्क अने निर्जीव ।
आण्यो तरू देवी इते जी, आव्यो सती नो पीव ॥ ५ ॥

देख काष्ट प्रमुदित थयोजी, काठ लघु इक डार ।
फाड़ तोड़ मोलि करी जी, बेचण चल्यो बजार ॥ ६ ॥

दोहा

कन्दोई हाटे बेचि ने, नाख्यो कोठे भार ।
सीधो भोजन लेई घरे, पिउ आयो तिणवार ॥ १ ॥

भामिनि भोजन जीमिये, करस्यूं अठाई पूर ।
पति जीमाई प्रेम युत, बैठी आय हजूर ॥ २ ॥

ढाल दसमीं (तर्ज- धन्य सीमन्धर स्वामीजी)

गेहिनी कांगसी कर रही, प्रीतम ना सिर केश-ललना ।
सुलझाता आई भली, चन्दन गंध विशेष-ललना ॥ १ ॥

बुद्धि बड़ी संसार में, सिद्ध करे सहु काज-ललना ।
बुद्धिमान टले विपत थी, पावे सुख नो राज-ललना ॥टेर॥

प्रमदा पूछे आज नो, किहां नाख्यो भार-ललना ।
भोजन भामिनी पामियो, कन्दोई हाथ मंझार-ललना ॥ २ ॥

आखे अर्धांगी आदरे, हूँ चालीस्यूं तुम लार-ललना ॥
ठाम धणी मो बताय द्यो,आणीस्यूं पाछो भार-ललना ॥ ३ ॥

धव प्रेरित जन पे गई, नरम की बोली वाम-ललना ।
योग्य मूल्य मोलि बेचने, देवस्यूं भोजन दाम-ललना ॥ ४ ॥

श्लोक (क्षेपक)

जिह्वाग्रे वर्तते लक्ष्मी, जिह्वाग्रे च सरस्वती ।
जिह्वाग्रे बन्धनं मृत्युः, जिह्वाग्रे परमं पदम् ॥ १ ॥

छप्पय

जीभ भोग अरु जोग, जीभ सब रोग बढावे ।
जीभ करे उद्योग, जीभ लै कैद करावे ॥
जीभ स्वर्ग ले जाय, जीभ या नरक दिखावे ।
जीभ मिलावे राम, जीभ सब देह धरावे ॥
ले जीभ ओठ एकत्र करी, वाट सिहारे तौलिये ।
बैताल कहे विक्रम सुनो, जीभ संभारि बोलिये ॥१॥

पुनः ढाल ऊपर वाली

तिण उत्तर कृपया दियो, करो जिम इच्छाचार-ललना ।
शीश उठाई घर धरी, खण्ड ले आई बाजार-ललना ॥ ५ ॥

गंधी हाठे बेचियो, सम दियो सोवन ताम-ललना ।
तेहना सर्राफ थी दाम ले, दीना भोजन दाम-ललना ॥ ६ ॥

वस्त्राभूषण कुछ लिया, गुड, शक्कर, घृत, तेल-ललना ।
अन्नादिक सहु संग्रही, मेल्यो भोजन मेल-ललना ॥ ७ ॥

दोहा

प्रातः भोजन बहु करी, दीन दुखी सन्तोष ।
पति जीमाई प्रथम पुनि, सती कियो तन पोष ॥ १ ॥

पारणे दिन दम्पति बिहूँ धर्म करण रह्या गेह ।
हिवे सुणो पिंडपाल नो, कृत्य सुभग फल जेह ॥ २ ॥

ढाल ग्याहरमी (तर्ज—खड़का की)

प्रातः ही प्रीतम उठी वन हालियो,
कर रह्यो खण्ड तरु ना हुलासे ।
एहवे हाँपतो अति अकुलावतो,
भागतो नाग आई उभो पासे ॥ १ ॥

सुणो हो वृद्ध बाल जे तरुणता जेम ने,
चरित्र पिंडपाल उजमाल चित्ते ।
भाव थी जे अनुकरण कर से,
तसु थायसे थिर घर लच्छी नित्ते ॥टेर॥

दीर्घ तन, लोचन रक्त, मसी वर्णनो,
म्लान मुख थयो मानु एम चावे ।
राख तू राख महा भाग मुझने,
हिवे दुष्ट मुझ मारिबा पूठ आवे ॥ २ ॥

दीन मुख देखी दया उपनी तसु परी,
निडर हो शिथिल मुख बांह कीधो ।
बाड दो बांहे बीच घुण्डी सेंठी जड़ी,
पुनि तरू छेदन लागो सीधो ॥ ३ ॥

त्वरित गति हालतो, बाट निहालतो,
खोजतो पन्नग रिपु तिहां आयो ।
सेन करि सूचवे, वचन बदि पूछवे,
आवियो उरग कहे कित सिधायो ॥ ४ ॥

एम वाणी तसु सांभली सो कहे,
छांड कुकर्म किम थाय सुखियो ।
जाण दे अनिलभक्षी बिल वासी को,
ले तरु कनक सम था तू सुखियो ॥ ५ ॥

दोहा

प्यारी पुत्री डंक दे, भाग आयो तुझ पास ।
किमहि न तजूं तसु मारस्यूं, तू मत कर व्यर्थ प्रयास ॥ १ ॥

(पुन. ढाल ऊपर वाली)

शरण मोरे सही, क्यूंहि देस्यूं नहीं,
जब लगी प्राण मुझ पिंड मांही ।
एम दृढ भाव उच्छाह युत निडर वच,
सांभली सुरी प्रसन्न थाही ॥ ६ ॥

दोहा

घस, छेदन, तप, मार करी, कनक परख जिम होत ।
त्याग, शील गुण कर्म ते, नर नी करिये कोत ॥ १ ॥

हद करूणा, धन धीरता, धन निवहो कृत नेम ।
सत्य दया दिल इहां लखि, गुण स्तवे सुरी नर तेम ॥ २ ॥

पाछल प्रिया गुण सुन्दरी, बहु परी लखि विलम्ब ।
गज गमनी सी चालती, आवी मन्दिर अम्ब ॥ ३ ॥

विरही जिम विलखे वदन, आतुर निरखण नाह ।
तिण तरू पे उभी चिहुं, पेरवे प्रीतम राह ॥ ४ ॥

ढाल बारहमी (तर्ज— हूं किम कर दिन काढू'गी०)

वाट जोवतां बार लगी बहु, नयणां ढलक्यो नीर ।
हिवे छिन विरहो पिउ न खमाये, वही लाओ मुझ तीर ॥ १ ॥

हूँ किम कर दिन काढूँगी हो, अहो नणदी रा वीर ॥ टेर ॥

के छलियो कोई दानव मानव, के कोई बात विपरीत ।
काठो हियो करी चाली जोवण, विपिन में होय अभीत ॥ २ ॥

उरे परे सगले फिर सोध्यो, सरला दीधा साद ।
किहाँ प्रीतम संचार न पाम्यो, वधियो मन विखवाद ॥ ३ ॥

होय निरासी पाछी तरू पे, आवी जोवे ताम ।
पिऊ न पेख्यो डब-२ नयणे, डुसकती बोले वाम ॥ ४ ॥

मात तात तज नाथ हाथ ग्रही, रही अर्धांगी होय ।
इण बन में अबला विलपातां, भलो न कहिसे कोय ॥ ५ ॥

एहवे एक तरुणी तिहां आवी, दीन मुखे कहे ताम ।
तुम पिऊ तन चिंता बस वन,गो सिंह हण्यो सुण वाम ॥ ६ ॥

धिक् तुझ सुन्दरी सुन्दरता ने, मुखे असमंजस एम ।
कहितां लाज न को तुम आवे, मुझ पति तनु छे क्षेम ॥ ७ ॥

भावी भाव टले नहीं किम ही, करतां कोटि प्रयास ।
होतब जेहवो हुवो हरिणाक्षी, तज अब तेह नी आश ॥ ८ ॥

दोहा

तुझ पिउ कहे कित देवता, प्रेम परिखवा मोय ।
सती कहे छिपिया किहूँ, अवश्य हि मिलसे मोय ॥ १ ॥

मुग्धे तुझ मालूम बिना, कूड़ कथे किण हेत ।
प्रथमहि तिण गट है तसु, पेखि आव निज नेत ॥ २ ॥

ढाल तेरहमी (तर्ज—कर्म परीक्षा करण कुंवर)

हिवेइम निसुणी विससमी रे, विलख बदन भई वाम ।
चाली त्यां थी प्रीतम पेखवा रे, तरुणी कथित तिण ठाम ॥१॥

इम गुण सुन्दरी, दुःख भर विलविले रे ॥ टेर ॥

सिंह विलूर्यो अध भखियो पड्यो रे,पेख्यो पति निज जाम ।
अइ अइ दुष्ट एह कीधु किस्यूं रे, कही मुर्च्छित भइ ताम ॥ २ ॥

थइ सचेतन बले सती विलविले रे, हा प्रीतम गुणधार ।
हो मुझ प्यारा प्राणेश्वर बिना रे, स्यूं गति अबला नार ॥ ३ ॥

कोदिन जनक ना पद जइ प्रणमिस्यूं रे, ग्रही वर सुख नी रास ।
ओलखास्यूं भल कर्म कथा सहू रे, लहीस्यूं बले स्याबास ॥ ४ ॥

दोहा

इक गैया की लात में, मनुज मनोरथ जेम ।
विफल भया तिम ही इहां, सती कहे भई तेम ॥ १ ॥

(पुनः ढाल ऊपर वाली)

सांचो थासूं सहू जन पेखतां रे, बध से सहु जिन धर्म ।
कूप छाये जिम मन में रह्या रे, वाह-२ गति तुझ कर्म ॥ ५ ॥

परभव बांध्या कर्म ए चीकणा रे, जीव विमासी जोय।
रोया राज न को दिये रे, सुख दुख सरज्या मोय ॥ ६ ॥

ढाल चौदहमी (तर्ज–महलां मे बैठी राणी)

बैठी गुण सुन्दरि पूर्व भव तणां, चिंतवे निज कर्म कठोर।
हंस हंस बांध्या ते इण जीवड़ो, उदय भये दुःख घोर ॥ १ ॥

सुणज्यो भवि प्राणो, कुकृत कर कूड़ा करम न संचिये ॥ टेर ॥

गाय बिछोहा दीधा बाछड़ा, मारी जूं ने बलि लीख।
माला तोड्या बहुपंखी जीव ना, लोपी शियल तणी लीक ॥ २ ॥

ताता जल मांही आलस से ऊरीया, अण सोया बली अन्न।
गारा गोबर कर जाला पाड़िया, नहीं कीना जीव जतन्न ॥ ३ ॥

थापण तो दाबी हांसी पार की, बलि द्रव्य लिया करी द्रोह।
लूटी कोसी धन लिया पार का, कीधा पंचेन्द्रिय लोह ॥ ४ ॥

रे मन संच्या ते पातिक गत भवे, उदय आया वही आज।
समता रस साधी व्याधी कर्म नी, टारी सुधारूं निजकाज ॥ ५ ॥

दोहा

एम विचारत सति हिये, आयो तब कछु भान।
पिउ जोवरण मिस विपिन में, बहुरि लख्यो एह थान ॥ १ ॥

तब प्रीतम स्व नवि हुंतो, अब स्यूं ? एह विचार।
सुर माया निश्चय जँची, सही जीवित भरतार ॥ २ ॥

शशी सतेजे एहवे, ऊगंत थयो उजास।
हिवे निसुणो सति किम करे, प्रीतम मिलन प्रयास ॥ ३ ॥

ढाल पन्द्रहमी (तर्ज— भमरा की)

भगवती भवने भामिनी, आई चित्त उदास।
अति साहस धरि एहवो, लीधो अभिग्रह खास ॥ १ ॥

हिवे मुझ शरणो धर्मनो ॥ टेर ॥

रहणो घर पिउ पेखियां, नहीं तरे वैराग।
सागारी तेलो करी, बैठी ध्यान में लाग ॥ २ ॥

अष्टम भक्त नी अवधि में, अर्ध निशा रही आय।
दृढ जाणी देवी इसे, लागी करण उपाय ॥ ३ ॥

आदि जिनन्द शासन सुरी, चक्रेश्वरी जगदम्ब।
महर करी मुझ धवतणी, दीजे खबर अविलम्ब ॥ ४ ॥

वसन भूषण बहु अंग सजो, दिव्याकृति तनु धार।
सुगड़ माणस संगे सुरी, प्रकट भई तिण वार ॥ ५ ॥

भद्रे ! सुण कहे भगवती, तुझ दुख थी हूँ दौड़।
आवी छूं दया देखि ने, मान वचन हठ छोड़ ॥ ६ ॥

सुण गुण सुन्दर गहकती, नमी सुरी चरणार।
मात महर कर मुझ भणी, दीजे भल भरतार ॥ ७ ॥

दोहा

वनिते ! सुण देवी वदे, पति पहुंतो परलोक।
मैं क्या पिण खुद इन्द्र तसु, नहीं जीवावण जोग ॥ १ ॥

तिण कारण तुमने कहूं, एह भलो भरतार।
आप्यो छे तसु आदरी, सफल करहुं जमवार ॥ २ ॥

ढाल सोलहमी (तर्ज—एक दिवस रूकमणि हरि साथे)

गुण सुन्दरी शीयल गुण रांची, मांची प्रीतम प्यार जी ।
मन गमता मृदु वयरो वनिता, भाखे करिये विचार जी ॥ १ ॥

जनक जनित जोडी जे जननी, कुलवंती नहीं छंडे जी ।
पुण्य मिल्यो तेह प्रीतम पारस, चरण शरण रहो तंडे जी ॥ २ ॥

मातेश्वरी मुझ सिर मया कर, कहूं अछूं कर-जोड़ी जी ।
दे दर्शन देह पावन कीनो, पूर्यो सहु मन कोड़ी जी ॥ ३ ॥

सिर कर रा खिसूं सुभगे ! सुरा, अन्न धन आरती हरसूं जी ।
मान वचन मुझ मानिनी, एह वर आदरी कही ते करस्यूं जी ॥ ४ ॥

सुण भाखे सती पर नर स्वप्ने, नवी बंछूँ क्यूंइ माता जी ।
सीप चातक पुनि सती मन इच्छा, एक आश अखियाता जी ॥ ५ ॥

मान वचन हठ छोड हठीली, सती कहे सुण अम्बा जी ।
सती भरगी इम सीख मात दे, मुझ मन एह अचम्भा जी ॥ ६ ॥

सुख दुख सर्ज्या जे मुझ हुआ, अधम काज करे अधमी जी ।
जीव जड़ी होय हार वल्लभ जी, क्यूँ हि न तजसूं कद भी जी ॥७॥

दोहा

गैया जिम इक विप्र वर, भरपाई सहु भक्ति ।
तिम ही धापी तुझ महर थी, अवर न चाहूं शक्ति ॥ १ ॥

एहने आघो निज गृहे, मेलि पधारो आप ।
एही चहूँ मुख यों कहीं, ह्वै बैठी चुप चाप ॥ २ ॥

ढाल सतरमी (तर्ज—दान उलट चित दीजिये•)

वयण सुणी वनिता तणां, कीधो चक्रेश्वरी कोप रे।
निर्लज पापिणी तू ही हमारो, कीनो हुकम नो लोप रे॥ १॥

गुणसुन्दरी गुण सांभलो, भवि आणी मन भावो रे॥टेर॥

बड़ बड़कर बोले बुरी, सुरी भई विकराल रे।
गुण सुन्दरी तनु झाली ने, दीनो गगने उछाल रे॥ २॥

झेली तीखा तीरशूल पे, विखसा वदे मुख वाय रे।
अाण्यो ते प्रीतम आदरो, मृत पिउ आश मुकाय रे॥ ३॥

हठ तज मुझ कही मानिये, भों भद्रे ! भणुं सार रे।
विरची बाघण सी अछूं, जीव काया करूं न्यारा रे॥ ४॥

दोहा

विविध वचन अमरी तणां, सुण्यां सती श्रवणेह।
अचल रही अचलेश जिम, भाखे वलि वयणेह॥ १॥

मृतिका गोलक कनक जिम, जानहुं मोरे भाव।
तुम थावो अगनी समी, करो जिम तुम रा भाव॥ २॥

सुण सूरी रोसे चढी, सिंह सर्पादि अनेक।
उपसर्ग दीधा आकरा, पिण न तजी सती टेक॥ ३॥

मन वचन कर्मे करी, वही सती ना भाव।
अवधि ज्ञान ओलख सुरी, बोली लखि प्रस्ताव॥ ४॥

अजहुं मान सहु भल थसे, कछु नहीं बिगड्यो हाल।
नहिं तो निश्चय जाणिये, आयो तुमरो काल॥ ५॥

ढाल अठारमीं (तर्ज—भवदेव जागी मोहनी)

गुण सुन्दर धीरज धरी, मुखे भाखे हो अमरी सुण बात ।
तुम कुलपति परभव गया, वर बीजो हो ते मोही सीखात ॥ १ ॥

धन–धन सती गुण सुन्दरी ॥ टेर ॥

असरीखे गुण नहीं बधे, सती दूती हो किम रहसे रंग ।
भले भला मिलिया भला, रहे प्रीती हो, जग माही अभंग ॥ २ ॥

मरणो भल करणो नहीं, वर बीजो हो किम ही इण काय ।
के शरणो संयम तणो, ले तरणो हो डरणो अब नांय ॥ ३ ॥

शियल खंडी अन्य पुरुष थी, प्रीति मंडी हो, कुण होवे जग भंड ।
सुख दुख पिउ संगे सही, मुझ मानो हो, यह वयण अखंड ॥ ४ ॥

बहु परी परखी सती भणी, मन हरख्या हो प्रणम्या सुरी पाय ।
एक वृतान्त थयो तीसे, नर देवी हो बिहुं नजर न आय ॥ ५ ॥

के यह देव माया थई, स्वप्नान्तर हो, विस्मय भइ बाल ।
एतले प्रकटयो नर भलो, गुण गिरवो हो बलो रूप रसाल ॥ ६ ॥

सुण सुन्दरी मुझ वारता, मुझ सेथी हो तू भय मत आण ।
थे परण्यो ते हूं सही, पति थाँरो हो दूजो मती जाण ॥ ७ ॥

सती कहे मानूं नहीं, मुझदाखो हो बीतक अवदात ।
सुणी भाखे सुरी लगे, जे हुतो हो सहु गुप्त विख्यात ॥ ८ ॥

दोहा

भद्रे ! भरम मन मति रखे, अवर न पति तुझ कोय ।
संकट सही शियले रही, तुम सी दुर्लभ जोय ॥ १ ॥

दिव्या भूषण अंग धरी, सुरी आवी तत्कार ।
धन्य २ हो महासती, इम कहि नमि चरणार ॥ २ ॥

मैं दुख दीनो तुम भणी, ते अपराध खमाय ।
यह पति तुमरो ही अछे, सही मान मुझ वाय ॥ ३ ॥

गुप्त बात सब ही कही, पिण्डपाल तिणवार ।
हर्षित हो पति चरण में, पडी सती तत्कार ॥ ४ ॥

ढाल उन्नीसमी (तर्ज—भवदेव जागी मोहनी)

चक्रेश्वरी तूठी तदा कांई दीधो हो, वरदान उदार ।
सप्तम दिवसे होवसे, कांई थासे हो राजन सिरदार ॥ १ ॥

प्रबल पुण्य जग जाणिये ॥ टेर ॥

पोतनपुर भूपति तदा, कांई मरियो हो निस्संतति राय ।
सामन्त मंत्री मिल करी, मन सोचे हो किम काम सराय ॥ २ ॥

पटहस्ती सिणगार ने, सिर मुक्यो हो कुम्भ कलश उदार ।
पुष्प माल सूण्डे ठवी, तब चलियो हो करि मध्य बजार ॥ ३ ॥

पिण्डपाल कण्ठे ठवी, सिर मुक्यो हो कुम्भ कलश उदार ।
खमा २ सहु जन करे कांई फलियो हो पुण्य रूपी सहकार ॥ ४ ॥

पोतनपुर भूपति हुवो, जग छाजे हो "पृथ्वीपति" भूपाल ।
सुखे रहे दम्पति तिहाँ, नित करता हो जिन धर्म रसाल ॥ ५ ॥

सुण भामिनी मुझ वारता, जिन धर्मी हो कर सूं तुझ तात ।
मान उतारुं तेह तणो, जग राखूं हो एह बात विख्यात ॥ ६ ॥

दोहा

चतुरंगिणी सेना सजी, हय गय रथ बहु सार ।
सहु परिवारे परिवर्यो, पृथ्वीपति भूपाल ॥ १ ॥

ढाल बीसमीं (तर्ज- कोरो काजलियो)

भद्दिलपुर नृप आवियो, कोई बाहिर डेरा दीध ॥ १ ॥

श्रोता सुण लीज्यो, यो पुण्य प्रबन्ध रसाल, दिल में थुण लीज्यो ॥

अरी केहरी नृप पासे, कांई मोकलियो तब दूत ॥ श्रोता० ॥
पुत्री हमें परणाय दो, तो नहीं बिगाड़ूँ सूत ॥ श्रोता० २ ॥

दूत आय हाजिर हुवो, कोई बोले इण विध वाय ।
निज पुत्री परणाय दो थे, नहिं तो शान गमाय ॥ ३ ॥

क्रोधातुर भूपति थयो, कोई सुनी दूत मुख बोल ।
द्रुमक नो राजा थयो कोई खोलूं ढोल की पोल ॥ ४ ॥

चतुरंगिणी सेना सजी, नृप लड़ने हुवो तैयार ।
मंत्री मंडल आदि सहू, कांई समझावे भूपाल ॥ ५ ॥

एक न माने राजवी, कांई आयो सन्मुख चाल ।
समर भूमि दोनों खड़ा, कांई चमके बड़सी भाल ॥ ६ ॥

तूठी तब चक्रेश्वरी, दी षट् विद्या सुखकार ।
अवश्राणी ने रोहिणी, रणथंभी प्रज्ञा सार ॥ ७ ॥

नाग पाश विद्या भली, जग मोहिनी जगदाधार ।
आदि षट् विद्या दई, कोई पहुंची सुरी निज द्वार ॥ ८ ॥

स्थंभिनी विद्या योग थी, कोई थंभी सैन्य तिवार ।
नाग पाश बन्धन करी, कोई बांध लियो भूपार ॥ ९ ॥

निज स्थाने आण्यो तदा, कोई नृप चिन्तातुर थाय ।
सिह पिंजरा में दियो, अब जोर चले कछु नांय ॥१०॥

दोहा

बंधन खोलि भूपति तणा, बोले इण विध राय ।
गुन्हा माफ करिया तुम्हे, दो कन्या परणाय ॥ १ ॥

ढाल इक्कीसमी (तर्ज— पणिहारी की)

राय सुणी मन चिन्तवे — सुनो राजाजी—
मै कीधो काम अजोग — राजाजी ।
रंक भणी कन्या दिवी — सुनो राजाजी—
कुल में लगायो सोग — राजाजी ॥ १ ॥

हा ! पुत्री गुण सुन्दरी — कुल चन्दा ए—
हा ! मुझ मोहन बेल — चन्दा ए ।
कहां देखूं दीदार ने — कुल चन्दा ए—
हा ! मुझ कोमल केल — चन्दा ए ॥ २ ॥

कहां से ल्याऊं कन्यका — सुणो भूपतिजी—
बिगडी मान की तान — महीपतिजी ।
मै खोई गुण सुन्दरी — सुणो भूपतिजी—
सर्व गुणों की खान — महीपतिजी ॥ ३ ॥

मुझ वीतक नी वारता - सुणो राजाजी-
कहां तक भाखूं स्वाम - राजाजी।
मैं मति हीनो मानवी - सुणो राजाजी-
खोई सगली माम - राजाजी ॥ ४ ॥

गद् गद् हो भूपति वदे - सुणो राजाजी-
आमन दूमन गात - राजाजी।
ही लाखिणी लाडली - सुणो राजाजी-
मैं खोई अंग जात - राजाजी ॥ ५ ॥

मुझ लज्जा राखो तुम्हें - सुणो महीपतिजी-
हो तुम गुण री खान - महीपतिजी।
शरण पड्यो मैं आपके - सुणो महीपतिजी-
दीजिये जीतब दान - महीपतिजी ॥ ६ ॥

भूप भणे भोजन करो - सुणो भूपतिजी-
धीरजता मन ठाम - भूपतिजी।
गत वस्तु चिन्ता किसी - सुणो भूपतिजी-
सोचो तुम बुधवान - भूपतिजी ॥ ७ ॥

पतिव्रता पति हुकम से - सुणो श्रोताजी-
रसवती करी तैयार - श्रोताजी।
भूषण पहरी सती तदा - सुणो श्रोताजी-
आई करत झणकार - श्रोताजी ॥ ८ ॥

दोहा

देख भूप मन चिन्तवे, गुण सुन्दरि सम रूप ।
मैं तो रंक भणी दिवी, एह तो मोटा भूप ॥ १ ॥

सारीखी संसार मैं – केई मिले इक सार ।
गुण सुन्दर कन्या कहाँ – नृप मन करे विचार ॥ २ ॥

ढाल बाइसमी (तर्ज—मारवाड़ी मांढ)

तात तणे पग लाग ने रे – सन्मुख ऊभी आय ।
कर जोड़ी अरजी करे रे – जाणो छो के नांय ॥ १ ॥

हो जग कर्म ही कर्ता, कर्म ही हर्ता, लेवो पिताजी मान ॥ टेर ॥

आंखें आंसू नाखती रे – आखे भूप तिवार ।
अहो पुण्यवन्ती पुत्रिका थारो सफल हुवो जमवार ॥ २ ॥

प्रतिबोध्यो राजा तदा रे – लीनो समकित धार ।
छोड़ी मिथ्याकन्द ने कोई, लिया श्रावक व्रत बार ॥ ३ ॥

बहु आडम्बरे राजवी रे, आणी निज घर मांय ।
जामाता सन्तोष ने नृप सीख दिवी हरसाय ॥ ४ ॥

अरि केहरी निज पुत्र ने रे, राज भुलावण दीध ।
पोते संयम आदरी निज, आतम कारज सीध ॥ ५ ॥

पृथ्वीपति भूपाल के रे, थयो पुत्र गुणवान ।
शूरसेन मति आगलो कांई, शूरवीर गुण खान ॥ ६ ॥

धर्मघोष मुनि आविया रे, सुणी देशना भूप।
दम्पती मिल संयम ग्रही भल, कीधो काम अनूप ॥ ७॥

पहले कल्प में ऊपना रे, सुर सुख भोगवि सार।
महाविदेह शिव जावसे वो, एकल कर्म को टार ॥ ८॥

पूज्य नानक री परिषदा रे, दीपे जेम दिनेश ।
वीर धीर माधव मुनि लिछमन, हरख हीर मगनेश ॥ ९॥

तास शिष्य मुक्ता मुनि रे, गजमल महागुण खान।
विजय-विजय कियाकर्म ने, कोई केसर मुनि पुण्यवान ॥१०॥

तस पद पंकज रेणु मुनि रे, कीधी जोड़ रसाल।
श्रोता वक्ता के मन वरते, दिन २ मंगल माल ॥११॥

उगणीसौ गुण्यासिये रे, हरि दुर्ग नगर मझार।
फागुण की चौमासी ऊपरे, जोड करी सुखकार ॥१२॥

कथा अनुसारे मैं कही रे, हीनाधिक जो होय ।
ज्ञानी केरी साख से रे, मिथ्या दुष्कृत मोय ॥१३॥



काव्य-त्रिवेणी

(द्वितीय-धारा)

स्वाध्यायी संघ-संयोजना के आद्य संस्थापक, राजस्थान
केसरी, महामहिम, दीनदयालु, प्रवर्तक
पूज्य गुरुदेव श्री १००८ श्री

श्री पन्नालालजी महाराज साहब

"प्राज्ञ"

*

जीवन-परिचय

आपका जन्म विक्रम स० १६४५ की भाद्रपद शुक्ला ३ शनिवार को नागौर जिलान्तर्गत कितलसर (डगाना) ग्राम मे हुआ। आपके पिता का नाम श्री बालचन्दजी एवं माता का नाम श्री तुलसाबाईजी था। जन्म से आप मालाकार वश के थे अतः आप पर बगीचे को सीचने का उत्तरदायित्व जन्म से ही था। कितलसर के ठाकुर सा० के एव आपके दादाजी श्री गिरधारी-लालजी सा० के पारस्परिक विचार भेद के कारण आपके परिवार को कितलसर छोड़ना पड़ा। वहा से आप सपरिवार थावला आकर वस गये। जहा के निवासी सुश्रावक श्री जोरावरमलजी डूंगरवाल आपके पिताजी के वोहरा भी थे तथा सन्मित्र भी! आपत्ति के समय मित्र सरक्षण का आधार होता है। श्री डूगरवालजी ने भी आपके पिता आदि सबका आदर किया साथ ही कार्य क्षेत्र को प्रशस्त भी किया।

विक्रम सवत् १६५६ मे पूज्य गुरुदेव श्री मोतीलालजी म० सा० का चातुर्मास थांवला मे हुआ। वही से आपको जैन साधुओ के सम्पर्क मे आने का अवसर मिला। पूर्व के सस्कारो का उदय एव गुरूजनो की संयम साधना से प्रभावित होकर आपका मानस धर्माभिमुख बन गया। पिताजी यह नही चाहते थे किन्तु आपकी आत्मिक दृढता के सामने दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करनी पडी। विक्रम स० १६५७ का वैशाख मास! विचरते हुए आप कालू (आनन्दपुर) मारवाड़ पधारे। धर्म प्रिय सुश्रावक श्री सीतारामजी चन्दनमलजी सा० पाटनी ने गुरुदेव श्री से अर्ज की.— वैरागी जी की दीक्षा का लाभ हमे मिलना चाहिये, यह हमारी हार्दिक भावना है, प्रार्थना है और वही वैशाख शुक्ला ६ शनिवार को आपकी दीक्षा हो गई।

जसवन्तावाद मे प्रथम चातुर्मास का समापन कर आप अपने गुरुदेव श्री के साथ विचरते हुए अजमेर पधारे। पौष का महीना, हिमपात का मौसम उधर कृष्णा ११ को अचानक पूज्य गुरुदेव का स्वर्गवास हो गया। गुरुदेव श्री क्या चले गये मानो आपकी जीवन विकास की आशाओं पर हिमपात हो गया। पूज्य गुरुदेव श्री धूलचन्दजी म० सा० ने तत्काल आपको सभाला! आप भी

चतुर मालाकार थे। उद्यान के फूलों को विकसित करने में आप सिद्धहस्त कलाकार थे। पूज्य गुरुदेव श्री गजमलजी म० सा० व आपके सन्निध्य मे लघु मुनिजी का अध्ययन सुचारू चलने लगा। आगम, कर्म ग्रन्थ, व्याकरण, कोष, ज्योतिष, रमल आदि विद्याओं में आपने अच्छी योग्यता प्राप्त की।

अध्ययन के पश्चात जब से आपने प्रवचन करना प्रारंभ किया तब से ही धर्म के क्षेत्र स्वरूप समाज को देखा, उसमें सामाजिकों की व्यवस्था को देखा, समाज में व्याप्त कुरीतियो को भी देखा तो आपका मानस दया द्रवित हो गया। कुप्रथाओं की चक्की मे बुरी तरह पिसती मानव समाज को सम्बुद्ध किया। फलस्वरूप अनेक कुप्रथाओं का उस समय विरोध हुआ, विनाश भी हुआ। आपने स्थान स्थान पर वर्षों से चले आ रहे वैमनस्य, दल बन्दियो और फूट कलह की अग्नियों को भी शाति की अमृतवृष्टि से उपशान्त की। समाज में प्रेम सौहार्द एवं सहयोग की पावन त्रिवेणी प्रवाहित हो गयी। जिन २ स्थानों पर दलबन्दियां समाप्त की वे इस प्रकार है—

१. मसूदा – वि० सं १९८७ में महेश्वरियों के धड़े मिटाये।

२. कंवलियास – वि० स० १९९२ में जैन समाज के धडे मिटाये।

३. आगूंचा – वि० सं० १९९४ में जैन व वैष्णवों के धड़े मिटवाये।

४ बड़ी रीयां – वि. सं. १९९८ में माहेश्वरियो व स्वर्णकारों के धडे मिटाये।

५ नांदला – वि० सं० २००५ में माहेश्वरियों के धड़े मिटाये।

६ जालिया – वि० सं० २००५ में ब्राह्मणों के धडे मिटाये।

७. राताकोट – वि० सं० २०१२ में जैन व जाटों के धड़े मिटाये।

इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर दलबन्दियों को समाप्त कर एकता स्थापित की।

आपके करूणा मानस ने मानवों की वेदना ... तु पशुओं की वेदना को भी सुना, समझा और मिटाया। देव दे ... होने वाले जघन्यतम हिंस्र ताण्डवों को भी रोका। बलि बन्द ह ... नाम है।

१. कोलपुरो (मसूदा) – वि० सं० १९७२ में माताज ... ।

२. भिणाय – वि० सं० ... में एक हजा ... ।

३ घनाहेडा –
४. चावण्डिया(पुष्कर) – वि सं. १६८२ मे एक साथ तीनों जगह पर माता जी के भेंसा बलि बन्द ।
५. तिलोरा –

६ गुलाबपुरा – वि० स० १६८३ में बकरा बलिबन्द।

७ ,, – वि० सं० २००२ में १२५ गायों को अभयदान ।

८. धनोप – वि० सं० १६८४ में भेंसा बकरों की बलि बन्द ।

६. मसूदा – वि० स० १६८७ में जलाशयों पर पक्षियों व पशुओं की हिंसा बन्द ।

तत्कालीन शासक राजन्य वर्ग को भी आपने प्रतिबोध देकर हिसादि अनेक दुर्व्यसनो से दूर किया था। उन्हें जन सेवा का महत्व बताकर सेवा परायण बन या था। आपके प्रति अनन्य श्रद्धालु राजन्य वर्ग—

१ बनेडा नरेश, २ भिणाय राजाजी, ३. मसूदा राव सा, ४. रीयां (शेरसिंह) राव सहाव ५. बाघसूरी ठाकुर सहाब ६ गोविन्दगढ ठाकुर सहाब, ७. देवलिया कला ठाकुर सहाब, ८. शेरगढ़ ठाकुर सहाब, ६ मेडास ठाकुर सहाब, १०. पीही ठाकुर सहाब, ११. गोयला ठाकुर सा०, १२. बान्दनवाडा ठाकुर सहाब, १३. लाम्बा (कुण्ड का) ठाकुर सहाब, आदि आदि ।

स्थानकवासी जैन समाज में सर्व प्रथम स्वाध्याय का शखनाद फूंककर आपने श्रावक समाज मे स्वाध्याय के प्रति जागृति पैदा की। वि. स. १६६४ से ही आपने साधु साध्वी जी म० सा० के चातुर्मास से सचित क्षेत्रो मे धर्म-ध्यानार्थ श्रावको को पर्यूषण पर्व मे भेजने की प्रेरणा प्रारम्भ कर दी थी। उस समय श्रावक समाज की उर्वरा भूमि मे आपके द्वारा बोया यह कर्म का बीच आज अनेक स्वाध्यायी संघों के नाम से वट वृक्ष की भांति विस्तार को पा चुका है यह एक प्रमोद का विषय है। आपकी उपदिष्ट एव स्मृति निष्ट सस्थाओ के नाम—

१. व्यापारिक पाठशाला एव औषधालय गुलाबपुरा (स्थापना वि. सं १६७६)
२. जैन विद्यालय बिजयनगर (वि. सं. १६८३) बाद मे रूपान्तरित नारायण हाई स्कूल बिजयनगर (वि. सं. १६८६)

३. श्री श्वे स्था. जैन नानक श्रावक समिति विजयनगर (वि सं. १९९४)

४. श्री नानक जैन सहायक फण्ड बिजयनगर (वि. सं. १९९४)

५. श्री नानक जैन छात्रालय गुलाबपुरा (वि. सं. १९९५)

६ श्री जैन विद्यालय गुलाबपुरा (वि. स. १९९७) बाद मे रूपान्तरि श्री गांधी विद्यालय गुलाबपुरा (वि. सं. २००६)

७ श्री जैन विद्यालय केकड़ी (वि. सं. १९९८)

८ श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी सघ गुलाबपुरा (प्रारभ वि. सं. १९९४ ए स्थापना वि. स. २००७)

९. श्री जैन प्राज्ञ पुस्तक भण्डार भिनाय (वि. सं. २००७)

१०. श्री नानक जैन कन्या पाठशाला बिजयनगर (वि. सं २०१४)

--- स्मृति में संचालित ---

१. श्री प्राज्ञ महाविद्यालय विजयनगर (१२ अगस्त सन् १९७२ ई०)

२. श्री प्राज्ञ बाल मन्दिर बिजयनगर (२ नवम्बर सन् १९७६ ई०)

३. श्री प्राज्ञ मृगी रोग निवारक समिति-गुलाबपुरा (वि. स. २०३६)

चार रोगियों से प्रारम्भ यह सस्था आज २००० रोगियो को निशुल्क दव दे रही है और रोगी इस भयकर रोग से प्रायः मुक्ति पारहे हे।

आपका स्वर्गवास वि. सं २०२४ की माघ शुक्ला ५ (बसन्त पचमी शनिवार को बिजयनगर में हुआ।

आपके जीवन का विस्तृत व प्रमाणिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है जं श्री प्राज्ञ महाविद्यालय विजयनगर मे प्राप्त किया जा सकता है।



श्री प्राज्ञ गुरु स्तुति

शार्दूल विक्रीडित वृत्तम

प्राज्ञो ज्ञान–गुणाकरो विजयते,
प्राज्ञं मुनीशं श्रये ।
प्राज्ञेणाऽपि जिनागमः सुविततः,
प्राज्ञाय तस्मै नमः ।
प्राज्ञादाप्त उदात्तसूक्तिनिवहः,
प्राज्ञस्य शुभ्रं यशः ।
प्राज्ञे सन्ति विलक्षणा गुणगणाः,
भो प्राज्ञ ! मामुद्धर ।

— पद्यार्थ —



ज्ञान गुणों की खान, प्राज्ञ मुनि तेरी जय है,
सब मुनियों में महान, तुम्हारा ही आश्रय है।
जिन आगम विस्तार, आपने किया बहुत है,
नित्यमेव शतवार, वन्दना श्रद्धा युत है ।
श्रेष्ठ सूक्ति का संग्रह, गुरुवर पाया तुम से,
यश फैला सर्वत्र, आपका उज्ज्वल हिम से ।
सद्‌गुण के भण्डार, दीर्घद्रष्टा जो नामी,
करदे मम उद्धार, कहे 'वल्लभ' अनुगामी ।

३. श्री श्वे स्था. जैन नानक श्रावक समिति विजयनगर (वि सं. १९९४)

४. श्री नानक जैन सहायक फण्ड बिजयनगर (वि. सं. १९९४)

५. श्री नानक जैन छात्रालय गुलाबपुरा (वि. सं. १९९५)

६ श्री जैन विद्यालय गुलाबपुरा (वि. स. १९९७) बाद मे रूपान्तरित श्री गांधी विद्यालय गुलाबपुरा (वि. सं. २००६)

७ श्री जैन विद्यालय केकड़ी (वि. सं. १९९८)

८ श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा (प्रारभ वि. स. १९९४ ए स्थापना वि. स. २००७)

९. श्री जैन प्राज्ञ पुस्तक भण्डार भिनाय (वि. स. २००७)

१०. श्री नानक जैन कन्या पाठशाला बिजयनगर (वि. सं २०१४)

--- स्मृति में संचालित ---

१. श्री प्राज्ञ महाविद्यालय बिजयनगर (१२ अगस्त सन् १९७२ ई०)

२. श्री प्राज्ञ बाल मन्दिर बिजयनगर (२ नवम्बर सन् १९७६ ई०)

३. श्री प्राज्ञ मृगी रोग निवारक समिति-गुलाबपुरा (वि. स २०३६)

चार रोगियों से प्रारम्भ यह सस्था आज २००० रोगियो को निशुल्क दवा दे रही है और रोगी इस भयकर रोग से प्रायः मुक्ति पारहे हे ।

आपका स्वर्गवास वि. सं. २०२४ की माघ शुक्ला ५ (बसन्त पचमी) शनिवार को बिजयनगर में हुआ ।

आपके जीवन का विस्तृत व प्रमाणिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है जो श्री प्राज्ञ महाविद्यालय बिजयनगर से प्राप्त किया जा सकता है ।



श्री प्राज्ञ गुरु स्तुति

शार्दूल विक्रीडित वृत्तम

प्राज्ञो ज्ञान–गुणाकरो विजयते,
प्राज्ञं मुनीशं श्रये ।
प्राज्ञेणाऽपि जिनागमः सुवितत:,
प्राज्ञाय तस्मै नमः ।
प्राज्ञादाप्त उदात्तसूक्तिनिवहः,
प्राज्ञस्य शुभ्रं यशः ।
प्राज्ञे सन्ति विलक्षणा गुणगणाः,
भो प्राज्ञ ! मामुद्धर ।

— पद्यार्थ —



ज्ञान गुणों की खान, प्राज्ञ मुनि तेरी जय है,
सब मुनियों में महान, तुम्हारा ही आश्रय है।
जिन आगम विस्तार, आपने किया बहुत है,
नित्यमेव शतवार, वन्दना श्रद्धा युत है ।
श्रेष्ठ सूक्ति का संग्रह, गुरुवर पाया तुम से,
यश फैला सर्वत्र, आपका उज्ज्वल हिम से ।
सद्गुण के भण्डार, दीर्घद्रष्टा जो नामी,
करदे मम उद्धार, कहे 'वल्लभ' अनुगामी ।

— शुद्धि-पत्र —

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	६	अलूर	अवर
३५	३	लोन	लेना
३६	७	पेर	पर
४६	६	इस	इम
५०	७	नौत	मौत
५७	२६	अर्हनिश	अर्हनिश
६७	२६	मछवे	महवे
८३	१०	घयो	घणो
८३	१३	देख	देखा

कृपया:—काव्य त्रिवेणी (द्वितीय धारा) मे उपरिलिखित अशुद्धियो को शुद्ध कर पढने का प्रयास करावे ।

शांति-स्तवन

(तर्ज- आखिर नार पराई है)

मुझे भरोसा भारी है, शांति जिनन्द सुखकारी है ।। टेर ।।

हस्तिनापुर नगर ही छाजै, विश्वसेन तिहां राय बिराजै ।
राम ज्यूं न्याय करी जग गाजै, अचिरा दे महतारी है ।।शांति०१।।

जन्मते शांति २ बरताई, मृगी मार ने दूर हटाई ।
भक्तों को शांति सुखदाई, धन जननी जिन थांरी है ।।शांति० २।।

जो प्रभुजी को ध्यान जो ध्यावे, मनवांछित कारज सिद्ध थावे ।
शोक सन्ताप कबहुँ नहीं आवे, धारे जब इकतारी है ।।शांति०३।।

दीन दयाल दीन के स्वामी, कर कृपा मेटो मुझ खामी ।
मोक्ष दीजिये अन्तर्यामी, 'पन्नालाल' यह अर्ज गुजारी है ।।शां०४।।

शांति-स्तवन

(तर्ज- छोटा सा बलमा मोरे आगने में)

शांति जिनन्द भरतार, जो कि मैने धारा,
सेवूंगा मन वच काय, जो कि मैने धारा ।। टेर ।।

केशरिया प्राणेश हमारा, प्यारा प्राण समान ।।जो कि० १।।

लग्न लगी है तुम दर्शन की, कब देखूं दीदार ।।जो कि० २।।

मैं इकतारी तुम पै धारी, बार बार बलिहार ।।जो कि० ३।।

देव अनेरा जग में घनेरा, मुझ मन दाय न आय ।।जो कि० ४।।

संपत्ति दीज्यो विपत्ति हरिज्यो, तो सम लीज्यो बनाय ।।जो कि०५।।

अचिरानन्दन दुःख निकन्दन, वंदन जग जन सार ॥जो कि० ६॥

वर्ष पिच्याणवे मङ्गल माला, बक्षिज्यो सुख अनपार ॥जो कि०७॥

'प्राज्ञचन्द्र' तुम शरणे आयो, गायो दिल धरी प्यार ॥जो कि० ८॥

गणी नानक के सकल संघ में, वरते मंङ्गलाचार ॥जो कि० ९॥

नगर भीलवाड़े भक्त जनों की, करियो प्रभु रखवार ॥जो कि० १०॥

शांति-स्तवन

(तर्ज-मत भूलो कदा रे)

प्रभु शांति जिनन्द प्रभु शांति जिनन्द,
भव भव दीजिये परम आनन्द ॥ टेर ॥

अचिरानन्दन मोरी अर्ज सुणो,
सेवक को दीज्यो सुख घणो ॥प्रभु० १॥

शरण तिहांरी मैं आयो जिनेश,
मन वच काया का मेटो कलेश ॥प्रभु० २॥

अचल किरत जी री राखी हो लाज,
सेठ तनय अहि विष गयो भांज ॥प्रभु० ३॥

कुमुदचन्द्रजी रा सारिया काज,
अन्य मत्त बीच रहे सिंह जिम गाज ॥प्रभु० ४॥

मानतुङ्ग तुमे जपी जप माल,
जड़ पड़िया ताला तत्काल ॥प्रभु० ५॥

इम जिन भक्त तार्या अनपार,

मुझ विरियां किम लागी हो वार ॥प्रभु० ६॥

अधम उद्धारण विरद थी तार,

मुझ सम अधम न विश्व मझार ॥प्रभु० ७॥

नूतनपुर में मंगल माल,

पिच्यासी चौमासो रसाल ॥प्रभु० ८॥

"पन्नालाल" मुनि जिन गुण गाय,

दिन दिन सम्पत दीज्यो सवाय ॥प्रभु० ९॥



शांति--स्तवन

(तर्ज- ना छेड़ो गाली दूंगी रे)

प्रभु शांति जिनन्द भज लेना रे, तज देना सभी प्रपन्च ॥टेर॥

प्रभु स्वार्थ सिद्ध से आया, अचिरा कूंखे सुखदाया।

जनमत जग शांति कराया रे ॥तज० १॥

तब चौसठ इन्दर आया, प्रभु को मेरु शिखर नवराया।

इन्द्राण्यां मंगल गाया रे ॥तज० २॥

प्रभु चक्रव्रती पद भोगी, फिर ममता जग की त्यागी।

संजम लीनो वीतरागी रे ॥तज० ३॥

सब झूंठे यन्तर मन्तर, लुकमान और धन्वन्तर।

प्रभु नाम से मंगल माला रे ॥तज० ४॥

सब चिन्ता कष्ट पलावे, मनवांछित कारज थावे ।
नित्य शांति जिनन्द गुण गाना रे ॥तज० ५॥

यह 'पन्नालाल' की अर्जी, सुन लेना हे जिनवर जी ।
मुझे मोक्षनगर पहुँचाना रे ॥तज० ६॥



शांति--स्तवन

(तर्ज- तेरे पूजन को भगवान)

करने शांति सकल जहान, पधारे शांति जिनन्द भगवान ॥टेर॥

आये हस्तिनापुर नगर में, भूपति विश्वसेन के घर में ।
पुन्यवती अचिरा उर पुन्यवान ॥पधारे० १॥

ज्येष्ठ बदी तेरस की मझरात, जन्मिया जग जीवन विख्यात ।
सुरंगना नाचे दे दे तान ॥पधारे० २॥

कुमार्या मिल जुल मंगल गावे, शक्रेन्दर पन्च ही रूप बनावे ।
मेरुगिरि लाये श्री भगवान ॥पधारे० ३॥

इन्द्र सब मिलकर हर्ष भराये, प्रभु पे मंगल कलश ढुलाये ।
आनन्द धर कीना जन्म कल्याण ॥पधारे ४॥

जन्मते शांति सकल बरताई, मिरगी मार को दूर भगाई ।
हटाया मिथ्यातम अज्ञान ॥पधारे० ५॥

सूर्योदय शांति २ के जाप, जपतां मिटे सकल सन्ताप ।
मिलेगा मन इच्छित सुख आन ॥पधारे० ६॥

'प्राज्ञ मुनि' अर्जी एम कराय, जिनन्द मेरी नैया पार लगाय ।
सदा ही करियो प्रभु कल्याण ॥पधारे० ७॥

शांति--स्तवन

(तर्ज- पनजी मु डे बोल)

जग सुखकारी जी, श्री शांति जिनन्द सुणो अर्ज हमारीजी ।।टेर।।

पूर्व भव में राय मेघरथ, हुये श्रावक व्रतधारी जी ।
शरण परेवो राख स्वामी, दिल दया बिचारी जी ।। जग० १ ।।

स्वार्थ सिद्ध से चयव कर प्रभु जी, हस्तिनापुर में आया जी ।
विश्वसेन अचिरा के आंगन रंग बरसाया जी ।। जग० २ ।।

ज्येष्ठ बदी तेरस मझ राते, जन्में जगदाधारी जी ।
सयल देश में शांति करी, प्रभु मृगी निवारी जी ।। जग० ३ ।।

मंगल गावे कलश बंधावे, छप्पन कुमार्यां सारी जी ।
थत्था थई थई नृत्य करे, घुंघर घमकारी जी ।। जग० ४ ।।

चौसठ इन्द्र तब मिलकर प्रभु को, मेरु शिखर नवराया जी ।
इन्द्राण्यां मिल मधुर ध्वनि से, मंगल गाया जी ।।प्रभु० ५ ।।

माता अचिरा निरख लाल ने, मनमें हर्ष अपारी जी ।
मोहनी मूरत सोहनी सूरत, जाऊँ बलिहारी जी ।। जग० ६ ।।

अर्द्ध लाख वर्ष कुंवर राज्य फिर चक्रवती पद पाया जी ।
पच्चीस सहस शुद्ध संयम पाली प्रभु, मोक्ष सिधाया जी ।।जग०७।।

"पन्नालाल" की अर्जी ऐसी सुनियो अन्तर्यामी जी ।
जन्म मरण दुख मेट हमारा, दो शिव स्वामी जी ।।जग० ८।।

उगणीसे बय्यासी वर्षे, भीलवाड़ा सुखदायी जी ।
पूज्य नानक री परिषद् दिन दिन, बढ़ो सवाईजी ।।जग० ९।।

शान्ति - स्तवन

(तर्ज— थांरी मोह माया ने छोड़ ·· ····)

श्री शान्तिनाथ भगवान, अर्ज मेरी सुणज्यो २
प्रभु सङ्कट मोचन स्वामी, अभय पद दीज्यो ॥टेर॥

विश्वसेन तात सुखदाय, अचिरा दे मैया २
ज्येष्ठ वदि तेरस जन्मे शांति जिनैया ॥
सब मघवा मिलके मेरु, शिखर नवरैया २
इन्द्राण्यां सारी मिल झुल मङ्गल गैया ।
मिल बोले जय २ कार, असुर सुर नर ज्यो ॥प्रभु० १॥

जन्मत प्रभु ने शांति, शांति वरताई २
मुदित सहु नरनार आनन्द अधिकाई ।
चक्रीश्वर बन खट् खँड, राज कराई २
फिर लीनो संजम भार सार सुखदाई ॥
प्रभु तीरथ थाप्या च्यार, अरु गणधर ज्यो ॥प्रभु० २॥

श्री शांति प्रभु का स्मरण, करे नरनारी २
टले सकल जंजाल लच्छी अनपारी ।
ओऽम् शांति शांति का जाप, जपो सुखकारी २
ऊगतड़े दिनकार रटो हरवारी ।
पामे भवोदधि पार, परम पद लइज्यो ॥प्रभु० ३॥

दो हजार के चौमासे रंग छाया २
सदा वरते परमानन्द सन्त सुखदाया ।
भीलवाड़े के श्रावक, भक्त कहाया २
लीनो यश अनपार मंगल वरताया ॥
गुरु भक्ता गुणवानों का, विघ्न हरिज्यो ॥प्रभु० ४॥

श्री शांतिनाथ का जपे, जाप दिल चाया २
यश अमर बेल ज्यूं दिन २ बढ़े सवाया ।
यह विनती मेरी सुणिज्यो, अचिरा जाया २
"पन्नालाल" का सब अघ दूर भगाया ।।
श्री शांति प्रभुजी शरण सदा मुझ हुइज्यो ।।प्रभु० ५।।



शांति - स्तवन

साता कीज्यो जी शांति जिन मोरे नाथ ।। टेर ।।

अचिरानन्दन दुःख निकन्दन, भक्त जनों के हो दिल रन्जन ।
तुम सुमिरण जग विख्यात ।। शांति० १।।

तुम सुमिरण थी आनन्द थावे, निशदिन कमला केल करावे ।
दुःख दोहग टल जात ।।शांति० २।।

अवतरिया अचिरा उर स्वामी, सकल देश जन साता पामी ।
मृगी मार भगात ।। शांति० ३ ।।

आयो शरण तिहांरे स्वामी, भक्त की भीड़ हरो शिव गामी ।
तू ही मात तू ही तात ।। शांति० ४ ।।

राखी लाज अचल की स्वामी, सेठ तनय निर्विषता पामी ।
अब सुनिये नाथ मम बात ।। शांति० ५ ।।

गणी नानक की परिषद् सारी, खिली रहे जिम केशर क्यारी ।
रहे सदा विख्यात ।। शांति ६ ।।

हे प्रभो ! मेरी अर्ज सुणीजे, सेवक को सुख संपत्ति दीजे ।
'पन्नालाल' गुणगात ।। शांति० ७ ।।

शांति - स्तवन

शांति जिनेश्वर स्वामी, जग नायक अन्तर्यामी ।
अचिरानन्दन भक्तों के दुःख निकन्दन ॥
मोरे स्वामी, जग जीवन अन्तर्यामी ॥ टेर ॥

जन्मत जग शांति बरताई मृगी मार निवारी ।
प्रमुदित मन सब ही नरनारी, गावे गुण संसारी ॥ मोरे० १ ॥

मंगल गावे प्रभु हुलरावे, छप्पन कुमारियां सारी ।
थ था थई थई नृत्य करत है, पग घूंघर घमकारी ॥ मोरे० २ ॥

शक्रेन्द्र आया तिन विरिया, पन्च रूप लिये धारी ।
मेरु गिरी पे महोत्सव करी फिर गोद धरे महतारी ॥ मोरे० ३ ॥

खट् खण्ड भुक्ता सब गुण युक्ता, चक्रीश्वर पद पामी ।
सकल रिद्धि तज संयम लेई प्रभु हुये तीर्थङ्कर नामी ॥ मोरे० ४ ॥

शांति २ का सुमिरण करता वांछित सुख प्रगटावे ।
विधि सहित आयंबिल युत गुणता सकल रोग टल जावे ॥ ५ ॥

लाज रखो शरणागत केरी, यही अर्ज हमारी ।
तारक विरद विचार स्वामीजी, जन्म मरण दो टारी ॥ मोरे० ६ ॥

रहे सदा दिनकर ज्यूं स्वामी गणी नानक री गादी ।
मङ्गल माल रहे निशिवासर टल जावे सकल उपाधी ॥ मोरे० ७ ॥

वर्ष पिच्याणवे नगर भीलवाड़े, सेखे काल सुखकारी ।
'प्राज्ञ मुनि' कर जोड़ वीनवे सुनिये जगदाधारी ॥ मोरे० ८ ॥

नगर भीलवाड़े भक्त जनों की, करिये प्रभु रखवारी ।
गुरु नानक की पुष्पवाटिका खिली रहे केशर क्यारी ॥ मोरे० ९ ॥

卐 जिन वाणी स्तवन 卐

(तर्ज—ख्याल की)

हे जिनवाणी भवानी, महर करीजे मोटी ईश्वरी ।। टेर ।।

जिन मुख से थी प्रगटी माता, झेली श्री गणधार ।
शुद्ध तन मन से ध्याइयां सरे करदे बेड़ा पार ।। १ ।।

ग्यारा अँग उपांग ही बारा, चवदह पूर्व विस्तार ।
दृष्टिवाद इत्यादिक सगला, है थारो परिवार ।। २ ।।

सिन्धु सम संसार में सरे, जन्म मरण जल जान ।
जिनवाणी नौका सम दाखी, अनन्त गुणां की खान ।। ३ ।।

मिथ्यातम जग में भर्यो सरे, खबर पड़े नहीं काय ।
जिनवाणी सम भानु उगिया, मिथ्या भ्रम हटाय ।। ४ ।।

इण दुखमी आरा के मांही, अवरन को आधार ।
जिनवाणी धारो भव्य प्राणी, भव भव सुखकार ।। ५ ।।

चतुर संघ में मँगल माला, सिद्ध होय सब काज ।
जिनवाणी सुखदानी माता, रखो हमारी लाज ।। ६ ।।

पंचम अंगे प्रथम शतक में, इण विध वाणी दाखी ।
विधि सहित ज्यों जाप जपे तो, अगम्य बात दे भाखी ।।७।।

भूत प्रेत अरु डायन शायन, सब ही अलग नसाय ।
गुरु मुख से थी धारी गुणतां, विघ्न सहु टर जाय ।। ८ ।।

जिनवाणी प्रताप सु सरे, जन्म मरण मिट जाय ।
*तीस च्यार को टाली गुणतां, मन वांछित फल पाय ।। ९ ।।

---

* चौतीस अस्वाध्याय टालकर शास्त्र पढने से ।

गुरु मुख से थी सुणी मैं महिमा, कहां तक करू बयान ।
अल्पमति किंचित गुण गाया, अर्ज सुनो मुझ माय ॥१०॥

सम्वत् उन्नीसो बय्यासी वर्षे, भाणगढ़ है शहर ।
"प्राज्ञ" कहे जिनवाणी भवानी, कीजिये मुझ पे महर ॥११॥



卐 प्रभु स्तवन 卐

(तर्ज— दयामय ऐसी मति हो जाय)

जिनन्द मोरी, नैया लगादो पार ।
बीच समुद्र में जहाज पड़ी है, कर कृपा पार उतार ॥ टेर ॥

अलूर न जांचू बोलू सांचु, सब ही देव असार ।
शरण तिहारो शांति जिनन्द अब, भवसागर थी तार ॥ जिन० १ ॥

पूर्व भव में शरण परेवो, राखियो निज चरणार ।
मेरी विरीया आज नाथजी ! केम लगावो वार ॥ जिनन्द मोरी० २ ॥

रिद्धि सिद्धि अरु मङ्गल माला, चतुर सँघ सुखकार ।
चातुर्मासे आनन्द वरते, अहो शांति करतार ॥ जिनन्द मोरी० ३ ॥

पूज्य नानक की सगरी परिषदा, सुखी रहे हरबार ।
भीलवाड़े की धर्म भूमि में,वरते सुख अनपार ॥ जिनन्द मोरी० ४ ॥



卐 प्रभु स्तवन 卐

(तर्ज— पूर्ववत)

प्रभो ! मेरी नैया करदो पार
पड़ी नांव मझधर, भँवर से जल्दी आय उबार ॥ टेर ॥

सूदर्शन की शूली सिंहासन, केम बनायो नाथ ।
मानतुङ्ग अरु कुमुदचन्द्र को, क्यों कर दीनो साथ ॥ प्रभु० १ ॥

अचल किरत की रखी लाज तुम निर्विष कीध कुमार ।
श्रीमती सती के सहायक होके, कृष्ण भुजंग को हार ॥ प्रभु० २ ॥

जो तारो तुम भक्तजनों को इनमें क्या बलिहार ।
वीतरागी वन राग हुँ करना शोभे नांय लिगार ॥ प्रभु० ३ ॥

दीन दयाल को विरद सुनी के, आयो तुम दरबार ।
मो सम दीन नहीं भूतल पे, तार तार प्रभु तार ॥ प्रभु० ४ ॥

ऋषि मुनियों से जाना मैने, अधम उद्धारन हार ।
जान अधर्मी मो कूं तारो, थांरो विरद विचार ॥ प्रभु० ५ ॥

"सोहन" को सोवन बनवादो, कर्म मैल दो टार ।
निजातम में रमन करूं मैं, नाश हो भेद विकार ॥ प्रभु० ६ ॥



卐 प्रभु स्तवन 卐

तारो तारो दीनानाथ जी ॥ टेर ॥

अनन्त भव्य को तारिया, मुझ विरिया थई किम देर प्रभु जी वो ।
क्या मैं भव्य अछू नहीं, ते थी ना सुनी मुझ टेर, प्रभु जी वो ॥ तारो० ।

जिनवाणी फरमान से, भव्याभव्य ना भेद, प्रभुजी वो ।
तिन थी तो में भव्य अछु, फिर तारन किम करी जेज, प्रभु०। तारो०२।

तारत २ मो समय, विश्रामो लियो स्वाम, प्रभुजी वो ।
अनन्त शक्ति धारक प्रभु, फिर थाकन को स्यू काम, प्रभु०। तारो०३।

अवगुन युत मम जानिके, तारण ना कियो मन, प्रभुजी वो ।
पतित उद्धारन फिर तुमे, कहो किम कहे छेजन हो शांति जिन ॥४॥

तिरने वारे को तारवे, इनमें काह नवीन, प्रभुजी वो ।
अनतरवे को तारवे, वे हैं तारक प्रवीण, शांति जिन ॥ तारो० ॥५॥

छोरु कुछोरु होत है, मात न थात कुमात, प्रभुजी वो ।
मायत विरद विचार के, तार २ जगन्नाथ, शांति जिन ॥ तारो० ६ ॥

चूक चाकर में होत है, ठाकुर लेत निभाय, प्रभुजी वो ।
या विधि जानि मुझ तणी, नैया पार लगाय, शांति जिन ॥ ७ ॥

जो तारण मरजी नहीं, तो सुनो इक अरदास, प्रभुजी वो ।
दास करी रखो पास में, ज्यूं मिटे मरण की त्रास, शांति जिन ॥ प्रभु०८॥

'प्राज्ञ' भणी प्रभु दीजिये, अनन्त प्राज्ञ प्रकाश, प्रभुजी वो ।
लोकालोक स्वरूप को, पेखत रहूँ तुम पास ॥ प्रभु० ९ ॥

दोय सहस तिथि वर्ष में, दीपमालिका दिन, प्रभुजी वो ।
तारक पत्रिका या कही, सकल भव्य सुखदेन ॥ प्रभु १० ॥

~

卐 प्रभु स्तवन 卐

मुक्ति को पन्थ बतादो मोरे स्वामीजी हो ।। टेर ।।

लख चोरासी में भ्रमत फिरा हुं,
अब प्रभु चरण लगादो मोरे स्वामीजी हो ।। मुक्ति० १ ।।

समकित आवरण लुम रह्यो है,
जिनवाणी री जड़िया लगादो मोरे स्वामीजी हो ।। मुक्ति० २।।

बहुत काल से प्यास लगी है,
अमी रस प्याला पिलादो मोरे स्वामीजी हो ।। मुक्ति० ३ ।।

मोह नींद में सोया हुआ हूँ,
ज्ञान जड़ी से जगादो मोरे स्वामीजी हो ।। मुक्ति० ४ ।।

कर्म अनादि से संग लगे हैं,
कर कृपा इनको भगादो मोरे स्वामीजी हो ।। मुक्ति० ५ ।।

"पन्नालाल" की यही अरज है,
ज्योति में ज्योति मिलादो मोरे स्वामीजी हो ।

कर्मो का फन्द छुड़ादो मोरे स्वामीजी हो ।। मुक्ति० ६ ।।

卐 चातुर्मास स्तवन 卐

(तर्ज— देश को किया रे खराब)

लगा है चातुर्मास, धर्म करो सब भाई ।। लगा० टेर ।।

रँग रँगीला लगा चौमासा, सब जग सब्जी छाई ।
उमट घूमट घन गर्जत नभ में, इन्द्र सवारी आई ।।
देखलो प्रत्यक्ष आज ।। धर्म० १ ।।

चार मास के अन्दर भैय्या, कृष्ण सभा नहीं करते।
राजादिक प्रपन्च को तज के ध्यान जिनेश्वर धरते ॥
धन्य धन है यदुराय ॥ धर्म० २ ॥

जीवों की करुणा के खातिर, साधु सती नहीं फिरते।
तेरह बोल की देख जोगाई, चोमासा ठा देते ॥
भव्य को सुनाते ज्ञान ॥ धर्म० ३ ॥

बेइन्द्रियादिक जीव घनेरा, यत्न करो तुम भाई।
हरी का खाना, निशि का भोजन,त्याग करो सुख चाई ॥
जिन्हों से होय कल्याण ॥ धर्म० ४ ॥

दाल साक भाजी के मांई, जीव बहुत उपजाई।
मेरी बहना मानों कहना, दया रखो घट मांई,
मिला है नर भव सार ॥ धर्म० ५ ॥

संवर पौषध और सामायिक, करो सयल मिल भाई।
सूत्र सुनो तुम दत्तचित्त होके, वक्त मिली सुखदाई,
कहुं क्या वारम्बार ॥ धर्म० ६ ॥

सम्वत् उन्नीसे साल अस्सि की, भीलवाड़ा गुलजारी।
पूज्य नानक री भरी परिखदा,खिल रही केशर क्यारी ॥
शांति जिन करो कल्याण ॥ धर्म० ७ ॥



卐 पर्यूषण स्तवन 卐

(तर्ज—पूर्ववत्)

लगा पर्यूषण आज धर्म का रंग मचाओ ॥ टेर ॥

धर्म पर्व में धर्म बढ़ावो दिल का मेल हटाओ ।
चार तीर्थ हिल मिल के प्यारे प्रेम का पाठ पढ़ाओ—
कहता हूं बारम्बार ॥ धर्म का. १ ॥

यह है मेरा यह है तेरा सब प्रपन्च मिटाओ ।
सब भारत के जैनी भाई एक रूप होजाओ—
पय अरु पानी जेम ॥ धर्म का. २ ॥

जोधाणा रा श्रावक सारा, सुनो सीख एक म्हारी ।
मानो या ना मानो प्यारे यह तो मर्जी तुम्हारी—
सुनो चित्त स्थिरता धार ॥ धर्म का. ३ ॥

दया दान का झण्डा प्यारे जोरों से फरकादो ।
कुमति पँथियों को दुनियां से जल्दी ही हटवादो—
करो ना जेज लिगार ॥ धर्म का. ४ ॥

卐

卐 संघ स्तवन 卐

(तर्ज—पूर्ववत्)

मनाओ मंगलाचार, सकल संघ सुखदाई ॥ टेर ॥

वैर विरोध कदाग्रह ईर्षा इनको दूर हटाओ ।
दुखियों के दुःख मेटन काजे आगे हाथ बढ़ाओ—
जिन्हों से होय सुधार ॥ सकल. १ ॥

चार मास के अन्दर भैय्या, कृष्ण सभा नहीं करते ।
राजादिक प्रपन्च को तज के ध्यान जिनेश्वर धरते ॥
धन्य धन है यदुराय ॥ धर्म० २ ॥

जीवों की करुणा के खातिर, साधु सती नहीं फिरते ।
तेरह बोल की देख जोगाई, चोमासा ठा देते ॥
भव्य को सुनाते ज्ञान ॥ धर्म० ३

बेइन्द्रियादिक जीव घनेरा, यत्न करो तुम भाई ।
हरी का खाना, निशि का भोजन,त्याग करो सुख चाई ॥
जिन्हों से होय कल्याण ॥ धर्म० ४

दाल साक भाजी के मांई, जीव बहुत उपजाई ।
मेरी बहना मानों कहना, दया रखो घट मांई,
मिला है नर भव सार ॥ धर्म० ५ ।

संवर पौषध और सामायिक, करो सयल मिल भाई ।
सूत्र सुनो तुम दत्तचित्त होके, वक्त मिली सुखदाई,
कहुं क्या बारम्बार ॥ धर्म० ६

सम्वत् उन्नीसे साल अस्सि की, भीलवाड़ा गुलजारी ।
पूज्य नानक री भरी परिखदा,खिल रही केशर क्यारी ॥
शांति जिन करो कल्याण ॥ धर्म० ७ .



फिर रोशन करदो जाति को, संभालो भूखे न्याती को।
ऐसा समय अनमोल सज्जनों फिर नहीं पाते हैं ॥ जागो. ५ ॥

अब तो कुछ दिखलादो करके, परभव जाना निश्चय मरके।
जरा नहीं सन्देह 'प्राज्ञ' मुनि स्पष्ट सुनाते हैं ॥जागो.६॥



卐 रक्षा स्तवन 卐

(तर्ज—पूर्ववत)

कैसी राखी मनावो आज, तुम्होंने क्या रखवाया है ॥ टेर॥

भीम सरीखी शक्ति न राखी, धन बल तन बल सब गये थाकी।
किसकी रक्षा करी आपने सच दरशाया है ॥ कैसी. १ ॥

पचास क्रोड़ भारत के मांहीं, हता जैन सब जाने भाई।
रक्षाबन्धन करते करते सब ही गमाया है ॥ कैसी. २ ॥

जीने पर भी धर्म न रक्खा, उसका जीना है ज्यूं खर का।
मरे धर्म के लिये वीर वो, अमर कहाया है ॥ कैसी. ३ ॥

'पन्नालाल' यूं कहता प्यारे, वीर प्रभु के लगावो नारे।
जिसने जैन जाति की नैया पार लगाया है ॥ कैसी. ४ ॥



卐 चित्त-संभूति स्तवन 卐

(तर्ज—मारवाड़ी मांढ़)

हो मुझ बन्धव प्यारा, कांई रहो न्यारा, प्राण अधाराजी राज ॥ टेर ॥

पहिले भव में बन्धवा रे, दासी कुल अवतार।
कालिंजर द्वितीया भवे रे, हुये मृग दुखियार ॥ मुझ. १ ॥

वीरों की सन्तान होय के वीरपना दिखलाओ।
खीर नीर ज्यूं मिलकर सारे प्रेम पाठ सिखलाओ–
यही नरतन का सार ॥ सकल. २ ॥

सम्प्रदाय का भेद भुलाकर एक रूप हो जावो।
यह है मेरा यह है तेरा ऐसा भ्रम हटाओ–
सुनो मुखियों सरदार ॥ सकल. ३ ॥

जैन जाति के सब्ज बाग में, प्रेम का जल सिचवादो।
सब भारत के जैनी मिलकर वीर की जय बुलवादो–
'प्राज्ञ मुनि' कहे ललकार ॥ सकल. ४ ॥



卐 समाज स्तवन 卐

(तर्ज—काटो लागो रे देवरिया)

जागो जागो जैनी भइयों सुगुरुजी एक तुम्हें जगाते हैं ॥ टेर ॥

क्या थी सान दुनियां में थांरी, ज्यो तुम जान रहे हो सारी।
देख आज की दशा तुम्हारी, दिल घबराते हैं ॥ जागो. १ ॥

राज रक्खा हिन्दुओं का सारा, तवारीख बतलावे प्यारा।
उन वीरों के अनुज आज दर दर भटकाते हैं ॥ जागो. २ ॥

दीन जनों को साज ही देते, निशदिन उनकी खबरें लेते।
हाय पेट के काज दीन बन दुःख उठाते हैं ॥ जागो. ३ ॥

बहु सोये अब जागो जैनों, जाति दशा निहारों नयनों।
फिर रहे भूखे अपार आप नित माल उड़ाते हैं ॥ जागो. ४ ॥

फिर रोशन करदो जाति को, संभालो भूखे न्याती को।
ऐसा समय अनमोल सज्जनों फिर नहीं पाते हैं ॥ जागो. ५ ॥

अब तो कुछ दिखलादो करके, परभव जाना निश्चय मरके।
जरा नहीं सन्देह 'प्राज्ञ' मुनि स्पष्ट सुनाते हैं ॥जागो.६॥



卐 रक्षा स्तवन 卐

(तर्ज—पूर्ववत)

कैसी राखी मनावो आज, तुम्होंने क्या रखवाया है ॥ टेर॥ मां० २॥

भीम सरीखी शक्ति न राखी, धन बल तन बल सब गये थाकी।
किसकी रक्षा करी आपने सच दरशाया है ॥ कैसी. १ मां० ३॥

पचास क्रोड़ भारत के मांहीं, हता जैन सब जाने भाई।
रक्षाबन्धन करते करते सब ही गमाया है ॥ कैसी. २ ॥

जीने पर भी धर्म न रक्खा, उसका जीना है ज्यूं खर का।
मरे धर्म के लिये वीर वो, अमर कहाया है ॥ कैसी. ३ ॥

'पन्नालाल' यूं कहता प्यारे, वीर प्रभु के लगावो नारे।
जिसने जैन जाति की नैया पार लगाया है ॥ कैसी. ४ ॥



卐 चित्त-संभूति स्तवन 卐

(तर्ज—मारवाड़ी माढ़)

हो मुझ बन्धव प्यारा, कांई रहो न्यारा, प्राण अधाराजी राज ॥ टेर ॥

पहिले भव में बन्धवा रे, दासी कुल अवतार।
कालिंजर द्वितीया भवे रे, हुये मृग दुखियार ॥ मुझ. १ ॥

युगल हँस अपन थया रे, तीजां भव रे मांय ।
नोचज कुल में ऊपना रे, चौथे भव में आय ॥ मुझ. २॥

दीक्षा ली बेहुं बन्धवा रे, पाली निर अतिचार ।
तूं करियो निहाणो हारी पूंजी, मानी ना सीख लिगार ॥ ३॥

सुर लोके जइ उपना रे, दोनुं एक विमान ।
जगायु भव स्थिति क्षय करी रे, पाम्यो नर भव स्थान ॥ मुझ. ४॥
सब :
ज कुल में मैं थयो रे, पामी सुगुरु संयोग ।
उपदेश मैं संयम लीनो, जाणी विष सम भोग ॥ मुझ. ५॥

पांच भवों की प्रीतड़ी रे, पालो बन्धु सवाय ।
बार २ तुझने कहुं रे, कर करणी सुखदाय ॥ मुझ. ६॥

मात तात सुत भामिनी रे, राज ताज परिवार ।
परभव जाता संग न चाले, छोड़ी जाय संसार ॥ मुझ. ७॥

इत्यादि शुभ शिक्षा दीनी, चित्त मुनीश्वर सार ।
एक न मानी ब्रह्मदत्त तब, पहुंचो नरक मझार ॥ मुझ. ८॥

उन्नीसे इक्यासीये रे, फागुण मास मझार ।
'पन्नालाल' कहे प्राणिया रे, लीज्यो खरची लार ॥ मुझ. ९॥



卐 जम्बू स्तवन 卐

(तर्ज— मारवाडी मांढ़)

मां ने छोडी ने मत मत जावो, म्हारा मन मोहन भरतार ॥ टेर ॥

पहला परणी नाथजी रे तजतां न आवे लाज ।
हम अबला हाजिर खड़ी, मेरी अरजी सुणो शिरताज हो ॥मां० १॥

पूरव भव में करी रे कमाई, यहां पर मिलियो योग ।
फली पुण्यवानी लात न मारो, भोगो नवला भोग हो ॥मां० २॥

थे जाणो मैं संयम लेके, जाऊं स्वर्ग जरूर ।
इस करणी से नाथजी थांने, नरक नहीं छः दूर हो ॥मां० ३॥

हम सुख भीनी कामन्या रे, तड़फ रही दिन रात ।
अध बीच मोहब्बत तोड़के प्रभु, मत करो हमसे घातजी ॥मां० ४॥

बहिया पकड़ी नाथ की रे, रोकी रखस्यां आज ।
पल्लो बिछाय के पाय पड़ा छां, रखो हमारो लाजजी ॥मां० ५॥

तुम हीज पीयर सासरो रे, तुम हीज प्राणाधार ।
बिन प्रीतम नारी तणी रे, कहो कुण पूछे सारजी ॥मां० ६॥

चन्द बिना रजनी कैसी रे, सेन्या बिना सरदार ।
क्षार बिना भोजन किसो रे, प्राणेश्वर बिन नार ॥मां० ७॥

इत्यादिक किया कामन्या रे, मोह तणां परपन्च ।
'पन्नालाल' कहे धन्य कुंवरजी, नहीं डिगियो दिल रंचजी ॥मां० ८॥

~

卐 जम्बू-स्तवन 卐

(तर्ज- बीकानेरी पणिहारी)

अरज करां छा पिया मुखड़े तो बोलो हो,
बिन प्रीतम जिया घबरावे ॥ टेर ॥

आठु ही बाला सन्मुख उभी, हाथ जोड़ के अकुलाई
थे मुख नहीं बोलो मुन न खोलो हो, कहो प्रीतमजी मरजी कांई ॥

प्रेम करी ने पहिलां परणी, द्यो किम अधबीच छिटकाई ।
छां मैं अबला जोर न चाले हो,पिण इण बाते भलपन नांई ॥ अ. २॥

शशि बिन रयण २ बिन इन्दु, सेन्या बिना ज्यूं सिरदारी ।
जीव बिना आतम नहीं शोभे हो, तिम प्रीतम बिन कांई नारी ॥ ३॥

मात तात भ्राता को छोड़ी, शरण ग्रह्यो प्रीतम थांरो ।
पलो बिछाय के पाय पड़ा छां हो, कहा कहूं में अधिकाई ॥ अर्ज. ४॥

देव भवन सम महल अनोपम, फूलों सेज विछाई ।
हम देवांगना सन्मुख उभी हो, स्वर्ग में स्यूं अधिकाई ॥ अर्ज. ५॥

मिली सम्पदा मोज करीजे, ए अवसर फेर नहीं आई ।
जोवन वय तुमरी ढ़ल जावे हो, लीजियो संयम सुखदाई ॥ अर्ज. ६॥

बहुत विलाप किया कामनियां, भांत भांत कर भरमाया ।
जम्बुकँवर वैराग में भीना हो, झूठी जाणी जग मायो ॥ अर्ज. ७॥

सम्वत् उगणीसे वर्ष इक्यासी, फागुन महिना सुखदाई ।
पुष्कर परिषद् में गुण गाया हो, 'पन्नालाल' दिल हर्पाई ॥ अर्ज. ८॥

卐 जम्बू--स्तवन 卐

(तर्ज- नवीन रसीया)

विनती मानो हो प्राणेश्वर, उभी अर्ज करा छां राज ॥ टेर ॥

आठों ही बाला सन्मुख उभी, अर्ज करे सुखताज ।
हमरो दोष बताओ साहिब, कांई बिगाड़यो काज ॥ विनती. १ ॥

देव भवन सम महल अनुपम, मिलियो सकल समाज ।
हम देवांगना सन्मुख उभी, मानो मोज महाराज ॥ विनती. २ ॥

मुख नहीं बोलो मून न खोलो, बन बैठे मुनिराज ।
सासु के जाया बिन म्हांने खारो लागे नाज ॥ विनती. ३ ॥

अलवेश्वर आलीजा म्हारी, रख लेना अब लाज ।
भरी जवानी छेह न दीजे, प्राणेश्वर शिरताज ॥ विनती. ४ ॥

वनिता वचन सुनि रँग भीना, बोले जम्बुकुमार ।
यो संसार असार आज मैं, लेस्यां संयम भार ॥ विनती. ५ ॥

तब बोली कामण्यां सारी, हम पिण आपरी लार ।
लेस्यां संयम करस्यां करणी, जाणी अथिर संसार ॥ विनती. ६ ॥

पांच शत अरु सप्तवीश तब, लीनो संयम भार ।
ग्यारह जीव शिवपुर में पहुंचे, आगम में अधिकार ॥ विनती. ७ ॥

अचिरानन्दन अर्ज करूं मैं सुन लेना महाराज ।
जम्बु मुनि की ठौर बतावो, अहो गरीब-निवाज ॥ विनती. ८ ॥

卐 जम्बू-स्तवन 卐

(तर्ज- बीकानेरी पणिहारी)

अरज करां छा पिया मुखड़े तो बोलो हो,
बिन प्रीतम जिया घबरावे ॥ टेर ॥

आठु ही बाला सन्मुख उभी, हाथ जोड़ के अकुलाई
थे मुख नहीं बोलो मुन न खोलो हो, कहो प्रीतमजो मरजो कांई ॥

प्रेम करी ने पहिलां परणी, द्यो किम अधबीच छिटकाई ।
छां मैं अबला जोर न चाले हो, पिण इण बाते भलपन नांई ॥ अ. २॥

शशि बिन रयण २ बिन इन्दु, सेन्या बिना ज्यूं सिरदारी ।
जीव बिना आतम नहीं शोभे हो, तिम प्रीतम बिन कांई नारी ॥ ३॥

मात तात भ्राता को छोड़ी, शरण ग्रह्यो प्रीतम थांरो ।
पलो बिछाय के पाय पड़ा छां हो, कहा कहूं में अधिकाई ॥ अर्ज. ४॥

देव भवन सम महल अनोपम, फूलों सेज बिछाई ।
हम देवांगना सन्मुख उभी हो, स्वर्ग में स्यूं अधिकाई ॥ अर्ज. ५॥

मिली सम्पदा मोज करीजे, ए अवसर फेर नहीं आई ।
जोवन वय तुमरी ढ़ल जावे हो, लीजियो संयम सुखदाई ॥ अर्ज. ६॥

बहुत विलाप किया कामनियां, भांत भांत कर भरमाया ।
जम्बुकँवर वैराग में भीना हो, झूठी जाणो जग मायी ॥ अर्ज. ७॥

सम्वत् उगणीसे वर्ष इक्यासी, फागुन महिना सुखदाई ।
पुष्कर परिषद् में गुण गाया हो, 'पन्नालाल' दिल हर्षाई ॥ अर्ज. ८॥

~

##卐 जम्बू--स्तवन 卐

(तर्ज- नवीन रसीया)

विनती मानो हो प्राणेश्वर, उभी अर्ज करा छां राज ॥ टेर ॥

आठों ही बाला सन्मुख उभी, अर्ज करे सुखताज ।
हमरो दोष बताओ साहिब, कांई बिगाड़यो काज ॥ विनती. १ ॥

देव भवन सम महल अनुपम, मिलियो सकल समाज ।
हम देवांगना सन्मुख उभी, मानो मोज महाराज ॥ विनती. २ ॥

मुख नहीं बोलो नून न खोलो, बन बैठे मुनिराज ।
सासु के जाया बिन म्हांने खारो लागे नाज ॥ विनती. ३ ॥

अलवेश्वर आलीजा म्हारी, रख लेना अब लाज ।
भरी जवानी छेह न दीजे, प्राणेश्वर शिरताज ॥ विनती. ४ ॥

वनिता वचन सुनि रँग भीना, बोले जम्बुकुमार ।
यो संसार असार आज मैं, लेस्यां संयम भार ॥ विनती. ५ ॥

तब बोली कामण्यां सारी, हम पिण आपरी लार ।
लेस्यां संयम करस्यां करणी, जाणी अथिर संसार ॥ विनती. ६ ॥

पांच शत अरु सप्तवीश तब, लीनो संयम भार ।
ग्यारह जीव शिवपुर में पहुंचे, आगम में अधिकार ॥ विनती. ७ ॥

अचिरानन्दन अर्ज करूं मैं सुन लेना महाराज ।
जम्बु मुनि की ठौर बतावो, अहो गरीब-निवाज ॥ विनती. ८ ॥

~

卐 जम्बू-स्तवन 卐

(तर्ज- गीत की जवांई मांने घणा सुहाया ए)

सयानी मोने गुरु समझायो है, एह संसार असार ॥ टेर ॥

कुंजर कान पीपल पान ज्योंरी, सयानी यो तो बीजल नो जबकार
छिन में छेह दिखायो है ॥ सयानी. १॥

तन धन संग कछु ना चले है, सयानी यो तो ना चले संग परिवार
सुगुरुजी इम फरमायो है ॥ सयानी. २॥

डाब अनी जल बिन्दुवो ए, सयानी यो तो स्वपना सम संसार
सार कछु नांय दिखायो ए ॥ सयानी. ३॥

फल किंपाक की ओपमा ए, सयानी ए तो भोग भुजंग सा जान
मेरे तो दाय न आयो ए ॥ सयानी. ४॥

गुरु चरणें शिर डारसुं ए, सयानी मेरो जन्म मरण मिट जाय
मारे मन सुगुरु सुहायो ए ॥ सयानी. ५॥

सुणी इम वनिता वीनवे हो नाथ मैं रेस्यां आपरी लार ।
नाथ माने संयम सुहायो है,(अवर कछु दाय न आयो है)॥ स. ६॥

प्रभवादिक समझाविया हो, जम्बू धन तात मात परिवार।
सयल मिल वीर पे आया है, (संयम ले मन हर्षाया है) ॥सं. ७॥

धन्य २ जम्बूकुमारजी हो, सयानी ए तो मोक्ष विराज्या जाय
जन्म अरु मरण मिटायो है ॥ सयानी. ८॥

अचिरानन्दन साहिबा हो, नाथ या सेवक नी अरदास
वास जम्बू सा दिरायो है ॥ सयानी. ९॥

卐 श्री कृष्ण स्तवन 卐

(तर्ज—राणा मान रे)

काना आव रे, आव २ वृजवासी काना भारत बुलावे रे,
आव आव नन्दजी का लाला, भारत बुलावे रे, काना. ॥ टेर ॥

तुझ बिन सारा भारतवासी, दुखड़ा अधिक उठावे रे।
दीन दुःखी भारत की व्यथा तो, कही न जावे रे ॥ काना. १ ॥

कलयुग माँहीं बहुत कंस मिल, प्रजा अति सतावे रे।
तात मात उन कुपुत्रों से, बहु घबरावे रे ॥ काना. २ ॥

गौ वंश भारत को निज धन, दिन २ घटियो जावे रे।
इसी समय में आप आयके, उसे बचावें रे ॥ काना ३ ॥

यवन असुर जन मिल भारत को, लूट २ कर खावे रे।
दीन दुःखी भारत नरनारी को, अधिक सतावे रे ॥ काना. ४ ॥

एक बार काना आकर के, धर्म की धूम मचावे रे।
जब ही 'प्राज्ञ मुनि' को जिवड़ो, घनो हर्षावे रे ॥ काना. ५ ॥

卐

卐 श्री कृष्ण स्तवन 卐

(तर्ज—काटो लागो रे देवरिया मोसु संग)

जल्दी आना हो मुरलीधर, थारी भारत जोवे वाट ॥ टेर ॥

आप जदी अवतार लिया था, सब भारत को सुखी किया था।
कर निष्कंटक भारत भूमि, लगा धर्म का ठाठ ॥ जल्दी आना. १ ॥

कँस को मार के नरक पठाया, मातृभूमि का कष्ट मिटाया।
उग्रसेन को बन्ध मुक्त कर बैठाया निज पाट ॥ जल्दी. २ ॥

अब तो आवो जल्दी आवो, सब भारत का कष्ट हटाओ।
प्रान्त २ में हुये कँस अब कहलाते वो लाट ॥ जल्दी. ३ ॥

गोपालन की बात भुलाई, बुचड़खाने जाय मुलाई।
अब आके गोपाल गौ का, दुखड़ा सब दो काट ॥ जल्दी. ४ ॥

बहुत काल से विपती सहे हैं, अन्न वस्त्र बिन तड़फ रहे हैं।
ऐसे दीन अनाथ भारत का, सब संकट दो काट ॥ जल्दी. ५ ॥

एक बार फिर दर्श दिलादें, शांति सुधामृत आके पिलादें।
तड़फ रहे भारत जन सारे, दर्श दिलावो नाथ ॥ जल्दी. ६ ॥

दया धर्म सबको सिखलादें, दे उपदेश बीर बनवादें।
जिससे रक्षा होय सभी की, मिटे सकल उच्चाट ॥ जल्दी. ७ ॥

'पन्नालाल' की अरजी काना, जल्दी दर्श दिलादो माने।
मैं भी एक बार फिर काना, बनूं तिहारा भाट ॥ जल्दी. ८ ॥

卐 केशी-प्रदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—हो सरदार थारो पचरंग)

卐

कर जोड़ी चितजी कहे रे, सुनियो गुरु महाराज,
दर्श पाय हर्षित भयो रे, सीधा सगला काज।
हो गुरुराज थांरा दर्शन की बलीहारीजी महाराज ॥ १ ॥

अधम उद्धारन भवोदधि तारन, सारन भव्य सुकाज,
झारन कर्म रिपु अघ टारन, धारन जैन समाज ।
हो गुरुराज ताड़न क्रोध लोभ मद मायाजी महाराज ॥२॥

चित्ता की यह विनती रे, सुणज्यो दीन दयाल,
श्वेताम्बिका पधारिये रे, कीजे हमें निहाल-
हो गुरुराज म्हारा शहर में आप पधारोजी महाराज ॥३॥

राय प्रदेशी पापियों रे, कर रह्यो हिंसा पूर,
ज्यांने ज्ञान सुणावज्यो रे, दीपे समकित नूर-
हो गुरुराज म्हारा राजा ने पन्थ लगावो जी महाराज ॥४॥

पर उपकारी आप छो रे, देवो सत्य उपदेश ।
ग्राम नगर विचरत रहो रे, करो उपकार हमेश-
हो मुनिराज आपरा गुण नो पार न पावोजी महाराज ॥५॥

बार २ यह विनती रे, दीजे दर्श दयाल,
पापी नर समझाविया रे, खट्काया रीछपाल-
हो गुरुराज आप तो ज्ञान गुणां का दरियाजी महाराज ॥६॥

इत्यादिक अरजी करी रे, चित्त प्रधान सुजान,
श्वेतांबिका आयो चली रे, दिल में हर्ष महान ।
चित्त प्रधान गुरुजी की निसदिन वाट उडी के जी महाराज ॥७॥

भूमण्डल पे विचरते रे, आये श्वेतांबिका बाग,
चित्त प्रधान हर्षित थयो रे, जागे नगर ना भाग-
हो मुनिराज जिन धर्म ना झण्डा लगायाजी महाराज ॥८॥

राय बग्घी में बैंठ केरे, सहल करन ने जाय,
चित्त प्रधान सारथी बन्यो रे, बाग समीपे लाय–
हो राजाजी देखी परिषद मन हरषावे जी महाराज ॥६॥

कहो चित्ता यह कौन है रे, मोडिया बाग के मांय,
क्यों भेला इतना हुआ रे, देवो सर्व सुनाय–
हो महाराज आतम काया अलग बतावेजी महाराज–
हो महाराज जैनी साधु नाम धरावेजो महाराज ॥१०॥

सुनी राजा तब चालके रे, आयो मुनि के पास,
जीव रु काया कहो किम अलगा, दीजे मुझे प्रकाश–
हो मुनिराज मैं तो जीव अलग नहीं मानूं जी महाराज–
हो गुरुराज आतम काया एक हो जानूं जी महाराज ॥११॥

इत्यादिक बहु प्रश्न पूंछिया दीधो भरम मिटाय,
समकित लीनी राय प्रदेशी, मुनि चरणां चित लाय–
हो मुनिराज मुझने भवोदधि पार उतारोजी महाराज ॥१२॥

बेले २ पारणों रे, किया कर्म चकचूर,
प्रथम कल्प जई ऊपना रे, पाम्या सुख भरपूर–
हो गुरुराज इण पर राय प्रदेशी तार्यो जी महाराज ॥१३॥

उन्नीसे बैयासिये रे, चैत्र शुक्ल पख जान,
प्रतिपदा दिन यह सुनायो, भाणनगर शुभस्थान–
हो भवि जीवों थे तो गुरु गुण निशदिन गावेजी महाराज–
हो भविजीवों इण पर 'पन्नालाल' दर्शावेजी महाराज ॥१४॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—देश को किया खराव)

हिन्दु और मुसलमान, सब को हम समझावें ॥ टेर ॥

दया धर्म है सब से आला, इसमें फर्क नहीं है ।
वेद, पुरान, कुरान के अन्दर, जाहिर दर्ज सही है–
देखलो खोल किताब ॥ सब को० १ ॥

अहिंसा परमो धर्म कहा है सत्य समझ लो भाई ।
किसी जीव को दुःख नहीं देना करुणा रखो सदा ही–
जिन्हों से होय कल्याण ॥ सब को० २ ॥

अपने मजे के खातिर प्यारे लेवो पराई जान ।
जाय पड़े दोजक के अन्दर जम देवेंगे तान–
बहुत है बुरा अंजाम ॥ सब को० ३ ॥

चार सीपतें कही दीन की सात इमान ही जान ।
इसको तुम अमल में लावो, देखो खास कलाम–
मुसलमाँ बनो दिल जान ॥ सब को० ४ ॥

सबको पैदा किया खुदा ने तुम क्यों देत विगार ।
रब का खोप रखो तुम दिल में आखिर लेंगे हिसाब–
कयामत के दिन जान ॥ सब को० ५ ॥

शराब पीना रवां नहीं हैं देखो कुरान के मांई ।
जीनाकारी का करना बुरा है सुनो मुसलमां भाई–
मालिक का पढ़ो कलाम ॥ सब को० ६ ॥

'पन्नालाल' यूं कहे अजीजों रखो अपना दिल पाक ।
सभी खलक के अन्दर प्यारे, पड़े अजल की धाक–
एक दिन होगा चलान ॥ सब को० ७ ॥

卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—ना छेड़ो गाली दूंगी रे)

मनमानी मौजा मानी रे, परभव से डरियो नाँय।
तूं कर रह्यो दिल की जानी रे ॥ परभव० टेर ॥

फिरे यौवन में मद मातो, विषया रस में रंग रातो।
नित दूध जलेबी खातो रे ॥ परभव० १ ॥

तू बैठ बग्घी के मांई, फिर सैर करन ने जाई।
बागाँ में गोता खाई रे ॥ परभव० २ ॥

शिर टेढ़े पेच झुकाई, गलियों में चले अकड़ाई।
पर नारि पे नजर लगाई रे ॥ परभव० ३ ॥

फागण में फाटा गावे, रस्ते में धूम मचावे।
गुरु तात की शर्म न आनी रे ॥ परभव० ४ ॥

बहु होज भरे है पानी, ज्यां में भैसा रोल मचानी।
दिल दया जरा नहीं आनी रे ॥ परभव० ५ ॥

कभी नांय सुने जिनवाणी, बहु गावे ख्याल शैलानी।
सद्‌गुरु को कथन न मानी रे ॥ परभव० ६ ॥

अब जाग रे भोला प्राणी, शांति जिन जाप जपानी।
'प्राज्ञ' भव्य सुखदानी रे ॥ परभव० ७ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—पूर्ववत्)

卐

संसार मुसाफिर खाना रे, दुनियां की झूंठी बहार।
यहां लग रहा आना जाना रे ॥ दुनियां० टेर ॥

यह चार दिनों का वासा, आखिर में होगा निकासा।
कर धर्म ध्यान तूं खासा रे ॥ दुनियां० १ ॥

यह मनुष्य जन्म की पूंजी, फोकट में गमावो क्यूं जी।
यूं चेतावे मुनिवर जी रे ॥ दुनियां० २ ॥

तू पूरब भव की कमाई, यहां निकमो बैठो खाई।
नवी पूंजी नांय कमाई रे ॥ दुनियां० ३ ॥

मत गाफिल होके सोना, मिली पूंजी को मत खोना।
तुझे भोर भये उठ जाना रे ॥ दुनियां० ४ ॥

कर करनी भव अघ हरनी, जिससे टर जावे वेतरणी।
तूं जाग जाग भवि प्राणी रे ॥ दुनियां० ५ ॥

मुनि 'पन्नालाल' चेतावे, ले ले खरची ज्यूं सुख पावे।
गई वक्त हाथ नहीं आवे रे ॥ दुनियां० ६ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—सट्टे की सेखी मे सब)

इस खाने की फेशन ने, बीगाड़ डारी काया ॥ टेर ॥

गेहूँ बाजरी मक्का जौ की, रोटी नाय सुहैया ।
डबल रोटी और बिस्कुट केरी, दिल में लगन लगैया ॥ १ ॥

दुध दही और मक्खन मेवा, लाला नाय खवैया ।
जाय बाजार में वेजीटेबल की, सड़ी मिठाई चवैया ॥ २ ॥

सेव दाल अरु भूजे पकोड़ी, खावे हर्ष धरैया ।
सड़ा हुआ इमली का पानी, पीवे पतासे भैया ॥ ३ ॥

गोरस सहुँ रस मांहे शिरोमन, जिसको नाय पिवैया ।
सुवह शाम लीटन की चाय की, मनमें लगन लगैया ॥४॥

घर में भोजन बना के ताजा, कामन बाट जोवैया ।
बाबुजी होटल में जाकर, खाना विदेशी खवैया ॥ ५ ॥

इस खाने के फेशन से ही, होगई तन में तपैया ।
वैद्य रु डाक्टर पे जाकर के, धन की धूल उड़ैया ॥ ६ ॥

कम ऊमर जमराज के द्वारे, जावे लोग लुगैया ।
आंखों से पानी वर्षा के, रोवे तात रु मैया ॥ ७ ॥

फेशन के खाने को छोडो, जो जीवन सुख चैया ।
'पन्नालाल' कहे सादा जीवन, रखना आप सदैया ॥ ८ ॥



उपदेशी स्तवन

(तर्ज- पूर्ववत्)



फँस फेशन के पन्जे में, सब खोय दिवी माया ॥ टेर ॥

धोती पहनना छोड दिवी अब अद्‌भुत स्वांग धरैया ।
छीदे टांगड़े रहे लाला के, खड़े पेशाब फिरैया ॥ १ ॥

पगड़ी बांधना जानत नाहीं, शिर पर टोप धरैया ।
देखी स्वान भूंसे लाला को, हँसते लोग लुगैया ॥ २ ॥

फूल बूंट पैरों में पहनी, टेडी चाल चलैया ।
ले सीगरेट माचिस को घिसके, मुंह में लाय लगैया ॥ ३ ॥

लगा पाकेट जाकेट के ऊपर, खोटी चैन धरैया ।
लालाजी की बारह बज गई, यूं कहते सब भैया ॥ ४ ॥

सीनेमा नाटक में जाकर, धन की धूल उड़ैया ।
बीबीजी रोवे घर अन्दर, फाटे बसन धरैया ॥ ५ ॥

दस दमड़े मिलते बाबू को, बीस का खर्च करैया ।
जंटलमैनी निभेगी कहां तक, कहदो सच्ची भैया ॥ ६ ॥

'पन्नालाल' कहे सुनो सज्जनों, यह अवसर भल आया ।
रहे सादगी जिनके घर में, कमला कैल करैया ॥ ७ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज- पूर्ववत्)

इस बचपन की शादी ने, डुबोय दिवी नैया ॥ टेर ॥

कहती बुढ़िया मैं नयनों से, नन्हीं बहु निरखैया ।
मरजाऊँ तो रहेगी मनमें, झट परणादो भैया ॥ १ ॥

धोती पहनना जानत नाहीं, कपड़े मांय मुतैया ।
रोटी को वो रोती कहता, भोला कँवर कन्हैया ॥ २ ॥

घोड़े पे बनड़ा बिठलाया, मानो शूली चढैया ।
चले परणवा काज कँवरजी, जङ्गी ढोल बजैया ॥ ३ ॥

उठो लाल अब जल्दी से तुम, परणन साज सजैया ।
चालो फेरा खावो झटपट, लग्न न जाय टरैया ॥ ४ ॥

मै पेड़ा नहीं खाऊँ तातजी, ना मुझ भूख लगैया ।
भूखा हो तो थे ही खालो, नहीं तो ताक धरैया ॥ ५ ॥

मारी थप्पड़ मुंह के ऊपर नयनों नीर जरैया ।
रोवत रोवत खावे फेरा, निरखत लोग लुगैया ॥ ६ ॥

नहीं यह शादी है बरबादी, जाति रसातल जैया ।
'पन्नालाल' का कथन सज्जनों, लेना दिल में धरैया ॥ ७ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज .... गजल)

अजीजों ! मानलो कहना, खजाना धर्म का लेना ॥ टेर ॥

धर्म है सार जग मांहीं, जगत में और कछु नांही ।
कष्ट में धर्म हो सहाई, झुंठे संसार के फेना ॥ अजीजों० १ ॥

जगत सपने की माया है, मानो बादल की छाया है ।
इसी में क्यों लुभाया है, एक दिन यहां से उठ जाना ॥ अजीजों० २ ॥

जुल्म कर धन किया भेला, धर्म में ना दिया धेला ।
सुगुरु तुझ दे रह्या हेला, मानले मान मुझ बैना ॥ अजीजों० ३ ॥

बनाई बाग में कोठी, हवेली शहर में मोटी ।
खाय नहीं पेट में रोटी, रात दिन नहीं मिले चैना ॥ अजीजों ४ ॥

कमिश्नर साहब के बंगले, हमेशा हाजरी देते ।
मुनि दर्शन के करने पे कहे हमें वक्त कछु है ना ॥ अजीजों० ५ ॥

बेरिस्टर सिविल सर्जन को, कमाई खूब दी गहरी ।
जाति अरु धर्म की खातिर, मुंह से कह के नट जाना ॥ अ० ६ ॥

हुआ सो होगया अब तक, गई सो फिर नहीं आवे ।
अबे तो चेतजा जल्दी, नहीं तो टिकट कट जाना ॥ अजीजों० ७ ॥

शांति जिन लाज रख मेरी, तेरे कदमों का चाकर हूँ ।
श्रीमन्त सेठ साहबों को, महर कर सुमति दे देना ॥ अजीजों० ८ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज- ना छेड़ो गाली दूंगी रे)

卐

हमने खूब सोचकर देखा रे, स्वार्थ की जग में प्रीत ।
है सासां जहां तक आशा रे ॥ स्वार्थ० टेर ॥

यह मात पिता परिवारा, स्वारथ से लागे प्यारा ।
बिन स्वार्थ करदे न्यारा रे ॥ स्वार्थ० १ ॥

भरे चड़स पेर हाथ पसारे, निगाह प्रेम से उसे निहारे ।
हुये खाली कूप में डारे रे ॥ स्वार्थ० २ ॥

दूजती गाय की लातां खावे, हरा द्रोब उनको चरवावे ।
बिन दूध लाठी मचकावे रे ॥ स्वार्थ० ३ ॥

अनर्थ कर धन को कमाया, बीती जवानी बुढ़ापा आया ।
पोली में डेरा लगाया रे ॥ स्वार्थ० ४ ॥

'मुनि पन्नालाल' का कहना, नित्य धर्म ध्यान तुम करना ।
लो शांति जिनन्द का शरणा रे ॥स्वार्थ० ५॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज-गजल : जिनराज तेरी बन्दगी मे भूलता नही)

यह राज पाट ठाट वह दौलत कहां गई ।
वह ताज क्या हुवा वो हकुमत कहां गई ॥ टेर ॥

कहते हम हैं मर्द, हमसे दूसरे नहीं ।
वह मानियों का मान, वह जवानी कहां गई ॥यह. १॥

सीता को तङ्ग करके, वह रावण कहां गया ।
इन्द्रजीत मेघ की, ताकत कहां गई ॥ यह. २ ॥

चक्री का हूस्न देख के, देव खुश हुआ ।
यह शान शौखत हूस्न की बहार कहां गई ॥ यह. ३ ॥

भीम से बली थे भूप, जाहिर जहान में ।
अज्जल ने आके घेरा, तब गदा किधर गई ॥ यह. ४ ॥

फूल के जवानी में दीवाना हो रहा ।
घूमता गरूर में, कहा मानता नहीं ॥ यह. ५ ॥

प्राज्ञचन्द्र के कहने पें, कछु ध्यान दे भई ।
नित शांति शांति जाप जप आनन्द ले सही ॥यह. ६ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज- दादरा)

स्वांसा आवे न आवे अजब क्या है,
दम आवे न आवे अजब क्या है ॥ टेर ॥

हटवाड़े का मेला लगा है,
सांचा सा सूझे सबब क्या है ॥ स्वांसा. १ ॥

जाया कहलाने से जाना पड़ेगा,
अजल का इसमें गजब क्या है ॥ स्वांसा. २ ॥

जवानी में फूले भलाई को भूले,
मुंह से कहते नरक का खतर क्या है ॥ स्वांसा. ३ ॥

खाने कमाने में बखत गमाई,
नहीं जाना हमारा फरज क्या है ॥ स्वांसा. ४ ॥

बली पहलवां सब होगये गायब,
अजल के हुक्म में दखल क्या है ॥ स्वांसा. ५ ॥

करले भलाई भजले प्रभु को,
जाग जागरे मुसाफिर सोवत क्या है ॥ स्वांसा. ६ ॥

'पन्नालाल' कहे सुनियो अजीजों,
सत्य कहने में हमको शरम क्या है ॥ स्वांसा. ७ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज- मालिक का सुनलो कलाम कलाम मोरे प्यारे)

खरची तूं ले ले जरूर, जरूर मोरे प्यारे २ ॥ टेर ॥

कहां से आया किधर जायगा ।
क्यों करे दिल में गरूर २ मोरे प्यारे ॥ खरची. १ ॥

यह जवानी दीवानी है चार दिनों की,
जैसे नदी को पूर २ मोरे प्यारे ॥ खरची. २ ॥

सनत्कुमार चक्रीश्वर को देखो,
पलक में पलटा नूर २ मोरे प्यारे ॥ खरची. ३ ॥

चिन्तामणी सम नर तन पाके,
क्यों करे कर्म करूर २ मोरे प्यारे ॥ खरची. ४ ॥

'प्राज्ञचन्द्र' कहे शांति जिनन्द भजे,
विघ्न सहु हो दूर २ मोरे प्यारे ॥ खरची. ५ ॥

भाणनगर में आनन्द वरते,
धर्म ध्यान भरपूर पूर मोरे प्यारे ॥ खरची. ६ ॥



##卐 उपदेशी-स्तवन 卐

(तर्ज—कांटो लागो रे देवरिया०)

किण विध आऊँ मैं महाराज, मुझको फुरसत नाय लिगार ॥टेर॥

हाट मकान दुकान का धन्धा, सब मेरे पर भार ।
मुझ बिन कौन सँभाले काम को, मैं करूं सब की सार ॥किण० १॥

आप त्यागी हो मुनि बन बैठा, परवाह नाय लिगार ।
सीधा भोजन मिले आपको, माल मलीदा सार ॥किण० २॥

हमें गृहस्थी घर में रहवाँ, लेर लग्यो परिवार ।
फीक्र लगा है सबका हमको, चावे रोटी दार ॥किण० ३॥

भोर ऊठ मैं जाऊँ दुकाने, फिर फिरूं घर २ बार ।
भरी दोपहरी करूं मैं भोजन, किम आऊँ तुम द्वार ॥किण० ४॥

देणायत नहीं देवे दाम और लगे लेणायत लार ।
बावीस परीषह कहे आपके, हमरे छेह न पार ॥किण० ५॥

छोरा छोरी घर में बहुला, ब्याव तणो तो विचार ।
किण विध काम चलेगो स्वामी, पैदा नाय लिगार ॥किण० ६॥

एक वचन मुनिजी ने सुनाया, श्रावकजी अनपार ।
पाणी विलौने घृत नहीं पामें, इममें नहीं कछु सार ॥किण० ७॥

शांति जिनन्द का जाप जपो तुम, विघ्न सहु दे टार ।
दान शीयल तप भावना भावो, वरते मंगलाचार ॥किण० ८॥

~

卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—तारो चिलके)

卐

हां रे चतुर करणी कीज्यो, नरभव पाया नो फल लीज्यो ॥टेर॥

दुर्लभ नरभव थें लयो रे, करणी कीज्यो,
मिलियों आरज क्षेत्र ॥ चतुर. १ ॥

उत्तम कुल भल पामियो रे, चतुरां सुणज्यो,
आयु दीर्घ अपार ॥ चतुर. २ ॥

पन्च इन्द्री पूरी मिली रे, दिल में थुणज्यो,
अरु रुज रहित तन सार ॥ चतुर. ३ ॥

सतगुरु संगत छे किहां रे, प्राणी सुणज्यो,
ते पिण मिलियो जोग ॥ चतुर. ४ ॥

सूत्र सुणो शुध भाव सुं रे, जिनवाणी सुणज्यो,
समकित में रहो लाल ॥ चतुर. ५ ॥

इत्यादि नव ही मिलिया रे, ममता तजज्यो,
थारो जन्म सफल हो जाय ॥ चतुर. ६ ॥

धन यौवन है कारमो रे, जल्दी चेतो,
दामनी नो जबकार ॥ चतुर. ७ ॥

मात तात सुत बन्धवा रे, भविकां सुणज्यो,
संग न चाले कोय ॥ चतुर. ८ ॥

दान सुपातर दीजियो रे, लाहो लीज्यो,
पालो शुद्ध मन शील ॥ चतुर. ९ ॥

तपस्या धन संग्रह करो रे, खर्ची लीज्यो,
निशदिन भावना भाय ॥ चतुर १० ॥

'पन्नालाल' इण पें कहे रे, सुयश लीज्यो,
बहती विरियां मांय ॥ चतुर. ११ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—कोरो काजलियो)

हुं तने बरजुं प्राणियां, तूं कुमार्ग मत जाय । हालो मारगिये ।
यो कुमार्ग दुख दाय ॥ हालो मारगिये ॥ टेर ॥

रावण सरीखा राजवी, ज्यांरे कुम्भकरण सा भाय ।
कुमार्ग में चालतां, वो बैठो रे लंक गमाय ॥ हालो. १ ॥

पद्मनाभ दुर्योधन राजा, कीचक कीच कढाय ।
यादव राजा देखलो, वो नरक पहुँतो जाय ॥ हालो. २ ॥

जुवा मांस अरु मद सही, गणिका विशन शिकार ।
पर दारा परधन को हरवो, सप्त व्यसन दे टार ॥ हालो. ३ ॥

कामी वामी दुर्गतगामी, दे खोटो उपदेश ।
भोला ने बहकायवा, वे पहरे बगुला भेष ॥ हालो. ४ ॥

बार २ तुझ ने कहुं, तूं समझ समझ रे सेण ।
छोड़ कुमार्ग चाल सुपथ में, धार धार गुरु वैन ॥ हालो. ५ ॥

कुगुरु कुधर्म कुदेव कुं टारो, धारो सुगुरु सुजान ।
पर प्राणी आतम सम पेखो, एह सच मार्ग मान ॥ हालो ६ ॥

उन्नीसे तय्यासी वर्षे, रूपनगढ़ है शहर ।
शांति जिनन्द का जाप जपंता, मारे दिन २ सुख की लहर ॥ हालो. ७ ॥



卐 कलियुगी - स्तवन 卐

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

कलयुग आया रे, यह देख जमाना जिय घबराया रे ॥ टेर ॥

तात तणी तो बात न माने, ले सोटी धमकाया रे।
रे बुढे ! तुझे ज्ञान नहीं बकवाद मचाया रे ॥ कलयुग. १ ॥

मात तणी तो सार न पूछे, कामन का मन चाया रे।
नित्य नवी पोशाक बना शृङ्गार सजाया रे ॥ कलयुग. २ ॥

बहनोई से मुख नहीं बोले, साला से प्रेम सवाया रे।
बछड़े की तरह लार फिरी, बाजार दिखाया रे ॥ कलयुग. ३ ॥

चुगल चोहटे बैठन लागा, साहूकार सिधाया रे।
भले मनुष्य की बात न माने, लूच्चे धूम मचाया रे ॥ कलयुग. ४ ॥

पगड़ी फेंकी टोपी पहनी, पेन्ट रु कोट सजाया रे।
घड़ी छड़ी एनक लगा, बाबू कहलाया रे ॥ कलयुग. ५ ॥

बाबल बेटी कर अति मोटी, बुड्ढे को परणाया रे।
बकने लगे जब पन्च तभी, पकवान जिमाया रे ॥ कलयुग. ६ ॥

बड़े घरों की बहु बेटियां, यवनों सङ्ग भगाया रे।
भ्रूण इत्यादि जुल्म करी बहु पाप कमाया रे ॥ कलयुग. ७ ॥

रजपुता में राम रह्यो नहीं, ब्राह्मण धर्म भुलाया रे।
ऋषियों की सन्तान कहा कुकर्म कमाया रे ॥ कलयुग ८ ॥

वेश्य सुता वैश्या बन बैठी, जीरणा पट ओढाया रे।
आलीजा पग मांय धार, धन धर्म गमाया रे ।। कलयुग. ९ ।।

शुद्र वर्ण ने किया सुधारा, कलयुग रङ्ग दिखाया रे।
नीच कर्म तज ऊंच भये, सतगुरु दर्शाया रे ।। कलयुग.१०।।

शांति जिनन्द का जाप जपी, भव्य कलयुग दूर हटाया रे।
अचिरानन्दन साहिबा साजन, मुझ मन भाया रे ।। कलयुग. ११।।

उन्नीसे तय्यासी वर्षे, रूपनगढ़ सुख पाया रे।
देख साहबी कलयुग की, यह 'प्राज्ञ' सुनाया रे ।। कलयुग १२।।



卐 उपदेशी स्तवन 卐

तो ने सतगुरु यूं चेतावे रे, थारो नरभव अहेलो जावे रे ।। टेर ।।

पहेला भव में करी थी करणी, नवल रंगीली नारी परणी।
फिर परनारी पे क्यों लुभावे रे ।। तो ने. १ ।।

पूर्व पुण्य से सम्पदा पाई, बण्यो पुंजीपत मिली सेठाई।
दान देने में कर क्यों धुजावे रे ।। तो ने. २ ।।

शादी गमी में पूंजी उड़ाई, सुन्दर बाग में कोठी बनाई।
धर्म कार्य में शिर क्यों हिलावे रे ।। तो ने. ३।।

क्या तूं लाया क्या ले जासी, धरा धन सब यहां रह जासी।
कर धर्म ध्यान सुख पावे रे ।। तो ने. ४ ।।

'प्राज्ञचन्द्र' का मानले कहना, शांति जिनन्द का ले ले शरणा।
दिन २ आनन्द मङ्गल थावे रे ।। तो ने. ५ ।।



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—कोरो काजलियो)



सज्जनों सुण लीज्यो, या सद्-शिक्षा सुखकार—
दिल में धर लीज्यो ॥ टेर ॥

भूमि यह वीरों तणी, तुम वीरों की सन्तान ।
वीर वणी बनी रक्खो, कांई भामाशाह की शान ॥ स० १ ॥

प्रेम परस्पर पालना, चालना कुल आचार ।
टालना सहु दुर्गणां भणी, जिम सुख पावो अनपार ॥ स० २ ॥

हरिश्चन्द्र जिम सत राखज्यो, हो विमल सुयश संसार ।
नम्र वचन मुख भाखज्यो, दीज्यो दान घर द्वार ॥ स० ३ ॥

लिया नियम शुद्ध पालज्यो, खंडीज्यो नाय लिगार ।
इण भव परभव थां हरे, कांई वरते मंगलाचार ॥ स० ४ ॥

देव गुरु शुद्ध धर्म नी, रक्खो आस्था सार ।
सद्गुण सन्मुख पग भरो, दुर्गुण दूर निवार ॥ स० ५ ॥

अपव्यय कुछ ना कीजिये, जिम सुख पावे सन्तान ।
सद् व्यय कर यश लीजिये, हो अक्षय धन अरु मान ॥ स० ६ ॥

चौमासे अठ्यासिये आनन्द रङ्ग अपार ।
गुरु भक्ता भक्ति करी, कांई सुयश लियो संसार ॥ स० ७ ॥

अचिरानन्दन स्वामीजी, अर्ज सुनो महाराज ।
केशर क्यारी-ज्यों खिले, पूज्य नानक की समाज ॥ स० ८ ॥

卐 उपदेशी - स्तवन 卐

(तर्ज- हो सरदार थारो पचरंग०)

सुमत्त सखी कहे चेतन प्यारा, सुनो अर्ज सुखदाय।
मुझ शिक्षा दिल में धरो रे, जन्म मरण मिट जाय॥
हो सुण चेतन, प्यारा अब तो रस्ते चालोजी जीवराज-
हो सुण प्राण पियारा, मुझको नयण निहालोजी महाराज॥ १॥

कुमत सखी संग लाग ने रे, भमियो काल अनन्त-
नरक निगोद में अति दुःख पायो, अब तो चेतो कंथ।
हो सुन चेतन प्यारा, कुमत क्लेशन त्यागोजी महाराज,
हो सुण प्राण पतिजी, शुद्ध मार्ग में लागोजी महाराज॥ २॥

मैं पहेला तुझने कह्यो रे, दो कुमता छिटकाय,
मैं तुम प्यारी मोहनगारी, लेवो कँठ लगाय।
हो जीवराज तुम तो, मुझ कहनी नहीं मानीजी महाराज-
हो सुण चेतन थे तो, कुमती ने सांची जाणी जी महाराज॥ ३॥

ब्रह्मदत्त शंभूम जी रे, रावण सरिसा राय,
कुमता कहने चालता रे, पहुंचा नरक में जाय।
हो जीवराज था पर, कुमता कामण कीधोजी महाराज-
हो सुण चेतन थाने, कुमता वश कर लीधोजी महाराज॥ ४॥

शालिभद्र धन्नो सही रे, जम्बु कँवर सुखदाय,
मुझ शिक्षा पर चालता रे, मोक्ष विराज्या जाय,
हो जीवराज वे तो, जन्म मरण से टरियाजी महाराज,
हो सुन चेतन वे तो, शिव सुन्दर ने वरियाजी महाराज॥ ५॥

शील सुरंगी बांध पागड़ी, तपस्या तिलक लगाय,
दान सुपातर देय के रे, कर भूषण चमकाय।

हो जीवराज थेतो, भांग भजन की पीवोजी महाराज–
हो सुण चेतन थेतो, मुझ संग लहरा लेवोजी महाराज ॥ ६ ॥

दया का मोदक भाव का खाजा, करणी कलाकन्द मान,
समता रस से भरी जलेबी, लब्धि का लाडू जान।
हो जीवराज थे तो, आरोगी सुख पावोजी,
हो सुन चेतन थेतो, भव २ भूख गमावोजी महाराज ॥ ७ ॥

मुझ संगे पियु मोज करीजे, स्वर्गापुर की सहल,
मोक्ष सखी से तुझे मिलादूँ, बैठ ज्ञान की रेल।
हो जीवराज थेतो, धर्म का टिकट कटावोजी महाराज–
हो सुन चेतन प्यारा, झटपट मोक्ष सिधावोजी महाराज ॥ ८ ॥

सुण चेतन दिल में हर्षायो, छांडियो कुमति संग,
नवल रँगीली सुमत सखी से, लागो नवलो रंग।
हो सुन प्राण पियारी, थारी संग न छोडूँजी महाराज,
हो सुनो सुमत सखीजी, थांरी लारे दोडूँजी महाराज ॥ ९ ॥

बालपना की प्रीत ने रे, खूब निभाई आप,
मोक्ष सखी से मुझे मिलादो, दूर टले सन्ताप।
हो सुन प्राण पियारी, पल २ तुझ बलिहारी महाराज,
हो सुनो सुमत सखोजी, तुम सूरत पर वारीजी महाराज ॥१०॥

इम जानी भव प्राणियां रे, धारो सुमती सीख,
इह भव सुख संपत मिले रे, परभव स्वर्ग नजीक।
हो भव जीवों इन पर, 'पन्नालाल' समझावें जी महाराज,
हो सुन चेतन प्राणी, शिव रमणी सुख पावेजी महाराज ॥११॥

##卐 उपदेशी - स्तवन 卐

जाय छे जाय छे जाय छे रे, थांरो नरभव अहेलो जाय छे रे,
थारी भरीय जवानी खाली जाय छे रे ॥ थांरो० टेर ॥

सतगुरु संगत घड़ियन कीधी,
छेल खेलों में धूम मचाय छे रे ॥ थांरो० १ ॥

दीन अनाथ को कछुयन दीधो,
तू पइस्यो व्यर्थ उड़ाय छे रे ॥ थांरो० २ ॥

रंग में रातो मद में मातो,
परनारी पे नजर लगाय छे रे ॥ थांरो० ३ ॥

नित्य नई पोशाक सजावे,
टेढा पेच झुकाय छे रे ॥ थांरो० ४ ॥

प्रभु गुण मुख से कबहुं न कीधा,
हंजा मारु ने नित प्रति गाय छे रे ॥ थांरो० ५ ॥

तपस्या कर तन को नहीं गाल्यो,
नित लड्डु जलेबी चाय छे रे ॥ थांरो० ६ ॥

अरबी आलू और रतालू,
तू तो कन्द मूल गटकाय छे रे ॥ थांरो० ७ ॥

कानों में मोती गल बीच डोरा,
बालों पे इतर लगाय छे रे ॥ थांरो० ८ ॥

मुख में बीड़ा हाथ में चीटी,
जाकेट पे पाकेट लगाय छे रे ॥ थांरो० ९ ॥

जिनवाणी जब सुनने आवे,
तब झुक २ झोला खाय छे रे ।। थांरो० १० ।।

रावण सरीखे राव चले गये,
थारो कौन खुदाय छे रे ।। थांरो० ११ ।।

अब भी चेतो भरलो खजाना ।
इस 'पन्नालाल' समझाय छे रे ।। थांरो० १२ ।।

卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—फागण की)

सट्टा छोड़ दे २ सजनियां थारो जिय सुख पावे रे ।। टेर ।।

आरतध्यान रहे निशिवासर, धर्म ध्यान नहीं सुहावे रे ।
घड़ी २ में भाव तार से, थारे आवे रे ।। सट्टा. १ ।।

जोशी ज्योतिषी बावा जोगी, ज्यांने जाय मनावे रे ।
भांग धतुरा गांजा सुलफा, वां ने पावे रे ।। सट्टा. २ ।।

एक चान्स का सौ रुपिया ले, जोशी तेजी बतावे रे ।
मिली नहीं जोशी की बात तब जीय घबरावे रे ।। सट्टा. ३ ।।

चांदी मांही चांद्या पड्या, सोनो सूत्र दिखावे रे ।
रुई मांही पड्यो रोज तब, आंक लगावे रे ।। सट्टा. ४ ।।

पूर्व भव में गुप्त दान देने से सुखिया थावे रे ।
भूमि निधान अरु सट्टा में धन वो ही कमावे रे ।। सट्टा. ५ ।।

'पन्नालाल' के कहने ऊपर, जो कोई ध्यान लगावे रे ।
सँतोषामृत पान करे वो सुखिया थावे रे ।। सट्टा. ६ ।।

卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—कोरो काजलियो)

थे मनुष्य पणा नी मोज अब तो मानियो ॥ टेर ॥

मौज नहीं है खाने में, नहीं मोज कमाने में ।
या सजन हमारी बात अब तो मानियो ॥ थे. १ ॥

मोज न मोटर गाड़ी में, नहीं नजीली लाड़ी में।
या मोज नहीं है मौत दिल में जानियो ॥ थे. २ ॥

मौज नहीं है फैशन में, अरु अँग्रेजी केशन में ।
यह किरकट केरा सांग मौज न मानियो ॥ थे. ३ ॥

मोज न मल मल नहाने में, नहीं बढ़िया इतर लगाने में ।
यूँ व्यर्थ मौज रे मांय जन्म गमाइयो ॥ थे. ४ ॥

मोज बड़ी है खद्दर में, अरु मुनिजन की चद्दर में ।
या मुंहपत्ती मुंह पे बांध, संयम ठानियो ॥ थे. ५ ॥

मोज दान के देने में, प्रभू नाम के लेने में ।
या बांधी तप तलवार, वीर कहाइयो ॥ थे. ६ ॥

मोज करो जम्बु जैसी, शालिभद्र से महरिषि ।
या धन्ना मुनि सी मोज, दिल में ठानियो ॥ थे. ७ ॥

'पन्नालाल' का यह कहना, नित नई मोज करो सजना ।
थांरो जन्म मरण मिट जाय, शिव सुख पामियो ॥ थे. ८ ॥



卐 चूनड़ी स्तवन 卐

(तर्ज—ख्याल की)

पंचरंग चूनड़ी, थाने ओढाये थांको वीर जी ॥ टेर ॥

सदाचार, सौजन्य, श्रेष्ठपन, शियल, सम्पत, सुखकार ।
यह पचरंगी ओढ़ चूनड़ी, करियो मोज अपार जी ॥ पच.१ ॥

या चूनडी ओढ़ी राजुल ने, अरु चन्दन बाला जान ।
वा चूनड़ी थांने ओढ़ावूं, ओढ़ो धरकर प्यार जी ॥ पच. २ ॥

वेला तेला और पचोला, चांद तारा लगे सार ।
पचरंग चूनड़ी धारो वहनों, थारो सदा रहे सौभाग जी ॥ पच. ३ ॥

द्वेष ईर्ष्या कलह कपट का, इनके न मैल लगावो ।
भक्ति करो गुरुदेव की वहनों, धर्म में धूम मचाओजी ॥ पच. ४ ॥

गुरुभक्ता मेरी प्यारी बहनों, यह आशीष हमारी ।
सुख सम्पत सौभाग्य तुम्हारा, रहे सदा सुखकारी जी ॥ पच.५ ॥



卐 उपदेशी स्तवन 卐

(तर्ज—सीता माता की गोदी में)

तुम तो सुणज्यो शीयल सुरङ्गी, बांधो पचरंग पागड़ी ॥ टेर ॥

तुम तो सुणज्यो धर दे कान, तुमको सतगुरु देवे ज्ञान ।
भइयां छोड़ो मान की तान,
दिल अब खुश हो जावे छोड़ो—अविद्या नागड़ी ॥ तुमतो० १ ॥

समता रंग कसुम्बो रंगवावो, अन्दर जल गुलाब रलवावो ।
विविध तपस्या लहर नकावो,
भक्ति गुरु की करके बांधो–रँगीली पागड़ी ॥ तुमतो० २ ॥

कीना जिन्होंने पांच ही सागे, वे तो बांधी पचरँग पागें ।
जिनसे कर्म भर्म सहु भागे,
थे तो कर उपवास के खैर–मनालो पागड़ी ॥ तुमतो० ३ ॥

बांया चुंदड़ लीवो मनाय, भाया पगड़ी लेवो रँगाय ।
जिससे जन्म मरण मिट जाय,
या 'मुनि पन्नालाल' की कहन श्रद्धलो सांची वातड़ी ॥तुमतो० ४॥

~

卐 उपदेशी - स्तवन 卐

(तर्ज– साता कीज्योजी)

घणा सुख पावोला २ जो गुरु हुक्म सें प्रेम करावोला ॥ टेर ॥

द्वेष ईर्षा दिल से हटाकर, प्रेम का मेह बरसावोला ।
घर २ माहीं मंगल माला, खुशियां मनावोला ॥घणा. १॥

ऐसा अपूर्व अवसर पाके, हाथ से नाय गमावोला ।
मुझे भरोसा है भक्तों का मान लिरावोला ॥घणा. २॥

प्रेम परस्पर करके सारा, कुरीति दूर हटावोला ।
मृत्यु भोज अरु वर विक्रय नें बन्ध रखावोला ॥घणा. ३॥

गुरु नानक की पुष्पवाटिका, निरखी मन हरषावोला ।
सुख सम्पत अरु लीला लक्ष्मी, दिन २ दूणी पावोला ॥घणा. ४॥

~

उपदेशी-स्तवन

([illegible])

सज्जनों सुण लीज्यो, या सद् शिक्षा सुखकार—
दिल में धर लीज्यो ॥ टेर ॥

प्रेम परस्पर पालीज्यो, धारीज्यो गुरु की आण ।
अवगुण तजो गुण को ग्रहो, ज्यों पावनो सुख सुजाण ॥ स० १ ॥

भूमि यह वीरों तणी, तुम वीरों की सन्तान ।
वीर वणीय वनी रहज्यो, कांई अनपत [illegible] की शान ॥ स० २ ॥

शेर बब्बर ज्यूं गून्जज्यो, कायरता दूर हटाय ।
आनन्द मंगल वरतसी, थाने सहाय करे जिनराय ॥ स० ३ ॥

सुख पाई मत भूलना, कांई देव-गुरु-धर्म ध्यान ।
निशदिन रहिज्यो रङ्ग में, तजो कुमति तोफान ॥ स० ४ ॥

गुरु नानक की वाटिका, रहिज्यो सब्ज हमेश ।
थां तूटी दिवी सम्पदा, तब टांटोटी फलेश ॥ स० ५ ॥

उगणीसे पीच्याणवें, करी चोमासो विहार ।
यह शिक्षा दिल धारज्यो थांरो सफल होय जमवार ॥ स० ६ ॥

"पन्नालाल" कहे सज्जनों, कांई धरो धर्म से प्रेम ।
मन वच काया दृढ़ करी, निश्चल रखियो नेम ॥ सज्जनों० ७ ॥

卐 उपदेशी - स्तवन 卐

सुनो श्रावकजी २ मांरी सीख अमल में लावो,
ज्यूं भव भव सुखियां थावो ॥ टेर ॥

थे शहर का धोरी श्रावक नाम धरावो,
पर मिथ्यामत की मान्यता नाय हटावो।
कुदेवों के २ थे झुक झुक धोक दिरावो,
क्यों समकित नाश करावो ॥ सुनो. १ ॥

कैसा था अरणक श्रावक समकित धारी,
जिनकी महिमा आगम मांय उच्चारी।
उन वीरों सा कछु वीरपना दिखलावो,
ज्यूं नरभव सफल करावो ॥ सुनो. २ ॥

कैसी थी सत्य की छाप जगत में थांरी,
राजा महाराजा मानते बात तुम्हारी।
हा ! कैसी दशा अब झूठा हलप उठावो,
कछु दिल में ना शरमावो ॥ सुनो. ३ ॥

अब सब हिल मिल प्रेम बढ़ावो,
जैन जाति की रक्षा करावो।
कछु बड़पन की शान को राख लिरावो,
ज्यूं सुयश जग में पावो ॥ सुनो. ४ ॥

~

—: श्री प्राज्ञ जिनागम द्विपंचाशिका :—

अर्थात्

* प्राज्ञ - बावनी *

— दोहा —

अर्हन्, सिद्ध, आचार्य पुनि, उपाध्याय, अणगार ।
'प्राज्ञ' नमत तस चरण में, चहत ज्ञान रस धार ॥ १ ॥

* अर्थ *

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं अनगार (सर्व साधु) इन पांचो पदो के चरणो मे नमस्कार करता हुआ मैं ज्ञान रूपी अमृत की धारा को चाहता हूं ॥ १ ॥

— दोहा —

आदि नहीं षट् द्रव्य की, और अन्त भी नाँय ।
लोक सो ही षट् द्रव्य है, 'प्राज्ञ' द्रव्य लोकाय ॥ २ ॥

* अर्थ *

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल द्रव्य, जीवास्तिकाय एवं पुद्गलास्तिकाय इन छह द्रव्यो की न आदि है और न अन्त ही है । ये छहों द्रव्य अनादि और अनन्त है । यह लोक षड्द्रव्यात्मक है और षड्द्रव्य ही लोक की स्थिति है ॥ २ ॥

— दोहा —

इतनो ज्ञान अगाध है, जितनो सायर नीर ।
'प्राज्ञचन्द्र' कितनो कथे, ज्यूँ कच पशू शरीर ॥ ३ ॥

* अर्थ *

जिस प्रकार समुद्र की अगाध जल राशि का माप नही किया जा सकता, उसी प्रकार ज्ञान-सागर भी इतना अगाध है, अनन्त है कि उसे हम सीमा मे नही वांध सकते । पशु के शरीर पर रही रोम-राशि की जैसे गिनती नही की जा सकती वैसे ही कवि ज्ञान की विशालता को नही बता सकता है ॥ ३ ॥

— दोहा —

ईश तणी अवगाहना, धनु त्रय - शत तेंतीस ।
बत्तिस अंगुल ऊपरे, 'प्राज्ञ' कथी जगदीश ॥ ४ ॥

* अर्थ *

ईश अर्थात् सिद्ध भगवान् की उत्कृष्ट अवगाहना - ३३३ धनुष और ३२ अंगुल की कहीं है । (मध्यम अवगाहना ४ हाथ १६ अंगुल की तथा जघन्य अवगाहना १ हाथ ८ अगुल की है ऐसा अरिहन्त प्रभु का कथन है ॥४॥

— दोहा —

उत्सेधांगुल और पुनि, परमांगुल परिमान ।
आत्मांगुल तीजा परख, 'प्राज्ञ' मापलो मान ॥ ५ ॥

* अर्थ *

अनुयोग द्वार सूत्र में ३ प्रकार के अगुल माने है— १ उत्सेधांगुल, २ प्रमाणांगुल, ३ आत्मागुल । इन तीनों का विशेष विवरण जानने के लिये अनुयोग द्वार का 'क्षेत्र प्रमाण निरूपण' अधिकार पढ लेना चाहिये ॥ ५ ॥

— दोहा —

ऊर्ध्व अधो अरु मध्य ही, तीनों लोक प्रमाण ।
चौदह राजु सुअंग सब, 'प्राज्ञ' सत्य गुरु वाण ॥ ६ ॥

* अर्थ *

ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक एव अधोलोक इस प्रकार लोक के तीन विभाग है । तीनों विभागों से मिलकर यह एक लोक १४ राजु का ऊँचाई वाला है । विशेष जानकारी के लिये जैन-तत्व प्रकाश आदि ग्रन्थो को पढ़े ॥ ६ ॥

— दोहा —

ऋषभादिक चौबीस जे, वर्तमान जिनदेव ।
एक सहस अठ लक्षणे, 'प्राज्ञ' करत तसु सेव ॥ ७ ॥

* अर्थ *

ऋषभदेव स्वामी से लेकर महावीर स्वामी तक वर्तमान में (इस अवसर्पिणी काल में) जो चौबीस तीर्थ कर हो गये है वे सभी १००८ लक्षणों के धारक थे । ऐसे अरिहन्त देव की उपासना करनी चाहिए ॥ ७ ॥

— दोहा —

ऋषी, मुनी, ज्ञानी, गुणी, गुण सत्ताइस गर्क ।
'प्राज्ञ' कहत तसु तरण में, कौन उठावत तर्क ॥ ८ ॥

❀ अर्थ ❀

अनगार के २७ गुणो से युक्त, गुणवान, ज्ञानी ऋषि मुनियो के द्वारा संसार सागर पार किये जाने मे कौन व्यक्ति सशय करेगा ? अर्थात् कोई नही ॥ ८ ॥

— दोहा —

लृ + अकार व्याकरण में, माना छह अरु चार ।
लेट् लकार का वेद में, 'प्राज्ञ' प्रयोग अपार ॥ ९ ॥

❀ अर्थ ❀

पाणिनि आचार्य ने व्याकरण शास्त्र मे लृ + अकार अर्थात् लकार दस प्रकार का माना है । उन्हे यहां छ और चार की सख्या मे पृथक् रूप मे बताने का कारण यह है कि छह लकार टित् हैं जैसे-लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट् और लोट् । तथा चार डित् लकारें है जैसे-लङ्, लिङ्, लुङ् लृङ् । इन दसो लकारो मे से पांचवा लकार- लेट् - का प्रयोग वैदिक सस्कृत मे ही होता है ॥ ९ ॥

— दोहा —

लृप्ता तृप्ता ना बने, संज्ञा चार सुजान ।
उत्पादक गति चार की, 'प्राज्ञ' तजत सुख खान ॥१०॥

❀ अर्थ ❀

लृप्ता अर्थात् लालसा । व्यक्ति के हृदय मे नित्य नई लालसायें बनती रहती हैं । उनका कभी अन्त नही आता है । आहार सज्ञा, भय सज्ञा, मैथुन सज्ञा और परिग्रह संज्ञा, इन चारो सज्ञाओ मे फसा हुआ वह अपने विवेक को खोकर चारों गतियो मे भटक जाता है और अनन्त २ दु:खो को प्राप्त हो जाता है । जो इन चारो संज्ञाओ को तथा बढती हुई लालसाओ को त्याग देता है वह सुखों को प्राप्त कर लेता है ॥१०॥

— दोहा —

एकोऽस्मि मन्तव्य शुभ, राखे रातो दीह ।
भौतिक पथ माले नहीं, 'प्राज्ञ' परम ज्ञानीह ॥११॥

❀ अर्थ ❀

जो परम ज्ञानी पुरुष है, जिसे अध्यात्म तत्व की संप्राप्ति हो चुकी है । वह अहर्निश एकत्व भावना से ही भावित रहता है । इस संसार में "एगोहं नत्थि में कोई" मैं अकेला ही हूं । मेरा अपना कोई भी पदार्थ नही है । ये सभी पदार्थ वाह्य है । ऐसे शुद्ध विचारों में रमण करता हुआ वह भौतिक पदार्थो मे आसक्त नही होता है ॥११॥

— दोहा —

ऐक्य करी त्रय योग को, संवर करणी लीन ।
सो न रुले संसार में, 'प्राज्ञ' आतमवश कीन ।।१२।।

❊ अर्थ ❊

जो आत्मा अपने मन, वचन और काया के योगों का एकीकरण करके संवर की साधना मे लीन हो जाता है, वह आस्रवों का त्यागी संयमी संसार में नही भटकता है ।।१२।।

— दोहा —

ओपम शुभ षोडश सुखद, गीतारथ की मान ।
'प्राज्ञ' पढो नित प्रेम से, उत्तराध्ययन वखान ।।१३।।

❊ अर्थ ❊

गीतार्थ (बहुश्रुत) मुनि को १६ श्रेष्ठ उपमाओं से उपमित करते हुए उसकी महिमा, तेजस्विता, आन्तरिक शक्ति, कार्य क्षमता एवं श्रेष्ठता महत्ता को बताया है। इनका वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के ११ वें अध्याय में किया गया है ।।१३।।

— दोहा —

और आश किस काम की, श्वासोच्छ्वास विचार ।
खास आश शिव धाम की, 'प्राज्ञ' तजो पंपार ।।१४।।

❊ अर्थ ❊

ससार की अन्य आशाओं में अपने श्वासोच्छ्वास को समाप्त करना उचित नही है । सभी पंपालों का परित्याग कर एक मात्र मुक्ति की प्राप्ति में ही सतत प्रयास करते रहना चाहिए ।।१४।।

— दोहा —

अंक बड़ो नव को निपट, होत कभी ना भंग ।
इनको जो पाले सदा, 'प्राज्ञ' कोटि तसु रंग ।।१५।।

❊ अर्थ ❊

नौ के अंक का पहाड़ा अभग होता है । वह अपने मूल योग से कभी खण्डित नही होता । जैसे ९ × २ = १८ अर्थात् १ + ८ = ९ इसी प्रकार अन्त तक गिनते रहने पर भी ९ का योग ही आता है । साधक को भी ब्रह्मचर्य-अर्थात् आतमरमण के लिए भगवान ने ९ वाड (ब्रह्मचर्य रक्षा के ९ उपाय) बताये है । साधक यदि मनसा, वाचा, कर्मणा उनका सर्वथा निर्दोष

पालन करता है तो वह परम तेजस्विता को प्राप्त होता है। नव बाडों का विवेचन उत्तराध्ययन सूत्र के १६ वे अध्याय मे विस्तार से है ।।१५।।

— दोहा —

अःसन्नी एकान्त तो, है चौविस में आठ ।
तेऊ, वायू छोरि के, 'प्राज्ञ' लेत भल पाठ ।।१६।।

❀ अर्थ ❀

चौवीस दण्डकों मे एकान्त असन्नी (असज्ञी) के आठ दण्डक है- ५ स्थावर और ३ विकलेन्द्रिय । इन चौबीस दण्डको मे से तेउकाय व वायुकाय को छोड़कर शेष दण्डकों के जीव सम्यक्त्व आदि शुभ भावो को धारण कर सकते है ।।१६।।

— दोहा —

कर्म आठ जग जीतना, दुर्धर कहा जिनेश ।
जे जीते तामे सुगुन, 'प्राज्ञ' होत परवेश ।।१७।।

❀ अर्थ ❀

जैन दर्शन मे कर्मो की संख्या आठ है । इन आठो कर्मो को जीतना जिनेश्वर देव ने अति कठिन कहा है । जो आत्मा इन कर्मो को जीत लेता है उसमे अनन्त श्रेष्ठ गुण प्रवेश कर जाते है ।।१७।।

— दोहा —

खड्ग, छत्र, मणि, कांगणी, चक्र, चर्म, दण्डीय ।
सातों एकेन्द्रिय रतन, 'प्राज्ञ' चक्री जानीय ।।१८।।

-: अर्थ :-

चक्रवर्ती के १४ रत्नो मे ७ एकेन्द्रिय रत्न है और ७ पचेन्द्रिय रत्न है । प्रत्येक रत्न की एक - एक हजार देव सेवा करते है । ७ एकेन्द्रिय रत्नों के नाम यहा वताये है । वे इस प्रकार है —१ खड्ग, २ छत्र, ३ मणि, ४ कागणी, ५ चक्र, ६ चर्म, ७ दण्ड रत्न ।।१८।।

— दोहा —

गाथापति, सेनापति, हय, गय, श्री देवीय ।
पूरोहित अरु वार्धिक, 'प्राज्ञ' पंच इन्द्रीय ।।१९।।

-: अर्थ :-

यहा पर चक्रवर्ती के ७ पचेन्द्रिय रत्नो के नाम गिनाये है । वे निम्न

लिखित है:– १ गाथापति, २ सेनापति, ३ अश्व, ४ गज, ५ श्री देवी, ६ पुरोहित और ७ बढई रत्न ॥१६॥

— दोहा —

घ्राण, रसन, चख, कर्ण, पुनि, त्वचा, इन्द्रि ये पंच ।
बीस + तीन अस विषय हैं, 'प्राज्ञ' करो वश टंच ॥२०॥

-: अर्थ :-

श्रोत्रेन्द्रिय (कान), चक्षुरिन्द्रिय (आख), घ्राणेन्द्रिय (नाक), रसनेन्द्रिय (जीभ) और स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) ये पाच इन्द्रियां हैं तथा इनके २३ विषय (और २४० विकार) है । इन पांचों इन्द्रियो को वश में रखना चाहिए ॥२०॥

— दोहा —

चतुर्गती सुर, नर, तिरी, नर्क आदि है चौक ।
चेतन कर्माधीन हो, 'प्राज्ञ' खा रहे झौक ॥२१॥

-: अर्थ :-

आगमों में चार गतियो का उल्लेख है । यह आत्मा कर्मों के आधीन होकर नरक गति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति रूप संसार में झौंके खा रहा है ॥२१॥

— दोहा —

छः काया ने ओलखो, पृथ्वी, अप्, अग्नीय ।
वायु, हरी, त्रस आदि दे, 'प्राज्ञ' जीव जानीय ॥२२॥

-: अर्थ :-

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय ये छह काया है । इन छहों काया के स्वरुप को पहचानो । ये सब सजीव है ॥२२॥

— दोहा —

जयणा षट् जिनवर कही, पाल्यां परमानन्द ।
आणा धर्म अराधतां, 'प्राज्ञ' रुकत निज छन्द ॥२३॥

-: अर्थ :-

श्री दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्याय में छह प्रकार की यतना कही गयी है । 'जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे, जयं सये, जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बधई ।।' चलने, खड़े होने, बैठने, शयन करने, खाने और बोलने

में विवेक रखने पर ही आत्मा कर्म-बन्धन से बच सकती है। भगवान की इस आज्ञा की आराधना से आत्मा की स्वच्छन्दता समाप्त हो जाती है ॥२३॥

— दोहा —

झाझा भाव प्ररुपिया, चार देशना मांय ।
भव्य जीव समझै सदा, 'प्राज्ञ' तास गुण गाय ॥२४॥

-: अर्थ :-

वीतराग सर्वज्ञ प्रभु ने अपनी चार प्रकार की देशनाओ (आक्षेपणी, विक्षेपणी, सवेदनी और निर्वेदनी) मे सभी पदार्थो का स्वरुप बहुत ही स्पष्ट रूप से प्ररुपित किया है। जो भव्य जीव उन्हें समझ कर अपना कल्याण कर लेते हैं उन के गुण गान गाये जाते हैं ॥२४॥

— दोहा —

टाटी पाटी पाप री, तांके भेद अठार ।
भारी चेतन को करत, 'प्राज्ञ' हृदय से टार ॥२५॥

-: अर्थ :-

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह आदि १८ भेद पाप के कहे गये है। ये आत्मा को भारी बनाते है, अत. इनको त्याग देना चाहिए ॥२५॥

— दोहा —

ठीक ठिकाना जीव रा, दशवैकालिक आठ ।
चव्या चतुर्थाध्ययन में, 'प्राज्ञ' पेखलो पाठ ॥२६॥

-: अर्थ :-

श्री दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में जीवों की उत्पत्ति के ८ स्थान बताये है। वे इस प्रकार है.—

१. अडया (अण्डज) अण्डे से पैदा होने वाले जीव ।
२. पोपया (पोतज) पोत से पैदा होने वाले जीव ।
३ जराउया (जरायुज) जड़ के साथ पैदा होने वाले जीव ।
४. रसया (रसज) रसच्युत पदार्थो मे पैदा होने वाले जीव ।
५. संसेइमा (सस्वेदिम) पसीने से पैदा होने वाले जीव ।
६. सम्मुच्छिमा (सम्मूच्छिम) १४ स्थानो मे पैदा होने वाले जीव ।
७. उब्भिया (उद्भिज्ज) पृथ्वी फोड़ कर पैदा होने वाले जीव ।
८. उववाइया (उपपातिक) देव व नरक मे उत्पन्न होने वाले जीव ।

— दोहा —

डिगे जीव ऊँचो चढत, माठा अध्यवसाय ।
याँ ते रोको प्रति समय, 'प्राज्ञ' भाव सुध लाय ॥२७॥

-: अर्थ :-

आत्मा अपने क्षायोपशमिक आदि भावों से शुद्ध परिणाम पाकर ऊपर उठता है, गुणस्थानों पर आरोहण करता है, किन्तु ज्यों ही माठे अर्थात् बुरे भाव आत्मा में आकर आ धमकते है त्यों ही ऊपर को उठता हुआ आत्मा पतन की ओर चला जाता है। अतः शुभ या शुद्ध अध्यवसायों से अशुभ परिणामों को प्रतिक्षण रोकने का प्रयास करो ॥२७॥

— दोहा —

ढाणा बेलू रेत रा, डाला पाला चार ।
वर्णविया अनुयोग में, कहे 'प्राज्ञ' अणगार ॥२८॥

-: अर्थ :-

श्री अनुयोग द्वार सूत्र में सख्या प्रमाण का निरूपण करते हुए औपम्य (उपमा से बताई जाने वाली) संख्या का वर्णन किया है। जिसमें पाला (पल्योपम) का अधिकार विस्तार सहित आता है, उसे अवश्य पढना चाहिए ॥२८॥

— दोहा —

णमोक्कार पद पंच है, चार सम्पदा सार ।
गुण वर्णित है चार में, 'प्राज्ञ' अवर पद टार ॥२९॥

-: अर्थ :-

णमो अरिहताण, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूण, ये नवकार मन्त्र के पांच पद है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ये चार सम्पदाये है। इस नमस्कार मन्त्र की महत्ता– "एसो पंच णमुक्कारो ·········· हवइ मगलं" इस गाथा के चार पदों में बताते हुए इसे सभी मंगलों में प्रधान मगल कहा है ॥२९॥

— दोहा —

तप द्वादश भेदे तपो, होय निर्जरा कर्म ।
हलको चेतन हद हुवे, 'प्राज्ञ' लहत शिव शर्म ॥३०॥

-: अर्थ :-

अनशन आदि ६ बाह्य तथा प्रायश्चित्त आदि ६ आभ्यन्तर यों १२

प्रकार का तप बताया है। इनकी आराधना करने से कर्मो की निर्जरा होती है। कर्मों की सर्वांश निर्जरा होने पर यह आत्मा हलका होकर अपने स्वाभाविक गुण से ऊपर उठता है और अनन्त शिव-सुख को अर्थात् सच्चिदानन्द मय मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥

— दोहा —

थानक चौदह मांय ने, सम्मूर्च्छिम उपजाय ।
दया जिन्हों की पालनी, 'प्राज्ञ' प्रेम उर लाय ॥३१॥

-: अर्थ :-

चौदह अशुचि स्थानों पर सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की उत्पत्ति हुआ करती हैं। उनकी रक्षा करने के लिये उनके साथ आत्मीय भाव रखना चाहिए ॥३१॥

— दोहा —

दान, दया, दम तीन है, आतम करण उद्योत ।
दाख्या त्रिशलानन्द ने, 'प्राज्ञ' जगत हिय ज्योत ॥३२॥

-: अर्थ :-

श्री तीर्थंकर देव ने आत्मोत्थान के लिए दान, दया और दम (इन्द्रिय दमन) इन तीन मार्गों की प्ररूपणा की है। इनकी आराधना करने से आत्मा मे प्रशस्त भावो की ज्योति जगमगा उठती है ॥३२॥

— दोहा —

ध्यान चार, ठाणे चतुर, जां में दोय प्रशस्त ।
जो ध्यावे केवल वरे, 'प्राज्ञ' दोष हर हस्त ॥३३॥

-: अर्थ :-

ठाणाग सूत्र के चौथे ठाणे मे चार ध्यानो का वर्णन है। उनके नाम ये है– आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इनमें से प्रथम के दो ध्यान अप्रशस्त है, अशुभ है और पश्चात् के दो ध्यान प्रशस्त है, शुभ है। जो इन दो शुभ ध्यानों को ध्याता है वह घातिकर्मों को समाप्त कर केवल ज्ञान को पा लेता सभी दोषो से रहित हो जाता है ॥३३॥

— दोहा —

न्याय ग्रन्थ नयनाँ लखो, जिनमें चार प्रमाण ।
हेतु, तर्क, बुद्धि, गमा, 'प्राज्ञ' लहे पहिचान ॥३४॥

-: अर्थ :-

अनुयोग द्वार सुत्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमान ये ४ प्रमाण माने है।

न्याय ग्रन्थ में दो प्रमाण कहे गये है–प्रत्यक्ष और परोक्ष। और इन दोनो के अवान्तर अनेक भेद माने है।

प्रत्येक पदार्थ को पहचानने के लिए हेतु - तर्क - बुद्धि और गमा (आगम) इन चारों का सहारा अवश्य लेना चाहिए, जिससे पदार्थो का सही बोध हो सके ।।३४।।

— दोहा —

पाँच महा परमाद हैं, तेरह तसु परिवार।
आठ, अठावन शतक हैं, 'प्राज्ञ' करो सुविचार ।।३५।।

-: अर्थ :-

मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा ये पांच प्रमाद है। तेरह काठिया इनका परिवार है, जो ये है:— आलस्य, मोह, निद्रा, अहकार, क्रोध, कृपणता, शोक, लोभ, भय, रति, अरति, अज्ञान और कुतुहल। इन प्रमादों के कारण ही कर्मो की ८ मूल प्रकृतियों का एवं १४८ व १५८ उत्तर प्रकृतियों का बन्ध होता है। अतः हमे इन प्रमादों के दुष्परिणामो का विचार करके इन से दूर रहना चाहिए ।।३५।।

— दोहा —

फिर्यो वक्र गति चक्र में, जे दण्डक चौवीस।
जिनमें विरती दोय है, 'प्राज्ञ' अपर वावीस ।।३६।।

-: अर्थ :-

वक्र गति रूप इन २४ दण्डकों के चक्र में यह आत्मा अनादि काल से चक्कर खाता आ रहा है। इन २४ दण्डकों मे केवल दो दण्डक-तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य - ही व्रती - विरति अर्थात् व्रत धारण करने वाले है। शेष २२ दण्डक तो अव्रती ही है ।।३६।।

— दोहा —

बुद्धी प्रथमोत्पातिका, द्वितिया विनया जान।
कार्मिकी परिणामिकी, 'प्राज्ञ' चतुर्धी मान ।।३७।।

-: अर्थ :-

श्री नन्दी सूत्र मे पांच ज्ञानों का वर्णन है। उसमें मतिज्ञान के भेदों में ४ प्रकार की बुद्धियां बताई है :–

औत्पत्तिकी– पूर्व में बिना पढे, सुने व देखे ही पूछे गये प्रश्न का चमत्कारी उत्तर देने वाली बुद्धि ।

वैनयिकी– गुरुजनों के विनय से प्राप्त बुद्धि ।

कार्मिकी– कार्य करते करते उत्पन्न होने वाली कुशलता बुद्धि ।

पारिणामिकी– आयु की परिपक्वता के साथ प्राप्त बुद्धि ।।३७।।

— दोहा —

भेद विज्ञान विचार बिन, मिले न आत्मिक ज्ञान ।
आतमज्ञान बिन उन्नती, 'प्राज्ञ' क्रिया गत प्राण ।।३८।।

-: अर्थ :-

आत्मा और कर्मो का सयोग स्वाभाविक नही है, अपितु वैभाविक है । इस वैभाविक दशा को समझ लेना एव आत्म स्वरुप मे रम जाना ही भेद विज्ञान है । इस भेद विज्ञान के विना आत्मा को अपने स्वरूप का भान नही हो पाता है, और आत्मिक बोध के विना की गई क्रिया प्राणवती नही हो पाती हैं ।।३८।।

— दोहा —

मारग श्री जिनधर्म के, सुन्दर चार विचार ।
दान, शील, तप, भावना, 'प्राज्ञ' मोक्ष दातार ।।३९।।

-: अर्थ :-

जैन धर्म की आराधना के ४ सुन्दर मार्गो का इस दोहे मे निर्देश किया है । दान, शील, तप, और भावना की शुद्ध परिणामो के साथ की गई साधना मोक्ष का कारण है ।।३९।।

— दोहा —

युगलिक नर कर्तव्य बिन, पावत सुक्ख-समाज ।
मर कर जाते देव में, 'प्राज्ञ' पुण्य को पाज ।।४०।।

-: अर्थ :-

कर्मभूमि, अकर्मभूमि एव अन्तर्द्वीपो में उत्पन्न योगलिक मनुष्य असि, मसि व कृषि आदि के कार्य किये बिना ही सभी प्रकार के सुख-समूह को कल्पवृक्षो के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं । वे हृदय से सरल, भद्र एव विनीत होते हैं अतः वे मनुष्यायु पूर्ण कर देवगति में ही जन्म धारण करते है ।।४०।।

— दोहा —

राशि युग इस लोक में, जीव अजीव सुपाठ ।
पणशत ÷ तिरेसठ जीव के, 'प्राज्ञ' पांच सौ साठ ।।४१।।

-: अर्थ :-

इस संसार में दो राशिया है:- एक जीव राशि (समूह) तथा दूसरी अजीव राशि । जीव राशि के ५६३ भेद है और अजीव राशि के ५६० भेद है ।।४१।।

— दोहा —

लोकालोक सरूप को, कथगे केवलनाण ।
लोक सरूप चितारतां, 'प्राज्ञ' परम निर्वाण ।।४२।।

-: अर्थ :-

केवल ज्ञानी महापुरुषों ने अपने केवल ज्ञान और केवल दर्शन से लोक और अलोक के स्वरूप को जानकर व देखकर हमारे सामने प्रस्तुत किया है । बारह भावनाओं में लोक भावना को ध्याता हुआ साधक लोक के स्वरूप का चिंतन करता हुआ सम्यक्त्व-रत्न की प्राप्ति करता है जो मोक्ष का अनिवार्य अंग है ।।४२।।

— दोहा —

वासुदेव, बलदेव, पुनि, प्रति हरि, नव नव पेख ।
चौवीसों जिन, चक्रपति, द्वादश 'प्राज्ञ' सुलेख ।।४३।।

-: अर्थ :-

२४ तीर्थ कर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव यों सब मिलकर ६३ श्लाघनीय महापुरुष है ।।४३।।

— दोहा —

शल्य तीन तजते सुखी, हो रत्नत्रयी संग ।
करते तीन अराधना, 'प्राज्ञ' नमत उत्तमंग ।।४४।।

-: अर्थ :-

माया, निदान और मिथ्यात्व इन तीनो शल्यों (कांटो) का जो परित्याग कर देता है, वह सुखी बन जाता है । इन तीनों शल्यों का त्याग करने वाला आत्मा ही 'रत्नत्रयी' का अर्थात् सम्यग् ज्ञान, दर्शन व चारित्र को पा सकता है । इस रत्नत्रयी की आराधना करने वाले महापुरुषों को हमारा उत्तमांग - सिर नमता है ।।४४।।

— दोहा —

षट् लेश्या लालित्य बन, भ्रमत जीव चहुँ फेर ।
तजत लहत भव सिन्धु तट, 'प्राज्ञ' कहत हिय हेर ।।४५।।

-: अर्थ :-

कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल इन छहों शुभाशुभ लेश्याओ का रसिक बनकर यह जीव चारों गतियो मे परिभ्रमण कर रहा है। इन सभी लेश्याओं का परित्याग करने पर यह आत्मा ससार के पार पहुंच जाता है, यह निश्चित है ॥४५॥

— दोहा —

सूक्ष्म जीव निगोद के, साधारण आदीय ।
पेंसठ सहस अरु पंचशत, 'प्राज्ञ' जन्म छत्तीय ॥४६॥

-: अर्थ :-

सूक्ष्म निगोद एवं साधारण वनस्पति काय के जीव १ मुहूर्त मे ६५५३६ पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस जन्म व मरण करते है ॥४६॥

— दोहा —

हास्यादि षट् को सटक, और वेद त्रय जान ।
सोलह भेद कषाय के, 'प्राज्ञ' तजे पुण्यवान ॥४७॥

- अर्थ :-

मोहनीय कर्म के २ भेद है दर्शन मोह और चारित्र मोह । इनमे चारित्र मोह के २५ भेदों को तजने वाला जीव वस्तुत. पुण्यवान् है । इनसे दूर हो जाने पर ही साधना की सफलता है। वे २५ भेद इस दोहे मे गिनाये है, जो इस प्रकार है – क्रोध, मान, माया और लोभ के अनन्तानुवन्धी चौक, अप्रत्याख्यानावरण चौक, प्रत्याख्यानावरण चौक तथा सज्वलन चौक यो १६, साथ ही हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये ६ और स्त्रीवेद, पुरुषवेद व नपु सक वेद ये २५ प्रकार चारित्र मोह के है ॥४७॥

— दोहा —

क्षान्त्यादिक दिक् धर्म है, दसवें ठाणे देख ।
मुनि गुण राता जे प्रवर, बधियो 'प्राज्ञ' विवेक ॥४८॥

-. अर्थ :-

स्थानाग सूत्र के दसवे स्थान मे साधु के १० यतिधर्मो का समुल्लेख है उनके नाम है— १. खति=क्षमा । २. मुत्ती=निर्लोभता । ३ अज्जवे=सरलता । ४. मद्दवे=नम्रता । ५ लाघवे=लाघवता । ६. सच्चे=सत्यता । ७. सजमे=सयमता । ८. तवे=तपस्या । ९. चियाए=त्याग । १० वंभचेरवाऐ=ब्रह्मचर्यता ।

इन १० यतिधर्मों में जो मुनि रत है, संलग्न है उसका विवेक वृद्धिगत हो जाता है तथा गुणों में रमण कर वह धर्म प्राण बन जाता है ।।४८।।

— दोहा —

त्रसनाली ऊँची चढी, अरुणोदधि से जान ।
ब्रह्मकल्प तक पसरहि, सूक्षम 'प्राज्ञ' बयान ।।४६।।

-: अर्थ :-

अरुणोदधि से उठकर त्रसनाली (कृष्णराजि) ऊपर की ओर पांचवे देवलोक ब्रह्मकल्प तक पहुंची हुई है। इसका सूक्ष्म विवेचन सूत्रो से जानना चाहिए ।।४६।।

— दोहा —

ज्ञान पंच प्रख्यात जग, मति, श्रुत अरु अवधीय ।
मनपर्यव केवल सकल, द्रव्य 'प्राज्ञ' जानीय ।।५०।।

-: अर्थ :-

नन्दी सूत्र, अनुयोग द्वार सूत्र आदि में पांच ज्ञानों का अच्छा विवेचन किया गया है । ५ ज्ञानो के नाम इस प्रकार है- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान तथा केवलज्ञान ।।५०।।

— दोहा —

-: प्रशस्ति - पाठ :-

स्वर सोलह हैं अति सुखद, अरु व्यञ्जन चौतीस ।
यथाबुद्धि इन पे रची, श्री जिन-गिरा जगीस ।।५१।।

-: अर्थ :-

अ आ आदि सोलह स्वरों एवं क, ख, आदि ३४ व्यञ्जनों का आधार लेकर श्री वीतराग वाणी के अनुसार सरल, सुबोध व सुखद शैली में यथा बुद्धि यह रचना की है ।।५१।। ५ १ ० २ = २०१५

प्राज्ञ बावनी प्रकट ह्वी, बाण, चन्द्र, नभ, नैन ।
नवमी मिगसर कृष्ण पख, बिजयनगर सुख दैन ।।५२।।

विक्रम सवत् २०१५ की मार्ग शीर्ष कृष्णा नवमी को विजयनगर (अजमेर) में यह 'प्राज्ञ वावनी' प्रकट हुई अर्थात् इसकी रचना की गई ।।५२।।



卐 रक्षिका चरित्र 卐

--- दोहा ---

श्री जिन शान्ति जिनेश्वरु, शांति करण नितमेव ।
वली प्रणमूं जड़ता हरण, गुण गिरवा गुरुदेव ॥ १ ॥

ढाल पहली (तर्ज—हाँ संगीजी ने पेड़ा भावे)

हस्तिनापुर नगरी अति सोहे, देखन्ता सहु जन मन मोहे ।
सोहे अधिक अनूप भूप अरिदमन विराजे रे ॥ १ ॥

सुणो भवियण सुध भावे,
थावे अधिक आनन्द फन्द कर्मो का मिटावे रे ॥ टेर ॥

मंगलावती राणी सुखकारी, मन मोहन राजा ने प्यारी ।
सारी गुणों की खान, राय मन अधिक लुभावे रे ॥ २ ॥

श्रवण कंवर सोहे अति नीको, वंश उजागर है कुल टीको ।
सीख्यो बहुलो ज्ञान देख भूपति सुख पावे रे ॥ ३ ॥

धनदत्त नामे सेठजी सांचो, धर्म ध्यान में नहिं रहे पाछो ।
सयल सज्जन सुखदाय, राय की उपमा पावे रे ॥ ४ ॥

सुशीला नामे सेठाणी सुखदाई, रक्षिका नामे जनमी बाई ।
शीलवती रूपवान देख कामी मुरझावे रे ॥ ५ ॥

--- दोहा ---

द्वादश बरसां में थई, बहु विद्या गुणखान ।
सतियों की सेवा करे धरे जिनेश्वर ध्यान ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य गुण सांभली, लिया सूंस सुध भाव ।
जावजीव अबंभ का, किया पच्छखाण सताव ॥ २ ॥

जाय कही निज तात ने, सुणो बात मुझ सार ।
बिन पूछ्यां सगपण तणो, करणो नहीं विचार ॥ ३ ॥

ढाल दूसरी (तर्ज—कोरो काजलियो)

श्रवण कंवर एकण समै, कांई हो घोड़े असवार ॥ १ ॥
भवियण सुण लीज्यो, यो काम महा दुख दाय ॥ टेर ॥

गोखे बैठी कन्यका, कोई देख लिवी नृप जात ।
मोहित हो मन चिन्तवे, मैं विलसूं इण रो गात ॥ भवि० २ ॥

काम राग खोटो कह्यो, कोई कामी नर दुख पाय ।
दीवे पड़े पतंगियो, कोई देवे प्राण गंवाय ॥ भवि० ३ ॥

भंवराँ गुंजारव करे, कोई पद्म सुगन्ध विचार ।
कण्ठे जल दीसे सही, कोई तेहिज पदमणी नार ॥ भवि० ४ ॥

महलों में आ कुंवर जी, कोई मन में हो दिलगीर ।
सूतो टूटी खाट पे, कोई लग्यो नयन को तीर ॥ भवि० ५ ॥

मांजी सा पूछे तदा, है कांई थारे पीर ।
पिण नहीं बोले लालजी, कोई राणी थई अधीर ॥ भवि० ६ ॥

मंत्री आ पूछ्यो तदा, कह्यो कन्या नो विस्तार ।
परणावो मुझ ने सही, वा छैल छबीली नार ॥ भवि० ७ ॥

--- दोहा ---

राजा राणी मंत्री जी, करि मिसलत तिणवार ।
मंत्री गयो घर सेठ के, जुगते कीध जुहार ॥ १ ॥

भले पधार्या पांवणां, मुझ घर आंगण आज ।
महर करी ने स्वामीजी, फरमा दीजे काज ॥ २ ॥

ढाल तीसरी (तर्ज— मगलिक शरणा चार०)

मंत्री कहे सेठां भणी, हो सेठजी-दो कन्या परणाय ।
राजकंवर मन मोहियो, हो क थांरी कन्या रूप सवाय ॥ १ ॥

के जल्दी कीजिये, हो सेठजी-ढील न कीजे लिगार ॥ टेर ॥

सेठ कहे हम वाणिया, हो मंत्रीजी वे राया का राय ।
कैसे यह सगपण जुड़े, हो मंत्रीजी-सोचो मन के माँय ॥ २ ॥

खुशी हुवे हम कुंवर जी, हो सेठजी-थांरो कांई जाय ।
राजवंश में देवतां, हो सेठजी शोभा अधिक लहाय ॥ ३ ॥

सेठ कहे सुणो मंत्री जी, हो सचिव जी-कन्या एह विचार ।
मन चायो परणूं सही, हो सचिव जी-लिवी प्रतिज्ञा धार ॥ ४ ॥

कन्या कहे परणूं नहीं, हो तात जी-राज वंश रे मांय ।
कर्म बंधे बहु जीव ने, हो तात जी-परभव दुखियो थाय ॥ ५ ॥

सेठ कहे सुणो मंत्री जी, हो भवियण-कन्या दिल नहीं चाय ।
परधाने जाई कही, हो भवियण-कुंवर दुचिन्त्यो थाय ॥ ६ ॥

भोजन तो तबही करुं, हो तात जी-उससे सगपण थाय ।
समझायो समझे नहीं, हो लाल जी-राजा मन अकुलाय ॥ ७ ॥

फिर आयो परधान जी, हो सेठ जी-एम करे अरदास ।
कन्या परणावो सही, हो सेठ जी-जो चाहो सुख बास ॥ ८ ॥

सेठ सुणी दुःखित हुओ, हो भवियण-आमन दूमन चित्त ।
कन्या पूछे तात जी, हो पिताजी-कांई थयो विपरीत ॥ ९ ॥

तू मुझ ने दुखणी थई, हो भवियण-देसी देश छुड़ाय ।
कन्या तब हांमल भरी, हो भवियण-तात परम सुख पाय ॥१०॥

करी सगाई सेठजी, हो भवियण-माडाइ ब्याह मनाय ।
परणावी बहु रंग सूं, हो भवियण-कुंवरा मन हरसाय ॥११॥

लेई गयो निज महल में, हो भवियण-कंवरी करे विचार ।
सती शियल किम राखवे, हो भवियण ते सुणज्यो अधिकार ॥१२॥

सेजां सूती ते सती, हो भवियण करी कपट की चाल ।
प्राज्ञ कहे भवि सांभलो-हो भवियण-ए थई गुप्ति ढाल ॥१३॥

--- दोहा ---

कुंवर जी आयो तदा, सूती देखी बाल ।
जागृत करे बहु प्रेम से, देखो मोह की चाल ॥ १ ॥

बारम्बार जगावतां, जागी नहीं लिगार ।
क्रोधातुर कुंवर थयो, या कूलखणी नार ॥ २ ॥

ढाल चौथी (तर्ज—पणिहारी जी हेलो)

जागी कंवरी तत्क्षणे हो, सुनो प्राणीजी—
कंवर गले लिपटाय - प्राणीजी ।
बन्धव बन्धव बोलती हो, सुनो प्राणीजी ।
कंवर अचम्भित थाय-प्राणी जी ॥ १ ॥

मैं नहीं बन्धव थांहरो-हो सुनो प्राणी जी—
बोल विचारी बोल-प्राणी जी ॥ टेर ॥

मुझ बन्धव मुझ ने सही हो सुणो कुंवर जी—
रयणी जगावतो आय-कुंवरजी ।

तिण ही भरोसे आपने हो सुणो कुंवर जी–
बन्धव लियो रे बनाय कुंवर जी ॥ २ ॥

इण भव तुम बन्धव सही रे, सुणो कुंवर जी–
मैं तो लिया रे बनाय-कुंवर जी ।
एह प्रतिज्ञा माहरी-हो सुणो कुंवर जी–
देवो आप निभाय-कुंवर जी ॥ ३ ॥

पूरबली सब वारता हो, सुणो प्राणी जी–
कुंवरी दिवी रे सुनाय-प्राणी जी ।
कुंवर सुनी बहु प्रेम सूं-हो सुणो प्राणी जी–
लिवी रे बहिन बनाय-प्राणी जी ॥ ४ ॥

सावण सुद पूनम दिने रे, सुणो प्राणी जी–
श्रवण नखत्तर जोग-प्राणी जी ।
राखी बांधी रक्षिका रे-सुणो प्राणी जी–
मिटियो भोग को रोग-प्राणी जी ॥ ५ ॥

जे ब्राह्मण परणावियो रे-सुनो प्राणी जी–
तेहिज लियो रे बुलाय-प्राणी जी ।
ब्राह्मण केरी साख सूं रे, सुणो प्राणी जी–
लीधो बन्धु बनाय-प्राणी जी ॥ ६ ॥

सती दर्शन करवा भणी हो, सुणो प्राणी जी–
कुंवर नित प्रति आय-प्राणी जी ।
बन्धव ने भगिनी बिहूँ-सुणो प्राणी जी–
दिन दिन प्रीति सवाय-प्राणी जी ॥ ७ ॥

अन्य सोकां यूं देखने-सुणो प्राणी जी—
मन में करें विचार-प्राणी जी।
या बाण्यां की पुत्रिका-हो सुणो प्राणी जी—
मोह लियो भरतार-प्राणी जी ॥ ८ ॥

छल ताकन्ती नारियां - सुनो प्राणी जी—
जोंक सरीसी चाल-प्राणी जी।
'प्राज्ञ' कहे भवि सांभलो, सुणो प्राणी जी।
वेद संख्या यह ढाल, प्राणी जी ॥ ९ ॥

— दोहा —

कुंवरी कही निज तात ने, सुरंग खुदाई सार।
आर्या सुव्रता स्थानके, करे धर्म सुखकार ॥ १ ॥

सोकाँ यह जाणी कथा, कहे प्रीतम ने बात।
धन्य २ कहता तिका, सती तुम्हारी नाथ ॥ २ ॥

सुरंग खिणी है महल में, जार पुरुष के जाय।
जो नहीं मानो नाथजी, परतिख देवां दिखाय ॥ ३ ॥

ढाल ५ मी (तर्ज– हारे ये तो आया नटवर परदेशी)

हाँ रे ए तो सुण ने कुंवर, मन में करे विचार जो,
नारी रे या कामण गारी, जाणिये रे लो।
हां रे या तो नारी धुतारी, महा ठगारी जाण जो,
पेखूं रे मै नारी चरित्र केहवो करे रे लो ॥ १ ॥

हां रे या तो सुरंग खोल ने, सती चली तिणवार जो,
पाछे से तो कुंवर खंग ले, धावियो रे लो।

हाँ रे ये तो चलतां कर थी, खड्ग पडयो तिण वार जो,
बाज्यो रे मन लाज्यो, देख सती तणो रे लो ॥ २ ॥

हाँ रे ये तो कुंवर ने, लख सती विचारे मन्न जो,
आजे तो बंधव जी, मुझ कृत देखिया रे लो।
हां रे ये तो धिग् धिग् मुझ ने, कियो अविमासी काम जो,
आजे तो धरम नी निन्दा, थायसी रे लो ॥ ३ ॥

हां रे इण अवसर मुझ ने, चार आहार परिहार जो,
श्री जिन धर्म नो शरणो, धारियो रे लो।
हां रे तब बैठी सती जी, निश्चल ध्यान लगाय जो,
भावे हो मन में, शुद्ध भावना रे लो ॥ ४ ॥

हां रे तिण अवसर आयो, शील सहायक देव जो,
मांड्यो रे नाटक सुर वर, अभिनवो रे लो।
हां रे ये तो जन्मी रक्षिका, तिण से थी विस्तार जो,
द्वादश वरसां में, ब्रह्मव्रत आदरी रे लो ॥ ५ ॥

हां रे ए तो हठ से परणी, कुंवर तदा सुखकार जो,
राखी बांधी ने बन्धु, बनावियो रे लो।
हां रे या तो सुरंग रे मांय, जावे आर्या द्वार जो,
पाछे रे कुंवर ऊभो, आयने रे लो ॥ ६ ॥

हां रे इत्यादिक नाटक किया, सुरवर सुखकार जो,
कुंवरजी देखी मन में, चिंतवे रे लो।
हां रे मुझ सुपनो आयो, के दीसे छे साक्षात जो,
ढाल पंचमी प्राज्ञ मुनि, इण पर कही रे लो ॥ ७ ॥

— दोहा —

सती एकाग्रह चित्त से, बैठी ध्यान रे मांय।
आई निर्मल भावना, केवल ज्ञान लहाय ॥ १ ॥

ढाल छठी (तर्ज–मारवाड़ी मांढ)

केवल महोत्सव सुर करे रे, नाटक ना धोंकार।
देव दुंदुभी बज रही कांई, सुर करे जय जयकार ॥ १ ॥

हो धन सती गुणधारी, कर्म विडारी, तारी आतमा ॥ टेर ॥

केवल महोत्सव देखने रे, कुंवर जी करे विचार।
धिग् धिग् मांहरी आतमा, कांई धन्य सती जमवार ॥ २ ॥

अनुपम शुध परिणाम थी रे, ध्यायो निर्मल ध्यान।
क्षपक श्रेणी मुनिवर चढ्या तब, पाम्या केवल ज्ञान ॥ ३ ॥

रत्न सिंहासन ऊपरे, बिहूं बैठा परमानन्द।
राजादिक आया सहू, कांई प्रणम्यां पद अरबिन्द ॥ ४ ॥

संजम लीधो रायजी रे, राणी भी थई लार।
कंवराण्यां चेती सहूँ कांई त्याग दियो संसार ॥ ५ ॥

धनदत्त सुशीला सही रे, लीनो संयम भार।
धन २ सती रक्षिका कांई, तार दियो परिवार ॥ ६ ॥

बहु बरसां लग संयम पाली, तार्या जीव अपार।
मोक्ष विराज्या जाय के, कांई जन्म मरण दुख टार ॥ ७ ॥

तिण दिन सेथी चालियो रे, राखी नाम त्योहार।
बिहूँ मिल राखी टेक ने रे, तिम तुम लीज्यो धार ॥ ८ ॥

राखी बांधी धर्म नी रे, पालो जिनवर आन।
दुर्गति जीव न जावही, कांई ते राखी परमान ॥ ९ ॥

उन्नीसो छिहोत्तरे रे, राखी पर्व रे दिन।
सुण ने रक्षा कीजियो कांई, ते कहिये परवीन ॥ १० ॥

कक्षा अनुसारे मै कहीं रे, हीनाधिक जो होय।
ज्ञानी केरी साख से कांई, मिथ्या दुष्कृत मोय ॥ ११ ॥



卐 भागचन्द चरित्र 卐

ढाल १ (तर्ज–द्रोण की)

श्री शांति प्रभु के चरणे शीश नमाऊँ महाराज-
ध्यान से विघ्न हटावे जी।
सुख सम्पति सौभाग्य रु, कमला केल करावे जी ॥ टेर ॥

भरत क्षेत्र में मरुधर देश सलूनो-महाराज,
कुसुम-पुर नगर नवीनो जी।
तिहां वसे सेठ धनवन्त 'धर्मचन्द' है, सुख भीनो जी ॥
पतिभक्ता गुणवती सुशीला नारी,
महाराज, प्रातः पति चरणे नावे जी ॥सुख. १॥

बहु दासी दास अरु पींजस पालखी घोड़ा,
महाराज, पुण्य का है अति दौड़ा जी।
पूर्व पुण्य अपार कहो क्यों पावे फोड़ा जी ॥
सकल शहर में सुयश फैला भारी,
महाराज, सभी जन शीश झुकावे जी ॥सुख. २॥

सुत नहीं हृदय में सेठाणी दुःख पावे,
महाराज, पति से अर्ज गुजारे जी।
ऋद्धि मिली अनपार, लाल एक है नहीं म्हारे जी ॥
पशु पक्षी भी सन्तति का सुख भोगे,
महाराज, लाल बिन जिय दुःख पावे जी ॥सुख. ३॥

ढाल दूसरी (तर्ज– मेरी जंजीर सोने की)

बिना सन्तान धनी नर की, शून्य सब साहबी घर की ॥ टेर ॥

पशु और पक्षी गण भी तो, बंश अपना बढाते हैं।
कुदरती कायदा ऐसा, उन्हें भी है फिकर कुल की ॥ १ ॥

ढाल पुनः पहली

बहु देवी देवता भेरुं भवानी पूजे।
महाराज, लाल एक दीज्यो म्हाने जी ॥
छत्र चंवर परसादी पूजा देस्यां थांने जी।
दर दर भटकत बोले बोलवां भारी ॥
महाराज, कर्मगत पार न पावे जी ॥सुख. ४॥

सुख शय्या सोवत गर्भ रह्यो शुभ कारी।
महाराज, स्वप्न लख मां विलखाई जी ॥
निज पति के चरणे लाग प्रेम से बात सुनाई जी ॥
पतिराज आज में स्वप्न लह्यो अति भारी।
महाराज, निर्धन सन्तति दुःख पावे जी ॥सुख. ५॥

यूं बीता है कुछ काल हाल अब सुनिये।
महाराज, द्रव्य सब गयो बिलाई जी ॥

हाट हवेली गहने वस्त्र सब दिये बिकाई जी ।
बहु आई दीनता धान न घर के मांही ॥
महाराज, मनुष्य निर्धन दुख पावेजी ॥सुख. ६॥

जब जन्मा बालक सोवन खटिया नांही ।
महाराज, सुवावड़ कहां से आवे जी ॥
थाली गहने मेल सेठ गुड़ आटो लावे जी ।
हा ! कर्मन की गत कहो किम वरणी जावे ॥
महाराज, कर्म से सुख दुःख पावे जी ॥सुख. ७॥

यूं दुख से बीते वर्ष पांच सुनो भाई ।
महाराज, मात पितु परभव जावे जी ॥
इक रहा दुखित यह बाल हाल सुन जिय घबरावे जी ।
कहो कुण पूछे बात तात बिन सुत की ॥
महाराज, घरो घर भीख मंगावे जी ॥सुख. ८॥

ढाल तीसरी (तर्ज- छोटी मोटी सहियां ए०)

दुखद अनाथों की आह, कानों से सुनो सज्जनो ॥ टेर ॥

भाग्य चन्द्र के, भाग्य मन्द भये हां-भाग्य......।
मात तात पर लोक, गये फिर नावना ॥दुखद० १॥

दर दर भटकत, मांगत टुकड़े-हां - मांगत० ।
हा ! हा ! भूख सताय, कोई ना धीर बंधावना ॥दुखद० २॥

वर्ष तीन इम, बीते दुख से - हां - बीते......।
अब आगम का हाल, सुनी घबरावना ॥दुखद० ३॥

एक दिवस को, सरदी सताई-हां-सरदी......।
ज्वर में ठिठुरे लाल, कोई ना बतलावना ॥दुखद० ४॥

ढाल चौथी (तर्ज- आज राजन घर आविया०)

तिण समे विप्र तिहां, आयो भिक्षा रे काज।
देखी बालक विललावतो, हा ! हा !! जैन समाज ॥ १ ॥

सुनो हो नर नारी सारा, कर्म तणी गत बांकड़ी ॥ टेर ॥

नयन निरखी बाल ने, आई दया दिल मांय ।
कहो किम रोवे रे बालुड़ो, प्रेम धरी बतलाय ॥ २ ॥

कौन मात कौन तात है, कौन तुम्हारी जात ।
कहो किम रोवे दुख भरी, परकासो तुम बात ॥ ३ ॥

डब डब नयनों से नीर का, मानो झरणा झराय।
गद गद बचने बालुड़ो, बोले इण पर वाय ॥ ४ ॥

मात तात नहीं देखियां, जात न्यात नहीं कोय।
नभ थी पड़ियो भूमि झेलियो, एहवी मम गत होय ॥ ५ ॥



- चन्द्रायणा -

सुनी बालक ना बैन, ब्राह्मण घबराबियो,
कर करूणा धर प्यार के, निज घर लावियो।
ब्राह्मणी को सब हाल, लाल नो सुनावियो,
रोमांचित थई नार, नयन जल आवियो ॥ १ ॥

कीधी सार सम्भाल, लाल तनु खुश थयो,
सुखे रहे यो बाल के, दुःख दूरे गयो ।
विद्या शाला रे मांय, ज्ञान शुभ संग्रहे,
विद्या गुरु नी भक्ति, भली पर सांचवे ॥ २ ॥

(ढाल पुनः पहली)

दक्षिण दिश में कोचीन नगर नवीनो,
महाराज कर्मचन्द, सेठ है भारी जी ।
पतिभक्ता गुणखान सुशीला नामे नारी जी ।
लाखों की सम्पति कमी और कुछ नांही,
महाराज, पुत्र बिन जिय दुख पावे जी ॥सुख. ६॥

बोले पदमन सुनो नाथ मुझ वाणी,
महाराज, पुत्र है नहि गुण खानी जी ।
पुत्र बिना संसार की माया झूंठी जानी जी ।
जो हो मरजी तो लाल गोद ले आवो ।
महाराज, जिन्हों से नाम रहावे जी ॥ सुख. १० ॥

यह बात सुणी ने सेठजी दिल में सोचे,
महाराज, अनाथ को गोद ही लाऊं जी ।
मारवाड़ के मांय लाल मन चायो पाऊंजी,
ले नौकर संग में सेठजी मरुधर आया ।
महाराज, कुसुमपुर में हरसावे जी ॥ ११ ॥

जब पाठशाला के बाहर सेठ खड़ा है,
महाराज, नजर भागा तब आया जी ।
मन मोहन दीदार देख दिल में हरसाया जी ।
कहो लाल तू किसका सुत सुखकारी,
महाराज, भागचन्द इम दरसावे जी ॥सुख.१२॥

मैं हूं ब्राह्मण को कहो सेठ क्यूं पूछो,
महाराज, अन्य शिशु वचन सुनावे जी ।

नहीं है ब्राह्मण जात बात क्यों झूंठ बनावेजी ।
तब कहे सेठ जो सच्चो बातें होवे,
महाराज, वही जाहिर करवावे जी ।।सुख. १३।।

ढाल पांचमी (तर्ज—सुसराजी थे म्हारा, थारा जाया ने समझाज्यो जी)
पहले तो मैं महाजन को थो, अब ब्राह्मण को हो गयो जी ।
सांची बातें सुनो सेठ जी, महाजन पन सहु खो गयो जी ।।टेर।।

यह सब सांची बात सेठजी, झूठ कभी ना बोलूं जी ।
मानो या ना मानो हमारी, पोल तुम्हारी खोलूं जी ।।१।।

थांरें घर ले चालो लाला, इम सुनी दिल हरसावेजी ।
बग्घी मांही बैठ सेठ संग, भागचन्द घर आवे जी ।।२।

(ढाल पुन. पहली)
ले कर्मचन्द को भागचन्द घर आया,
महाराज, ब्राह्मण देखी दुःख पावेजी ।
यह बड़े सेठ बोहराजी बन क्यों हम घर आवें जी ।
तब नमन करी ने सेठजी इण पर बोले,
महाराज, सुनी ब्राह्मण हरसावे जी ।। सुख. १४ ।।

ढाल छठी (तर्ज—रुण झुण हेलो)
मधुर वचन कहे सेठ जी, पंडित सुनियो ।
कहो यह किण रो लाल, सच्ची कह दियो ।। १ ।।

कौन तात कौन मात है, सच्ची कहियो ।
कौन जात विख्यात, सब जाहिर करियो ।। २ ।।

ब्राह्मण कहे सुनो सेठजी, इण री बतियां ।
सगरी देऊं सुनाय, बुरी कर्मन गतियां ।। ३ ।।

ओसवंश में ऊपना, था लख पतियां।
इन के तात सौभाग्य, बुरी कर्मन गतियां ॥ ४ ॥

मात तात दोनों मरे, बचपन मतियां।
कोई न पूछो सार, बुरी कर्मन गतियां ॥ ५ ॥

कर करुणा घर लावियो, सांची बतियां।
कीधी सार संभाल, ब्राह्मणी सद्मति या ॥ ६ ॥

कर्म कथा एह नी यही, सच्ची कथि या।
क्या तुम पूछो सेठ, बुरी कर्मन गतियां ॥ ७ ॥

ढाल सातमी (तर्ज—एवन्ता मुनिवर नाव)

घयो सुख पावेलो, हम ने भागा को दे दो सेठजी ॥ टेर ॥

भाग्य चन्द्र का भाग्य खुलेगा, हमरे घर में आज।
खुशी होय तो कह दो हम को, नांही रखो तुम लाज।
सुन ब्राह्मण तब तड़की बोले, क्या यह देख नाज हो ॥ १ ॥

नहीं दे भागा को, सांची यह बातें मानो सेठ जी ॥ टेर ॥

पाल पोष ने बड़ो कियो हम आज ले जावो आप।
इस बिन हम घर शून्य सेठ जी, रोटी न खाई धाप।
और किसी का उजर नहीं है, मैं हूँ इसका बाप जी ॥ २ ॥

(ढाल पुनः प्रथम)

मैं भाग्यचन्द्र को लिये बिना नहीं जाऊं,
महाराज, सेठ ने डेरा लगाया जी।
जाण अतिथि पण्डित ने भोजन जीमाया जी।

यूं रहे युगल दिन ब्राह्मण के घर मांही,
महाराज, प्रेम से विप्र लुभावे जी ॥ सुख. १५ ॥

ढाल आठमी (तर्ज—पणिहारी जी हेलो)

ब्राह्मण कहे सुन कामिनी, मोरी बतियां ये—
कर्म वतो कर्मचन्द दिसे धन पतियां ये ॥ १ ॥

भाग्यचन्द्र को दीजिये, सुख पासे ये—
फेर मिलेगा आय, ब्राह्मण भासे ये ॥ २ ॥

तड़की कहे सुनो नाथ जी, नहीं दीजे रे—
भाग्यचन्द्र घर मांय, राख जस लीजे रे ॥ ३ ॥

ढाल नवमी (तर्ज—रुण झुण हेलो)

प्रेम धरी कहे सेठजी सुनो मुझ वानी।
यह भाग्यचन्द्र गुणवान दीजिये हित आनी ॥ १ ॥

सोरो सुखियो राख सूं करो महरवानी।
देसूं दल हर बार, फिर मिल से आनी ॥ २ ॥

जीवन भर भूलूं नहीं, यह सच बानी।
यों थांरो उपकार, मानूंगा सुखदानी ॥ ३ ॥

प्रेम वचन सुन ब्राह्मणी बोले बानी ।
भाग्यचन्द्र का भाव, क्या है पूछो नी ॥ ४ ॥

--- दोहा ---

प्रेम धरी कहे मातजी, कहो लाल क्या राय।
के जासो सेठां घरे, या रहसो घर मांय ॥ १ ॥

ढाल १० मी (तर्ज—कांगसिया की)

म्हारी प्रेम पियारी माताजी, इण पर क्यों बोले रे ॥ टेर ॥

कौन सेठ यह आय अनोखा, अमृत में विष घोले रे,
मात बिछोहन की यह ये बातें, क्यों करे झूंठी झकोले रे ।
क्यों लेवे मोंले रे ॥ म्हारी. १ ॥

जीवन भर मैं सेवा करसूं, कभी न अलगो रहसूं रे।
जो आज्ञा देवोगी मातजी, ते शिरोधारण करसूं रे ॥
इम बालक बोले रे ॥ म्हारी. २ ॥

--- दोहा ---

प्रेम वचन कहे सेठ जी, धरी भाग्य को अंक ।
करी कृपा अहो लाल तुम्हें, मेटो हमें कलंक ॥ १ ॥

ढाल ११ मी (तर्ज—पनजी मुण्डे बोल)

घणा सुख पावोला, जो मेरे कथन पे ध्यान दिरावोला ॥टेर॥

दूर रही अरु धनिक बनी सच मातनी सेव बजावोला ।
घणो अनाथ गरीबों का तुम दुःख हटावोला ॥ १ ॥

ये बातें सुन भाग्यचन्द्र कहे, मात कहन से जाऊँला ।
वो दिन सफल गिणूंगा मात फिर दर्शन पाऊँला ॥ २ ॥

ढाल १२ मी (तर्ज—मारवाड़ी मांड)

सुनो लाल हमारा, मोहनगारा, प्राण पियारा रे ॥टेर॥

धन पतियाँ घर जाय के रे, हमें ना भूलियो लाल ।
दुख की बीरियाँ साज दियो ते, दिल में रखियो ख्याल रे ॥ १ ॥

तात कहे सुनो लाल जी रे, यही हमारी सीख ।
गौ ब्राह्मण और दीन जनों की, हरदम रखियो ठीक रे ॥ २ ॥

ढाल १३ मीं (तर्ज—राघवजी नी ओलू आवे हो.)

नमन करी पितु चरण में, कहे गदगद वानी हो ।
सफल जन्म तब जानसूं, करसूं तुझ कहानी हो ॥ १ ॥

तात थारी सीख न भूलूं हो,
जब लौ जीवन देह में यह वचन अमोलू हो ॥ टेर ॥

मात तात चरणे नमी, भाग्यचन्द्र सीधावे हो ।
वत्स वियोगे धेनु ज्यूं ब्राह्मणी दुःख पावे हो ॥ २ ॥

लाल थारी ओलूं आवे हो,
फिर कब मिलसी लालजी ब्राह्मणी घबरावे हो ॥टेर॥

(ढाल पुनः प्रथम की)

लेइ भाग्यचन्द्र को निज घर सेठ सिधाया,
महाराज, प्रेम की बँटे बधाया जी ।
सेठानी निरखी लाल चित्त में हर्ष भराया जी ।
सकल पंच मिल लहरा सिर पे बांधा,
महाराज, पुन्य से आनन्द थावे जी ॥ सुख. १६ ॥

सुख से रहता विद्याभ्यास भी करता,
महाराज, चित्त में ब्राह्मण बसताजी ।
पर वक्त देख निज व्यथा किसी से कभी न कहताजी ।
यूं बीते बरस दस रंग विनोद के मांही,
महाराज, और आगे क्या थावे जी ॥ सुख. १७ ॥

यौवन वय में देख कंवर सुख भीना,
महाराज, पदमिनी नारी परणी जी ।
सुख भोगे संसारी देखो कर्म की करणी जी ।
पितु मात गये परलोक शोक बहु कीनो,
महाराज, भाग्यचन्द सेठ कहावेजी ॥ सुख. १८ ॥

--- दोहा ---

एक दिवस रंग महल में, बैठे आनन्द मांय ।
तात मात सुमिरण भये, चित्त में अति अकुलाय ॥ १ ॥

ढाल १४ मी (तर्ज–काहे को त्यागत मोरे भंारे हो.)

जाना है मोने अनाथों की वतियाँ ॥ टेर ॥

सुमिरण से मुझ तन कांपत है,
दुखद अनाथों की है जो गतियां ॥ १ ॥

मै भूला नहीं भूंख के दुःख को,
दर दर भटकत खाते लतियाँ ॥ २ ॥

वैभव पाय भूले पूरब दुःख,
है जो उन्हों की भ्रष्ट मतियां ॥ ३ ॥

तात मात बिन कुण सुने दुखड़ा,
है जो अनाथों की बुरी गतियाँ ॥ ४ ॥

--- दोहा ---

रंजित दिल पिउ देख ने, अर्ज करे इम नार ।
है चिंता किण बात री, मुख से कहो इणवार ॥ १ ॥

ढाल १५ मीं (तर्ज–सखिया जी सारी इम कहे.)

कर जोड़ी वनिता इम कहे, स्वामी सुनो अरदास ।
आज आलीजा री सूरती, किम दीसे उदास ॥ १ ॥

जो मन में चिंता होवे जाहिर प्रकाशो ॥ टेर ॥

रंजित दिल पिउ देखने, जिवड़ो घबरावे ।
बिन कहिया प्राणेश जी, दिल चैन न पावे ॥ २ ॥

पति सुख से वनिता सुखी, दुखे दुःखणी थावे ।
ते वनिता जग धन्य अछे, पति प्रेम मिलावे ॥ ३ ॥

सूंस अछे मुझ गल तणी, सच्ची फरमावो ।
जब निज व्यथा कहसो सही, तब अन्न जल पावो ॥ ४ ॥

ढाल १६ मी (तर्ज– पणिहारी)

कहे प्रीतम सुनो कामिनी - सुख लीनो ए–
का कहूँ निज दुःख बात, तू रंग भीनो ए ॥ १ ॥

बाल पने पितु मात जी, मुझ मरिया ए–
भोगी गरीबी अपार मानो दुख दरिया ए ॥ २ ॥

ब्राह्मण ब्राह्मणी मुझ भणी - सुख दीनो ए–
मैं किम भूलूं बात, आज रंग भीनो ए ॥ ३ ॥

ढाल १७ मी (तर्ज– जल्लो म्हारी जोड़ रो.)

कहे कामण सुनो नाथ जी रे बात यह अनमोल ।
भूले न असली अहसान को रे जे भूले ते गोल ॥ १ ॥

प्रीतम जी जाय ने पितु दरस करावो रे।
तन धन सब अर्पण करी, जीवन सफल बनावो रे ॥टेर॥

(ढाल पुन प्रथम की)

इम सुन वनिता की बात साथ बहु लीनो,
महाराज, कुसुमपुर नगरे आया जी ।
जन्म भूमि को देख चित्त में हर्ष भराया जी ।
धर्मशाल में आकर डेरा दीना,
महाराज, सुनी जनता हरसावे जी ॥ सुण. १९ ॥

जब सुनी संबंधी झट पट दोड़ी आया,
महाराज, कहे तुम निज घर चालो जी ।
मैं हां सगला सजन प्रेम से नयन निहालो जी ।
इम सुणी बात मन में यूं भागा सोचे,
महाराज, सभी झूठा दरसावे जी ॥ सुण. २० ॥

जब बैठ बग्घी में ब्राह्मण रे घर आया,
महाराज, चित्त में हर्ष बढाया जी ।
धन्य दिवस मुझ आज मात पितु दर्शन पाया जी ।
तब नमन करीने चरणे शीश नमाया,
महाराज, आज आनन्द अति पावे जी ॥ सुख. २१ ॥

--- दोहा ---

नमन करी पितु मात से, बोले इण पर वाय ।
मै हूँ भागा आपका, जाणो छो के नांय ॥ १ ॥

ढाल १८ मी (तर्ज—काटो लागो वे देवरिया)

तू तो भूल्यो रे सुन लाला, म्हारो कीधोड़ो उपकार ।
कीधोड़ो उपकार बेटा - दीधोड़ो अति प्यार ॥ टेर ॥

उसी दिनों को भूल गये हो, धनमद में तुम फूल गये हो।
भली नहीं यह बात लालजी, हमको दिये विसार ॥ १ ॥

निशादिन हम तुम्हे याद करत थे, तुम विरह से नयन झरत थे।
बहुत दिनों से दिल की आशा आज फली सुखकार ॥ २ ॥

किम कर भूलूं हो मायत जी, थारो मोटो यो उपकार।
मोटो यो उपकार, थारो प्रेम अनन्त अपार ॥ टेर ॥

नभ मण्डल थी भू पे पड़ियो, भूख प्यास के दुख से भरियो।
दुख की विरियां मांय आपने जो कीधो उपकार ॥ १ ॥

आप लाय घर सुखी कियो थो, पाल पोष कर साज दियो थो।
उण विरियां की बात नाथ, मैं भूलूं नाय लिगार ॥ २ ॥

धन्य भाग तुम दर्शन पायो, आज आनन्द मुज अधिको आयो।
जीवन सफल बनायो स्वामी दीनी आपद टार ॥ ३ ॥

डाल १९ मी (तर्ज—जलो म्हारी जोड़ री)

उपकारी तातजी धन दर्शन पायो हो।
पियारी मातजी जीवन सफल बनायो हो। ॥ टेर ॥

धन्य दिवस यह आज नो, पितु भेंट्या तुम चरणार।
तुम उपकारी मोटका पितु, सब सुख थारी लार ॥ १ ॥

खूंस कराऊं चामना पितु, जीवन भर करूं सेव।
तो पिण उऋण ना बनूं पितु, इम कहे तज अहमेव ॥ २ ॥

कर ने कृपा मुझ तात जी रे, पधारो निज घर द्वार।
बूढेपन में तात जी मैं तो करस्यूं सेवा सुखकार ॥ ३ ॥

--- दोहा ---

तुम माता नी इच्छा जो, चालन होवे त्यार ।
तब माता चरणे नमी, बोले एम कुमार ॥ १ ॥

ढाल २० मी (तर्ज—कोरो काजलियो)

कर जोड़ी कुंवर कहे, मुझ मात सुणो अरदास, कुंवर इस बोले।
बहुयर तुम दर्शन की प्यासी, लगी लगन सुविमास, माता सुण लीजे ॥१॥

या पुत्र तणो अरदास, दिल में धर लीजे ॥ टेर ॥

मात कहे सुणो लाल जी, है जन्म भूमि सुख कार, छोड़ी ना जावे।
पर भूमि पर देश में, कोई जावे मूढ गिवांर, माता इम बोले ॥२॥

वत्स रहे जहां मात जी, वो पर भूमि न कहाय, कुंवर इम बोले।
चरी फिरी जंगल में धेनु, सन्ध्या निज घर आय, कुंवर इम बोले ॥३॥

कहे ब्राह्मण सुन कामिनी, क्यूं करें झूंठी झक झोर, मेरी सुण लीजे।
सेवा करसी सांतरी, है पुत्र बधू सुखकार, चालण दिल कीजे ॥४॥

भक्ति देख बेहूं जणां, चालन हुये तैयार, कुंवर इम बोले।
मामा, काका, आदि सभी, इण पर करे पुकार, मेरी सुण लीजे ॥५॥

ढाल २१ मी (तर्ज—पपैया काहे मचावे शोर)

कुंवर कछू हमें बंधावो धीर ॥ टेर ॥

बेकारी में भूख सतावे, किसे सुनावें पीर।
इज्जत हुरमत सब लक्ष्मी से बोले डारी नीर ॥ १ ॥

हम भी चलें तुम्हारे संग में, मेटो हमारी भीर।
यह अहसान कभी ना भूलें, बोले होय अधीर ॥ २ ॥

मैं ब्राह्मण तुम ओसवाल हो, बन गये आज फकीर।
जानी अनाथ साज मैं देऊं, चालो हमारी तीर ॥ ३ ॥

— दोहा —

मात तात को साथ ले, निज घर आये कुमार।
नगर बाहर राखी पिता, आये निज आगार ॥ १ ॥

ढाल २२ मी (तर्ज–हरख्या हो नरनारी म्हारे आज०)

बाहर राखी हो तात ने, निज घर आये कुमार।
निज कामण ने वारता, मांडी कही तिणवार ॥ १ ॥

हरख्यां हो पति पत्नी म्हारे आज मायत घरे आविया ॥ टेर ॥

प्रेम धरी कहे कामिनी, स्वामी सुणो अरदास।
बहु आडम्बर तात ने, लावो सुख आवास ॥ २ ॥

नागर जन बहु साथ ले, बैठावी सुखपाल।
आनन्द रंग उत्साह से आये निज घर चाल ॥ ३ ॥

मोतियन थाल भरी करी, सधवा लेय बधाय।
पग लागी सासू तणो, ब्राह्मणी रही सुख पाय ॥ ४ ॥

धन्य दिहाड़ो आज नो, भेंट्या सासू चरणार।
जीवन सफलो जाणियो, दीठा तुम दीदार ॥ ५ ॥

उपकारी सिर सेहरो, कियो उपकार अथाग।
प्रेम वचन कही तात ने, बहुयर रही पग लाग ॥ ६ ॥

ढाल २३ मी (तर्ज– सेवो सिद्ध सदा जयकार.)

सोचे भाग्यचन्द्र दिल मांयी, अबे कछु करणी करणी है ॥ टेर ॥

थिर ना लच्छी रहे शास्त्र में, जिनवर वरणी है ।
धन मद छकियो करे कर्म, पावे वैतरणी है ॥ १ ॥

यह माया कोई संग न ले गया पड़ी रहे धरणी है ।
हाथ दिया सो साथ चलेगा, पुण्य निसरणी है ॥ २ ॥

लंकपति कुछ साथ न लेगया, लंक सुवर्णी है ।
कहा करण गये खोय, जोय महाभारत वरणी है ॥ ३ ॥

ढाल २४ मी (तर्ज– तुमको लाखों प्रणाम.)

भाग्यचन्द्र बड़भागी - तुम्हारी जाऊँ बलिहार ॥ टेर ॥

धन माता जिन उदरे जाया, तन धन जोवन सफल बनाया ।
दाता दिल दरियाव - तुम्हारी० ॥ १ ॥

नागर जन मिल के गुण गावे, तुम दर्शन से आनन्द थावे ।
कलियुग कर्ण कहाये - तुम्हारी० ॥ २ ॥

सब सम्पति सुकृत कर दीनी, पंडित के सुफरद कर दीनी ।
दीनानाथ कहाए - तुम्हारी० ॥ ३ ॥

तीस वर्ष का हुआ जो भाई, एक दिवस तन वेदना आई ।
सोचे दिल के मांही - तुम्हारी० ॥ ४ ॥

निज कामण से इण पर बोले, मधुर वचन कहे होले होले ।
जाना है परदेश - तुम्हारी० ॥ ५ ॥

कहे कामण सुनिये मुझ स्वामी, अंत समय कुछ रखो न खामी ।
शेष सम्पति दे डारी - तुम्हारी० ॥ ६ ॥

अर्हन २ सुमिरन करते, दम्पती ध्यान जिनेश्वर धरते ।
साथे स्वर्ग सिधारे - तुम्हारी० ॥ ७ ॥

भागा का अन्न क्षेत्र कहावे, अजहुं अनाथों की भूख मिटावे ।
धन्य धन्य महाभाग - तुम्हारी० ॥ ८ ॥

ढाल २५ मी (तर्ज– मेरे मोला बुलालो मदीने.)

भाग्यचन्द्र का भाग सुनावेंगे हम ।
उनको दान की महिमा बतावेंगे हम ॥टेर॥

भाग्यचन्द्र सा भाग्यधारी हो गया कलि काल में ।
माया मिली अनपार पर फसिया न माया जाल में ॥
उनके नामों पर नाद गुंजायेंगे हम ॥ १ ॥

लच्छी कहो कुण ले गया, खोगया जीवन मोह में ।
इम जाणी मानो साजनों, सच्ची सीखामण दी तुम्हें ॥
भाग्यचन्द्र के भाग्य सरावेंगे हम ॥ २ ॥

उगणीसे छिनमें साल में, शुभ मास ज्येष्ठ मझार है ।
कृष्ण अष्टमी वार गुरु जो, जोड़ कीवी सुखकार है ॥
थाँ तूटी हे माया ! बतायेंगे हम ॥ ३ ॥



卐 शील - सप्तमी 卐

— दोहा —

शियल सप्तमी भाव तुम, सुनो भव्य चित लाय ।
कैसे यह स्थापित हुई, सेडल नाम कहाय ।। १ ।।

ढाल १ (तर्ज—

नगरी रे नगरी वसन्तपुरी कही रे, अरिमर्दन महाराय रे ।
परजा रे परजा पालन में सही रे, तात समो कहिवाय रे ।। १ ।।

सुणज्यो रे सुणज्यो भवियण इकमना रे,
शील सप्तमी भाव रे ।। टेर ।।

रूपज रे रूपसेन नामे भलो रे, रहतो एक सुथार रे ।
काष्टज रे काष्ट कर्म के मांय ने रे, सब मांही हुशियार रे ।। २ ।।

कन्या रे कन्या इक तेहनी कही रे, अधिक कुरूपा जाण रे ।
जातज रे जात न्यात परिवार में रे, सेडल नाम कहाय रे ।। ३ ।।

देखी रे देखी सहु घृणा करे रे, दुर्गन्ध अंग अपार रे ।
तंगज रे तंग हुआ घर का सहु रे, काढी घर के बाहर रे ।। ४ ।।

नगरज रे नगर बाहर कुटिया करी रे, काट रही दिन रात रे ।
अंगज रे अंग कुरूपा देखने रे, डाकण नाम विख्यात रे ।। ५ ।।

एकज रे एक दिवस मिली गांव में रे, बुढिया दुर्बल अंग रे ।
बोली रे बोली मुझ को लीजिये रे, सुख पाऊँ तुझ संग रे ।। ६ ।।

साथज रे साथ रहे मिलकर दोऊ रे,सेडल बोदली लार रे ।
जावे रे जावे जिण घर मांय ने रे, मांगे सो तैयार रे ।। ७ ।।

ढाल ३ (तर्ज—कोरो काजलियो)

भाया सुण लीज्यो, थे खोलो जल्दी द्वार ॥ टेर ॥

हाथ जोड़ अरजी करां, कांई या म्हांरी अरदास ।
जीवन दान देवो हमें, कांई पूरां सबकी आस ॥ १ ॥

अनेक वार आवाज दी, पिण दया न आई लिगार ।
मूर्च्छित दोनों हो गई, कांई आगे सुनो अधिकार ॥ २ ॥

मृत्युवत् हुई जाण ने, कांई दीनी बाहर निकाल ।
आई एक कुम्हारिका, कांई पायो जल सुखकार ॥ ३ ॥

वैर भाव रख कर मरी, कांई हुई व्यन्तरी नार ।
क्रोध से अनरथ नीपजे, कांई भाख्यो इम करतार ॥ ४ ॥

--- दोहा ---

याद करी ने व्यन्तरी, करे भयंकर रूप ।
डरपावे सब नर भणी, डरे नगर जन भूप ॥ १ ॥

तिण काले तिण अवसरे, ज्ञानी गुरु अणगार ।
स्वस्तिक सूरि पधारिया, सुण हर्ष्या नरनार ॥ २ ॥

विधियुक्त वन्दन करी, अर्ज करे भूपाल ।
स्वामी शहर पधारिये, बाहर दुःख अपार ॥ ३ ॥

ढाल ४ (तर्ज—मारवाड़ी माढ)

हो सुन लेवो स्वामी, अन्तर्यामी, भयकारी यह स्थान ॥ टेर ॥

आकर रात में व्यन्तरी रे, करती महा उत्पात ।
गांव के बाहर जो रह जावे, ग्रास वही बन जात ॥ १ ॥

महा भयंकर रूप बनाकर, करती हाहाकार।
यंत्र मंत्र को जानने वाले कर गये केई

किन्तु कारी एक न लागी, हो गये हम सब तंग।
अतः आप से अर्ज यही है, चालो ह

ढाल ५ (तर्ज—आज रंग बरसे रे)

मुनि फरमावे रे, नहीं किंचित् भी भय हम दिल ल

नहीं रहा पंपाल पास में, जिससे हम घबरावें रे।
कुटुम्ब कबीलो त्याग दियो, नहीं रोवण अ

भय छोड़ा संसार मांय अब क्यों भय आय सतावे रे।
ज्ञान ध्यान में मस्त रहें, हम नहीं घबर

— दोहा —

मुनि बंदी घर को चले, करे परस्पर बात।
खबर पड़ेगी रात में, जब आसी सा

मध्य निशा में आ गई, दोनों व्यन्तरी खास।
जान गई हम आपको, बोली विनय प्रव

ढाल ६ (तर्ज—पणिहारी)

अरज हमारी सांभलो, सुणो मुनिवर जी,
हम अबला की बात, मुनिवर

अन्याय कियो हम साथ में, सुणो मुनिवर जी।
बिना दोष लिये प्राण, मुनिवर जी ॥

--- दोहा ---

सभी बात मुनि सांभली, दीना हित उपदेश ।
सुनकर चमकी व्यन्तरी, आई मन शुभ लेश ॥ १ ॥

ढाल ७ वी (तर्ज—आज रंग बरसे रे)

जो सुख चावे रे, मत कर्म बांध गुरुवर फरमावे रे ॥ टेर ॥

सूर्योदय सब मिल कर आये, दर्शन कर सुख पावे रे ।
गुरु वचनों को मान परस्पर खूब खमावे रे ॥ १ ॥

भोली दुनियां भय खाकर के, सेडल माय मनावे रे ।
चाल गाडरी प्रवाह मांय समकित ने गमावे रे ॥ २ ॥

रक्त कोप यह चेचक जाणो वैद्यक में बतलावे रे ।
किन्तु फंस मिथ्यात्व बीच नित ठण्डो खावे रे ॥ ३ ॥

हिंसादिक नहीं गिणे रंच, परपंच घणो फ़ैलावे रे ।
रस चलित में जीव होय, ज्ञानी फरमावे रे ॥ ४ ॥

देव गुरु और धर्म ओलखो, यो अवसर नहीं आवे रे ।
प्राज्ञ मुनि कहे मनुष्य जन्म मत व्यर्थ गमावे रे ॥ ५ ॥

:: श्री रेणु - गुरु - स्तुति ::

(तर्ज— कव्वाली)

धन धन धूलचन्द महाराज, जैन की ज्योति जगाने वाले ॥ टेर ॥

लीना युवापन में योग, काटे काम क्रोध का रोग ।
जानी बुरे जगत के भोग, अजब वैराग्य दिखाने वाले ॥१॥

पाला संयम निर अतिचार, थे गुरु ज्ञान मग्न हरबार ।
समता रस के थे भण्डार, भक्त के चित्त चुराने वाले ॥२॥

रसिक थे जिनवाणी के पूरे, शंका कई नरों की चूरे ।
जनता आज तलक भी जूरे, गहरी युक्ति जँचाने वाले ॥३॥

मुद्रा मोहनगारी प्यारी, उन पे जावें हम बलिहारी ।
सींची नानकगण फुलवारी, क्यारी ज्ञान लगाने वाले ॥४

स्वामी विजयलाल के पाट, गहरा आप जमाया ठाट ।
श्रीमद् 'छात्रालय' सम्राट, हम है शीश झुकाने वाले ॥५

:: श्री प्राज्ञ - गुरु - स्तुति ::

(तर्ज- बिना रघुनाथ के देखे)

लहराया जैन का झण्डा, प्रचारक हो तो ऐसा हो ।
सुधारा हर जगह कीना, सुधारक हो तो ऐसा हो ॥ टेर ।

प्रवर्तक पद विभूषित थे, केसरी वीर मरुधर के ।
श्रीमद् स्वामी 'पन्नालाल' गुरुवर हो तो ऐसा हो ॥ल. १।
गूंज व्याख्यान की सुनके, धूजता था विपक्षी दल ।
चकित सुन वाणी को होते, सुवक्ता हो तो ऐसा हो ॥ ल. २ ॥

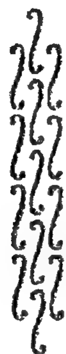
मिटाकर व्यर्थ का खर्चा, जुटाया दीन सहायक में ।
खुलाया फण्ड उसके हित, दयालु हो तो ऐसा हो ॥ ल. ३ ॥

पूज्य नानक गुरु गौरव, चिर स्थायी बनाने को ।
खुलाया 'छात्रालय' गुरु ने, दिलावर हो तो ऐसा हो ॥ल. ४

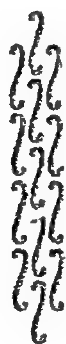
चमकती प्रेम की मूर्ति, सदा जय हो सदा जय हो ।
बढ़ा यश चौगुना जग में, सुवर्द्धन हो तो ऐसा हो ॥ल. ५

काव्य-त्रिवेणी

(तृतीय-धारा)



स्वाध्याय-शिरोमणि, आशुकवि, मरुधर-छवि,
मधुर प्रवक्ता, पण्डित रत्न, प्रवर्तक
पूज्य गुरुदेव श्री १००८ श्री



श्री सोहनलालजी महाराज साहब



जीवन-परिचय



वि. सं १९६८ की माघ शुक्ला ६ रविवार को जब आपका जन्म हुआ तब पिता श्रीमान् सुवालालजी छाजेड़ के घर आंगन व परिवार मे खुशियों का सागर उमड़ पड़ा। माता भंवरीबाई की कोंख सुशोभित हो गई। सूर्य मानो आज अपनी सहस्त्ररश्मियों से उनके घर परिवार पर स्वर्णिम वृष्टि कर गया। चारों ओर खुशियां छा गई। देवलिया कलां (बिजयनगर) ग्राम मे बालक के जन्म पर बधाइयां बँटने लगी। सबने मिलकर नाम सस्कार के दिन बालक का नाम रखा सोहनलाल। पूर्व जीवन के शुभ संस्कारों से धर्म साधना के प्रति प्रारम्भ से ही रूचि रही। बाल्यकाल मे ही प्रतिक्रमण बोल थोकड़े आदि का अभ्यास करने लग गये। सन्त समागम के प्रेमी बनकर सामायिक सवर-दया पौषध आदि से धर्म साधना का लाभ उठाने लगे।

जब आप करीब ६-७ वर्ष के थे अपने हमजोली साथियों के साथ खेल खेल रहे थे। चातुर्मास के दिन। ग्रामों में उस समय प्रायः मिट्टी के बने कच्चे मकान ही होते थे। ५-७ बालक जो एक भीत के सहारे आपके साथ खेल रहे थे सब के सब उठकर ज्योंही ५०-६० कदम आगे बढे होंगे कि कच्ची दिवार धड़ाम से ढह गई। आयुबल से सभी बच्चे वहां नही रहे वरना क्या होता ? कुछ कह नही सकते। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' वस्तुतः व्यक्ति के द्वारा आराधित धर्म ही सर्वत्र रक्षा करता है। इसी प्रकार एक बार कपास से गाडी भर कर आप बिजयनगर बेचने को गये कपास से भरी गाडी के ऊपर आप बैठे थे और किसान गाड़ी चला रहा था। एक जगह कीचड़ मे से होकर जब गाड़ी गुजर रही थी कि अचानक धक्का लगने से ऊपर बैठे हुए आप उछल कर कीचड़ में गिर पड़े। कपड़े तो कीचड़ से भर गये थे पर आपको कही चोट तक नही आई।

आप देवलिया कलां के पास ४ कोश की दूरी पर स्थित हुरड़ा ग्राम में व्यापारार्थ रहने लगे। कपास का क्रय विक्रय प्रमुख कार्य था। एक बार जब आप कपास से बोरे भरा रहे थे उस समय अचानक बोरे के मुख भाग पर बन्धा ५-७ किलो के वजन का पत्थर बन्धन से खुल गया। सीधा आपके शिर पर

वन्धी पगडी से टकराया फिर एक दांत को खण्डित कर जमीन पर आ गिरा। आप वाल वाल वच गये।

वि. सं १६६२ मे आपको टाइफाइड (मोतीझरा) निकला। उसमें फिर सन्निपात की सी स्थिति भी वन गई। काफी लम्बा समय निकल गया। जीवन की आशा भी धूमिल हो रही थी, तभी आपने यह निर्णय कर लिया कि यदि अनुकूल उपचार करते हुए इस रोग से बच जाऊंगा तो अवश्य दीक्षा ग्रहण कर लूंगा। जव आप धीरे धीरे स्वस्थ हुए तो आपकी धर्म भावना दृढ होती गयी।

वि. स. १६६८ के आस पास जव आप विजयनगर मे कपास का विक्रय कर अपने साथियो के साथ गाडियो मे वैठकर देवलिया जा रहे थे तव आपको मार्ग मे उस समय के कुख्यात डाकू लक्ष्मणसिंजी ने दल बल सहित आ घेरा आप धर्म की शरण लेकर नवकार मन्त्र के स्मरण मे लीन हो गये। तब साथियो से रुपये छीन लिये पर आपके रुपये छान वीन करने पर भी वच गये। आपको धम साधना पर दृढतम विश्वास हो गया। आप सीधे अपने काकाजी श्री कल्याणमलजी छाजेड़ के पास जाकर वोले-अब मै दीक्षित होऊंगा, साधु बनूंगा। आपकी क्या इच्छा है? काकाजी ने कहा-मैं भी तेरे साथ ही दीक्षित हो जाऊंगा? पर काल की विचित्र चाल कि वि. सं. २००० मे अचानक काकाजी का देहावसान हो गया। अव तो आप ससार से उद्विग्न होकर एव विरक्त होकर गुरुदेव की शरण मे आ पहुचे एव ज्ञान ध्यान मे लीन हो गये।

वि स. २००१ की फाल्गुन शुक्ला पचमी शनिवार के दिन पूज्य गुरुदेव श्री पन्नालालजी म. सा. ने आपको पुष्कर राज मे दीक्षा प्रदान की। उस समय आपकी उम्र ३३ वर्ष की हो चुकी थी फिर भी आपकी वुद्धि वड़ी निर्मल व तीक्ष्ण थी। व्याकरण, कोष, आगम आदि के साथ व्याख्यान की मधुर शैली मे आप पारगत हो गये। आपको गृहस्थ जीवन से ही कविता करने को रूचि थी। दीक्षित हो जाने के बाद उस रूचि का काफी विकास हुआ। आपने ३०० से अधिक चरित्रों की एव कवित्त-सवैया दोहा आदि की खूब रचना की है। आपकी रचना की यह विशेषता है कि वह सरल-सरस एव सुवोध भाषा शैली में गुम्फित है। कही पर दुरूहता एव क्लिष्टता नही है।

आपने भी अनेक स्थलो पर समाज में व्याप्त कुरीतियों एव वैमनष्य को दूर किया था। ऐसे क्षेत्रो मे भीलवाड़ा, मसूदा, भिणाय, टाटोटी, गोविन्दगढ़, थावला व पादू रूपारेल आदि क्षेत्र उल्लेखनीय है।

वि. सं. २००९ में होने वाले सादडी सम्मेलन में पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री के प्रतिनिधि बनकर जब आप पधार रहे थे। मार्ग में देसुरी की नाल में से होकर जाना पडा था। सूर्यास्त होने के कारण नाल के बीच में पर्वतों की श्रेणी में वृक्ष के नीचे रहना पड़ा। वह स्थान जगली जानवरो से व्याप्त था। वनराजसिंह की आवाजे बराबर सुनाई दे रही थी किन्तु रात्रि निरूपद्रव व्यतीत हो गई। सम्मेलन से पुनः लौटते हुए मारवाड़ में एक प्याऊ पर रात्रि ठहरना पड़ा। रात्रि में जब सब शांति पूर्वक सोये हुए थे कि अचानक ऊंटों वाले आ-धमके और आवाज लगाई यहां कौन है ? पानी पिलादो ! प्याऊ के पास सोये अन्य एक आदमी ने कहा यहां तो ढुंढ़िया महाराज है। टूंटी (नल) दबा के पानी पीलो। पानी पीकर वे सब बिना कुछ कहे चले गये। ऐसे स्थानो में भी आपकी मानसिक शांति अक्षुण्ण बनी रही।

स्वभाव में सरलता, वाणी में शालीन-मधुरता, व्यवहार में सहज-नम्र कुशलता, संयम में शुच्चिता व दृढ़ता, हृदय में उदारता व विशालता, विचारो मे अनाग्रहता एवं आचार में समुज्ज्वलता आपके विशिष्ट गुण है। आपके इन सभी गुणों से प्रभावित होकर आपको अनेक विशिष्ट अलकरणो (उपाधियों) से विभूषित किया है जैसे-स्वाध्याय-शिरोमणि, आशु-कवि, मरुधर-छवि मधुर प्रवक्ता आदि।

ज्योतिषाचार्य आगमज्ञानी पूज्य प्रववर्तक गुरूदेव श्री कुन्दनमलजी म. सा. के स्वर्गारोहण के पश्चात् अजमेर श्रावक संघ के तत्त्वाधान में चतुर्विध श्री सघ ने मिलकर आपको वि. स. २०४१ आसोज सुद १० (विजयादशमी) को प्रवर्तक पद से आभूषित किया।



स्वाध्याय शिरोमणि, आशुकवि, मरुधर [illegible], मधुर वक्ता, पंडित रत्न
प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री सोहनलालजी म. सा.

के आज्ञानुवर्ती साधु [illegible]

★ सरल स्वभावी श्री [illegible]जी म. सा.

★ विद्यार्थी श्री वल्लभ मुनि जी म. सा. '[illegible]'

★ तपस्वी श्री चान्दमलजी म. सा.

— साध्वी मण्डल —

1. साध्वी-प्रमुखा, ज्ञान [illegible], वयोवृद्धा गुरुणीजी श्री उमरावकंवरजी म. सा.
2. वयोवृद्धा श्री दीपकंवरजी म. सा.
3. वयोवृद्धा श्री सूरजकंवरजी म. सा.
4. वयोवृद्धा व्याख्यात्री श्री जयवन्तकंवरजी म. सा.
5. वयोवृद्धा श्री बदामकवरजी म. सा.
6. वयोवृद्धा श्री जड़ावकवरजी म. सा.
7. व्याख्यात्री श्री घेवरकंवरजी म. सा.
8. वयोवृद्धा श्री आनन्दकंवरजी म. सा.
9. वयोवृद्धा श्री रोशनकवरजी म सा
10. व्याख्यात्री श्री मैनाकवरजी म. सा
11. सेवाभावी विद्यार्थिनी श्री रतनकवरजी म. सा.
12. विदुषी व्याख्यात्री वा ब्र. श्री कमला कुमारीजी म. एम ए. (हिन्दी)
13. विदुषी व्याख्यात्री वा ब्र. साध्वी श्री ज्ञानलताजी म. 'प्राज्ञचन्दना'
14. विदुषी व्याख्यात्री वा ब्र. श्री दर्शनलताजी म 'प्राज्ञनन्दना'
15. विदुषी व्याख्यात्री वा ब्र श्री चारित्रलताजी म. 'प्राज्ञचन्दना'
    (तीनो एम. ए. [संस्कृत] फाइनल)
16. सेवाभावी विद्याभिलाषिणी श्री मानकवरजी म.
17. नवदीक्षिता वा. ब्र. विद्याभिलाषिणी श्री कीर्तिलताजी म.
18. नवदीक्षिता वा. ब्र. विद्याभिलाषिणी श्री कल्पलताजी म.



* * *

– शुद्धि-पत्र –

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	९	अध	अघ
३	१	जाग	जग
४	६	मन	भव
६	१८	च ावे	चढावे
१६	१८	जलचद	जलचर
१६	१८	संत वीस	सतवीस
१६	१९	थलचद	थलचर
१६	१९	उ॰नी	उन्नीस
१६	२१	पाँचो गत	पाँचों की गत
१६	२१	सखिये	रखिये
३९	३	सतावे	चेतावे
५१	८	मम	मन

कृपया:- काव्य त्रिवेणी (तृतीय धारा) मे उपरिलिखित अशुद्धियो को शुद्ध कर पढ़ने का प्रयास करावें ।



卐 देव, गुरु, धर्म 卐

(तर्ज—राधेश्याम रामायण)

--- देव ---

घनघाती कर्म को किये नष्ट, और मिटा दिये भव के फेरे ।
राग द्वेष क्षय किये जिन्होंने, वही 'देव' सच्चे मेरे ॥ १ ॥

--- गुरु ---

द्रव्य भाव निर्ग्रन्थ बने, संसार बन्ध से मुक्त हुए ।
कनक कामिनी को नहीं छूते, नव कोटी से त्याग किये ॥ २ ॥

कषाय पतली हुई जिन्हों की, रसना को वश में कीनी ।
इन्द्रिय जीत बने वैरागी, 'गुरु' शरण मैंने लीनी ॥ ३ ॥

--- धर्म ---

मानें आत्मवत् प्राणिमात्र को, कभी कष्ट नहीं उपजावे ।
बनूं उपासक उसी धर्म का, यह मेरे मन में भावे ॥ ४ ॥

'रत्नत्रय' का बन आराधक, भवजल से मैं तिर जाऊं ।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, नरभव लाभ उठा पाऊं ॥ ५ ॥

卐 अज्ञो को नही भायेगा 卐

सुन्दर सरस प्रभु भजन सुनावें, बधिर न ध्यान लगायेगा ।
शचि सम भी यदि रूप बनावें, अन्धा नहीं सराहेगा ॥ ६ ॥

मुक्ताफल का ढेर भले हो, बक नहीं चोंच लगायेगा।
मिश्री का कुंजा भी ला दे, गर्दभ कभी न खायेगा ॥ ७ ॥

अमित वृष्टि करे जलधर, मगशेल बून्द नहीं पायेगा।
धर्म वचन भी यों मुनि 'सोहन' अज्ञों को नहीं भायेगा ॥ ८ ॥

卐 हरि गीतिका छन्द 卐

श्री वीर का गुण गान कर, तब सफल हो मन कामना,
पतवार होगी पार जल्दी, धाम अक्षय पावना ।
वह स्रोत गुण का आज भी, अक्षुण्ण जग में बह रहा,
पी भाग्यशाली तृप्त हो गये, नष्ट अघ कीना महा ॥ ९ ॥

--- शिखरिणी छन्द ---

वही जोगी सच्चा, मन वचन काया वश करे,
सभी प्राणी जाने, निज सम, न हिंसा मन धरे।
गुणी साथे चर्चा, नियम सम वाणी मुख कहे,
करी जो मर्यादा, विषम - सम - थाने थिर रहे ॥ १० ॥

--- द्रुतविलम्बित छन्द ---

कनक के बल पे इतरा रहा, नयन से लख दीन न जो रहा।
समझ ले धन निश्चय जायगा, तब खड़ा रह तू पछतायगा ॥११॥

--- त्रोटक छन्द ---

भगवान बसे जिन के घट में, वह कौन कि भीति रखे मन में।
सब भांति रहे शुध मारग में, उनको न सतावत को जग में ॥ १२ ॥

इह लोक कि वा पर लोक कि वा, नहि शंक रखे भगवान कि जो,
तब तांहि अनेक हि कष्ट मिले, अपवर्ग कि ठोर कहां तिन को ॥ १३ ॥

दिलदार बनो, न बनो कृपणी, तब ही जाग में शुभ नाम वरो।
शुभ योग मिली लिछमी तुम को,कर खोल सदा भल दान करो ॥१४॥

मग चालत जीव बचावन का, शुभ भाव धरो हिय मांहि सदा।
यदि दुःख समान हि मान लिया,मुनि 'सोहन' कष्ट न पाय कदा ॥१५॥

--- दोहावली ---

ध्यान जिनेश्वर का धरो, तज कर सभी प्रपंच।
'सोहन' जग के काम ये, काम न आवे रंच ॥ १ ॥

राज काज सुख सम्पदा, गज घोड़े धन धाम।
आंख फिरी तेरे नहीं, 'सोहन' कर निज काम ॥ २ ॥

निशंक मत रह बावरे, काल फिरे चहुं ओर।
'सोहन' बचने के लिये, नहीं कहीं पर ठोर ॥ ३ ॥

मनमानी करता यहां, गिने नहीं अन्याय।
'सोहन' फिर पछतावसी, मार नरक में खाय ॥ ४ ॥

किये कराये आपके, कर्म शुभाशुभ दोय।
'सोहन' उदय विपाक पे, खुश नाखुश मत होय ॥ ५ ॥

कषाय वश हो आतमा, करता बुरे विचार।
'सोहन' अपने आपका, लुटा रहा है सार ॥ ६ ॥

रात दिवस भक्ती करे, कहलावे वो भक्त।
'सोहन' अन्तर नहीं जगा, कोरा समझो फक्त ॥ ७ ॥

परिषद् में अन्य रूप है, भीतर को है और।
'सोहन' ऐसे सन्त की, होय नरक में ठौर ॥ ८ ॥

मुक्ताफल का ढेर भले हो, बक नहीं चोंच लगायेगा।
मिश्री का कुंजा भी ला दे, गर्दभ कभी न खायेगा ।। ७ ।।

अमित वृष्टि करे जलधर, मगशैल बून्द नहीं पायेगा।
धर्म वचन भी यों मुनि 'सोहन' अज्ञों को नहीं भायेगा ।। ८ ।।

卐 हरि गीतिका छन्द 卐

श्री वीर का गुण गान कर, तब सफल हो मन कामना,
पतवार होगी पार जल्दी, धाम अक्षय पावना ।
वह स्रोत गुण का आज भी, अक्षुण्ण जग में बह रहा,
पी भाग्यशाली तृप्त हो गये, नष्ट अघ कीना महा ।। ९ ।।

--- शिखरिणी छन्द ---

वही जोगी सच्चा, मन वचन काया वश करे,
सभी प्राणी जाने, निज सम, न हिंसा मन धरे।
गुणी साथे चर्चा, नियम सम वाणी मुख कहे,
करी जो मर्यादा, विषम - सम - थाने थिर रहे ।। १० ।।

--- द्रुतविलम्बित छन्द ---

कनक के बल पे इतरा रहा, नयन से लख दीन न जो रहा।
समझ ले धन निश्चय जायगा, तब खड़ा रह तू पछतायगा ।।११।।

--- त्रोटक छन्द ---

भगवान बसे जिन के घट में, वह कौन कि भीति रखे मन में।
सब भांति रहे शुध मारग में, उनको न सतावत को जग में ।। १२ ।।

इह लोक कि वा पर लोक कि वा, नहि शंक रखे भगवान कि जो,
तब तांहि अनेक हि कष्ट मिले, अपवर्ग कि ठोर कहां तिन को ।। १३ ।।

दिलदार बनो, न बनो कृपणी, तब ही जाग में शुभ नाम वरो।
शुभ योग मिली लिछमी तुम को,कर खोल सदा भल दान करो ।।१४।।

मग चालत जीव बचावन का, शुभ भाव धरो हिय मांहि सदा।
यदि दुःख समान हि मान लिया,मुनि'सोहन'कष्ट न पाय कदा ।।१५।।

--- दोहावली ---

ध्यान जिनेश्वर का धरो, तज कर सभी प्रपंच।
'सोहन' जग के काम ये, काम न आवे रंच ।। १ ।।

राज काज सुख सम्पदा, गज घोड़े धन धाम।
आंख फिरी तेरे नहीं, 'सोहन' कर निज काम ।। २ ।।

निशंक मत रह बावरे, काल फिरे चहुं ओर ।
'सोहन' बचने के लिये, नहीं कहीं पर ठोर ।। ३ ।।

मनमानी करता यहां, गिने नहीं अन्याय।
'सोहन' फिर पछतावसी, मार नरक में खाय ।। ४ ।।

किये कराये आपके, कर्म शुभाशुभ दोय ।
'सोहन' उदय विपाक पे, खुश नाखुश मत होय ।। ५ ।।

कषाय वश हो आतमा, करता बुरे विचार ।
'सोहन' अपने आपका, लुटा रहा है सार ।। ६ ।।

रात दिवस भक्ती करे, कहलावे वो भक्त ।
'सोहन' अन्तर नहीं जगा, कोरा समझो फक्त ।। ७ ।।

परिषद् में अन्य रूप है, भीतर को है और ।
'सोहन' ऐसे सन्त की, होय नरक में ठौर ।। ८ ।।

सभी दुःखों का मूल है, जग मांही अज्ञान ।
'सोहन' सम्यग्ज्ञान बिन, कभी न हो कल्याण ॥ १९ ॥

फल चाहे तो मूल का, सिंचन करो सुज्ञान ।
'सोहन' फल को सींच कर, किया मूल का हान ॥ २० ॥

श्वान घटे भेड़े बढे, क्या कारण मन्त्रीश ।
'सोहन' रोटी घास दे, करो परीक्षा ईश ॥ २१ ॥

सूई कैंची को लखो, 'सोहन' करो विचार ।
एक रहे सिर ऊपरे, दूजो ठोकर मार ॥ २२ ॥

बूंद बूंद के मिलन से, आगी देत बुझाय ।
'सोहन' जो अलगी रहे, दे अस्तित्व गंवाय ॥ २३ ॥

तृण तृण को यदि जोड़ ले, 'सोहन' घर ढंक जाय ।
सर्दी गर्मी वृष्टि से, देवे सहज बचाय ॥ २४ ॥

चूना पत्थर ईंट से, भवन बने गुलजार ।
'सोहन' यदि न्यारा रहे, निकले नहिं कछु सार ॥ २५ ॥

पहर राज पा एक नर, हो गया मालो माल ।
'सोहन' दूजा पाय के, कीना बदतर हाल ॥ २६ ॥

ज्वाला बाहर की बुझे, पानी जो मिल जाय ।
'सोहन' अन्तः शमन तो, समता बिना न थाय ॥ २७ ॥

आचारः श्रुत, तन, वचन, वाचन, मति, प्रयोग ।
संग्रह आठों सम्पदा, के धारक गणि लोग ॥ २८ ॥

शल्य समो खटके दिल में, तज लाज अकाज करे नर कोई,
वक्त गयो नहिं वापिस आवत, यों कह सन्त रहे समझाई।
क्यों मतिहीन बने लख खेल, कई छिन मांही गये विरलाई,
'सोहन' जाग उठो परलोक, सुधारन की पल खो मत भाई ॥३॥

क्यों अति मान करे नर मूरख, पाय विभूति रहे रंग रातो,
देह लखी बल युक्त सदा बल हीन जनों पर जोर जमातो।
यौवन रंग पतंग समो मत, होय अरे मद में मदमातो,
यों मुनि 'सोहन' ना समझे तब ही जग मांहि रहे दुःख पातो ॥४॥

पाकर सम्पति फूल गयो मन मांहि नहीं कुछ भान कियो है,
खाकर पेट बढाय लियो बस मान रयो अतिलाभ लियो है।
दान कियां बिन खेह करी नर हाथ लगो सब हार गियो है,
प्राज्ञ कृपा मुनि 'सोहन' यों सच बात कही समझाय रियो है ॥५॥

पाकर मानुष के भव को नहिं, एम विचारत मानस मांही,
जन्म लियो भगवान भजूं पर भूल रयो विषयारस तांहीं।
काल अचानक आय उठावहि क्या गति हो गति चौरस मांही,
'सोहन' यों समझाय कहे, कछु लाभ उठा नर को भव पाई ॥६॥

काम ही काम कहे मुख से, नहिं नाम कभी जिनदेव लियो है,
पी मदिरा इन मोह तणी दिन रात गिणी नहीं एक कियो है।
होकर के धनदास, मिली नर आयु उसे भी गंवाय रयो है,
प्राज्ञ कृपा मुनि 'सोहन' यों अब जाग घणो भव सोय गयो है ॥७॥

काल बली सब थान फिरे, नहिं रोक सके तिहुँ लोक मंझारी,
बाल जवान रु बृद्ध भले, सब को निगले यम धाक करारी।
क्यों नर सोय अचेत रहा, सुन जावन का दिन आय रहा री,
प्राज्ञ कृपा मुनि 'सोहन' भासत, काल सदा नजदीक खड़ा री ॥८॥

स्थानक नाम धरी करते सब आरंभ सारंभ ज्यूं घर जानी,
खावण पीवण की सब राखत, ये बिजली फलश सावध पानी।
ध्यान रखे नहीं धर्म प्रवृत्ति को, होय विवाह वहां मनमानी,
निर्वद्य राख सके नहीं 'सोहन' क्यों फिर थानक केय अज्ञानी ॥१५॥

केवल धर्म करे सब आकर, थानक एहि हिते करवाया,
संवर का यह साधन था पर आश्रव का अब स्थान बनाया।
सन्त सती यदि शोध करे शुध स्थान मिले नहीं ढूंढत भाया,
प्राज्ञ कृपा मुनि 'सोहन' ये सब काल कली युग रंग दिखाया ॥१६॥

सन्त कभी चल आय अचानक, जीमण थानक मांहि दिखावे,
देख दशा इम थानक की जहँ जीव चले, लख जी दुख पावे।
श्रावक को दिखलाय कहे तब ठोर कहीं नहि यों दरसावे,
स्थानक नाम दियो मुनि 'सोहन' शब्द लगा दुनि क्यों भरमावे ॥१७॥

श्रावक होय विवेक रखे नित, जीव की घात कभी नहीं होवे,
कीड़ि मकोड़ि फिरे जहँ थानक पूंज उसे फिर बाहर ढोवे।
आज अज्ञान बढो जग में तब जीव रिछा हित भू कुण जोवे,
धर्म न होय विवेक बिना 'मुनि सोहन' जाण अजाण क्यों सोवे ॥१८॥

देव गुरु अरु धर्म गिणे नहीं दाम हि दाम लगे मन मांही,
मन्त्र रु तन्त्र करे कितने पर भाग्य बिना न मिले इक पाई।
जाल बिछाकर धूर्त सदा मुनि वेष धरी करले वश मांही,
श्रावक हो कुछ भान करो 'मुनि सोहन' यों जिन धर्म कुं पाई ॥१९॥

क्रोध तज्यो नहि मान तज्यो नहिं, लोभ तज्यो नहिं हे मतवारे,
वेश धरी जिन सन्त कहावत लाज न आवत क्यों भव हारे।
जन्तर मन्तर तन्त्र करे नित साधुपणां महं धूल हि डारे,
लोक हसावत यों 'मुनि सोहन' दोनुं ही लोक में जन्म बिगारे ॥२०॥

ध्याऊँ सदा 'अरिहन्त' सुदेव कुं लौकिक देव कभी नहीं ध्याऊँ,
नार सुं नेह करे न कभी, धन धाम सुं दूर सदा 'गुरु' चाहूँ।
जीव सभी निज आतम समो लखि धर्म दयामय शुद्ध रमाऊँ,
प्राज्ञ कृपा मुनि 'सोहन' यों निज तीन हि रतन अमोलक पाऊँ ॥९॥

मोह की फाँस लगी मन में इम मान रयो सब है जग म्हारो,
किन्तु कभी नहि सोच सक्यो जिन कारण बांध रयो अघ भारो।
मृत्यु से आय बचाय सके कहो, कौन पदारथ है अस थाँरो,
प्राज्ञ कृपा मुनि 'सोहन' यों हर बार करे मत तू पतियारो ॥१०॥

आगम सम्मुख राख चले यह सन्त की रीत गुरू फरमावे,
आज अहो ! लख सन्त दशा मन, मांहि घणो दुख अन्त न पावे।
आगम का कछु ज्ञान नहीं अब, केवल वाक कला दिखलावे,
'सोहन' वक्त विचित्र भयो मुनिराज कहाय के पाप करावे ॥११॥

वाहन का उपयोग करे नहीं, चालत पाव सदा उभराने,
जाय गृहस्थ दुवार सुयाचित ले जल अन्न, अशुद्ध न आने।
छूअत नाहि कभी पइसो, विन कारण एक रहे न ठिकाने,
लोच करे सिर केश का 'सोहन' जैन मुनी उसको पहिचाने ॥१२॥

श्रावक भोजन नाहि करे निशि भोजन कन्द कभी नहीं खावे,
नार पराइ गिणे भगिनी अरु मात समान सदा सुख पावे।
वैर विरोध रखे नहीं भीतर, बाहर में अति नेह दिखावे,
त्याग करे दुरवीसन सात कुं 'सोहन' वो हि सुश्राद्ध कहावे ॥१३॥

ते नर आक धतूर उगावत, कल्पतरु घर बाहर डाली।
देय अमोलक कीमत की मणि, लेकर कांच भया खुशहाली।
हस्ति मिला गिरिराज समा उसके बदले खर लेत कुचाली,
प्राज्ञ कृपा मुनि 'सोहन' जो नर धर्म तजी अघ चाहत ख्याली ॥१४॥

स्थानक नाम धरी करते सब आरंभ सारंभ ज्यूं घर जानी,
खावण पीवण की सब राखत, ये बिजली फ्लश सावध पानी।
ध्यान रखे नहीं धर्म प्रवृत्ति को, होय विवाह वहां मनमानी,
निर्वद्य राख सके नहीं 'सोहन' क्यों फिर थानक केय अज्ञानी ।।१५।।

केवल धर्म करे सब श्राकर, थानक एहि हिते करवाया,
संवर का यह साधन था पर श्राश्रव का अब स्थान बनाया।
सन्त सती यदि शोध करे शुध स्थान मिले नहीं ढूंढत भाया,
प्राज्ञ कृपा मुनि 'सोहन' ये सब काल कली युग रंग दिखाया ।।१६।।

सन्त कभी चल आय श्रचानक, जीमण थानक मांहि दिखावे,
देख दशा इम थानक की जहँ जीव चले, लख जी दुख पावे।
श्रावक को दिखलाय कहे तब ठोर कहीं नहि यों दरसावे,
स्थानक नाम दियो मुनि 'सोहन' शब्द लगा दुनि क्यों भरमावे ।।१७।।

श्रावक होय विवेक रखे नित, जीव की घात कभी नहीं होवे,
कीड़ि मकोड़ि फिरे जहँ थानक पूंज उसे फिर बाहर ढोवे।
श्राज श्रज्ञान बढो जग में तब जीव रिछा हित भू कुण जोवे,
धर्म न होय विवेक बिना 'मुनि सोहन' जाण श्रजाण क्यों सोवे ।।१८।।

देव गुरु अरु धर्म गिणे नहीं दाम हि दाम लगे मन मांही,
मन्त्र रु तन्त्र करे कितने पर भाग्य बिना न मिले इक पाई।
जाल बिछाकर धूर्त सदा मुनि वेष धरी करले वश मांही,
श्रावक हो कुछ भान करो 'मुनि सोहन' यों जिन धर्म कुं पाई ।।१९।।

क्रोध तज्यो नहि मान तज्यो नहिं, लोभ तज्यो नहिं हे मतवारे,
वेश धरी जिन सन्त कहावत लाज न आवत क्यों भव हारे।
जन्तर मन्तर तन्त्र करे नित साधुपणां महं धूल हि डारे,
लोक हसावत यों 'मुनि सोहन' दोनुं ही लोक में जन्म बिगारे ।।२०।।

भाई की भाई तो भीड़ चढे पर आज तो भाई भी बन्ध कहावे,
लाय पड़ौसी को माल खिलाय पे भाई का भाई न खाने ही पावे ।
जाय कचेरी में इंच जमीं हित कैसे भला इसके रह जावे,
'सोहन' यों नहि सोच सक्यो सब छोड़ यहां पर लोक सिधावे ॥२१॥

है कलिकाल महा विकराल सदा दुखदायि सुनो नर नारी,
जो नर सोच चले इस में वह निश्चय ही सुख ले अनपारी ।
काम रु क्रोध तजे मन से नित भक्ति करे प्रभु की हरबारी,
आगम आण धरे 'मुनि सोहन' तो झट मोक्ष मिले सुखकारी ॥२२॥

ज्ञान नहीं जिनके घट में वह क्या उपदेश सुने गुरु पासे,
दे नहि शान्ति बड़े जन को, वह सेवक के व्रत को न निभासे ।
निर्धन की नहि पूछ कहीं पर भोग भला कब कौन जिमासे,
'सोहन' नेम न पाल सके किस,भांति सु उत्तम थानक पासे ॥२३॥

नमता नहीं देख बड़े जन को वह मानव नाहि गधा कहलावे,
समता नहि जीवन में जिनके वह शान्ति कहीं नहि यों बतलावे ।
भमता गति चार फिरे जग में वह रोष सदा दिल बीच बसावे,
गमता मुनि 'सोहन' धर्म जिसे वह पाप तजी नित धर्म कमावे ॥२४॥

१ आलस में समय जाय, २ निराशा है मन मांय,
३ सभी साथ बात में जो, कटुता दिखावे है ।
४ काम देख जी चुराय, बहाने अति बनाय,
५ छोटा काम करने में, अति शरमावे है ।
६ दुःखी होवे वही नर, जो न देखे निज घर,
आय से अधिक नित, खरच करावे है ।
षट् अवगुण सेवे, चाहे कोटीपति होवे,
'सोहन' वहां से रमा, दूर चली जावे है ॥ २५ ॥

१ अभिमान त्याग कर, सेवा करे स्नेह धर,
सभी साथ प्रेम रख, योग्यता दिखावे है ।
२ चाहे जैसा आवे काम, उसे न जाने निक्काम,
परिश्रम कर उसे, सफल बनावे है ।
३ आय का करे विचार, घर की स्थिति संभाल,
मित व्ययी बन कर जीवन चलावे है ।
४ नीति युक्त व्यवहार, ये ही चारों गुण धार,
'सोहन' वही तो द्रव्य – भाव , रमा पावे है ॥ २६ ॥

रूल्यो है अनन्ती बार, परभव खाई मार,
वेदना सही अपार, अति दुःख पायो है ।
नरक तिर्यंच मांय, पर वश पणे भाय,
खान पान शुद्ध नांय, उन्हें विसरायो है ।
बार बार कीनो भूल, जिन्हों से हुआ ये शूल,
देख माया मती फूल, गुरु फरमायो है ।
'सोहन' तू दिल धर, यदि चाहे मोक्ष घर,
पण्डित मरण मर, नर भव पायो है ॥ २७ ॥

ज्ञानी गुरू पास आय, ज्ञान सीख चित लाय,
कर जोड़ नमा काय, आलस बिगोइये ।
एकाग्रह ध्यान धर, सीखे पे मनन कर,
मिथ्या बातें तजकर, ज्ञान में पिरोइये ।
हठाग्रह सद्य तज, बने मती निरलज्ज,
बन जा चरण रज, मन मैल धोइये ।
जीव से तू शिव बन, 'सोहन' अमूल्य धन,
आर्य भूमि नरतन, व्यर्थ मत खोइये ॥ २८ ॥

गौर वर्ण तन पाय, फूले मती मन मांय,
समझ बादल छाय, मान को मिटाइये ।
क्षण में हो क्षीण देह, जीवन को लाहो लेह,
एक दिन होवे खेह, खाली मत जाइये ।
पाँचों इन्द्रियां तैयार, तब तक ले ले सार,
गुरु वाक्य दिल धार, भव पार होइये ।
पुण्य के प्रबल बल, आयु रूपी मिला जल,
'सोहन' तू धोले मल, व्यर्थ मत खोइये ॥ २९ ॥

पूर्व के संयोग योग, पाये हैं सभी ये भोग,
काया भी मिली नीरोग, कुछ कर जाइये ।
कुटुम्बी मिले अपार, पूछ रहे बारम्बार,
धन्य गिने अवतार, फूले न समाइये ।
धन के भरे भण्डार, रूपवती मिली नार,
हुए बाल दोय चार, दर्प मत लाइये ।
लागे नहीं कुछ वार, क्षण मांही होवे छार,
'सोहन' तू ले ले सार, व्यर्थ मत खोइये ॥ ३० ॥

लिछमी की करे जोड़, लगावे है अति दौड़,
समझे न मूढ कछु, छोड़ेगी छटाक दे ।
रसवती रस भरी, मालपुआ खीर – पुरी,
मुख मांही रख झट, उतारे गटाक दे ।
सुन्दर सुखद शैय्या, सुखमाल परिधान,
प्रभु नाम लिया बिन, सोयगो सटाक दे ।
'सोहन' कहे रे भ्रात ! सोची नहीं निज बात,
काल फाल मार कर, खायगो टपाक दे ॥ ३१ ॥

सुणबा बखाण आय, छोटा छोटा बच्चा लाय,
सभा में उन्हें रमांय, वरज्यां न माने है ।
केई हल्ला कर रह्या, इत उत देख रह्या,
केई बैठा ऊंग रह्या, नींद में मस्ताने है ।
मिलकर बहु नारी, शोर – गुल करे भारी,
सभा दी बिगाड़ सारी, बात करे छाने है ।
'सोहन' मुनि यो थांने, योग मिल्यो सुणवां ने,
मन रह्यो नहीं ठाणे, पड्यो कांई पाने है ।। ३२ ।।

उपालम्भ देवे आत, गांवों में न सन्त आत,
गांवों में जावें तो भाई, सोधे मिले नाँही है ।
लगा घर धन्धे मांही, फुर्सत तनिक नांही,
स्थानक में आया नहीं, मिला राह मांही है ।
सन्त कहे आये नहीं, काम घणो करूँ काहीं,
अभी गांव रहा जाई, मुख से सुनाई है ।
दोष देता बार बार, 'सोहन' श्रावकाचार,
देख लिया सब सार, सन्त ने सुनाई है ।। ३३ ।।

राहगीर बन आय, मिली है तुझे सराय,
रुक गया स्थान पाय, निज का न मानिये ।
यहां पे लुटेरे चार, पास में तेरे है माल,
चुरा लेंगे चाल चाल, गाफिल न सोइये ।
सोगया होके निश्शंक, धन खोय बना रंक,
मलता रहा वो हाथ, बात सच जानिये ।
ज्ञानी जन बार बार, चेतावे दे दे पुकार,
'सोहन' समझ सार, खाली मत जाइये ।। ३४ ।।

स्मरण चिंतन ध्यान, मन मांही नित आन,
देव अरिहन्त मान, भक्ति नित कीजिये ।
द्रव्य परिग्रह त्यागी, निर्ग्रन्थ महा वैरागी,
रुचि मोक्ष की ही लागी, ऐसे गुरु मानिये ।
स्वाध्याय के पंच विध, तप बारह भेदे सिद्ध,
दान करे पाई रिद्ध, जिन धर्म जानिये ।
षड् कर्म नित्य करे, 'सोहन' संसार तिरे,
भव चक्र नहीं फिरे, शुद्ध श्राद्ध मानिये ॥ ३५ ॥

सुन्दर सयाना नर, पूरब कमाई कर,
मनुलोक आय माया, भोग में न मोहिये ।
जस वास रास खूब, झूम झूम कर नर,
निज घर डर रख, ऊँच दृग् जोइये ।
ज्ञानी ध्यानी दानी जानी, जिनेन्द्र वचन उर,
धुर धर तरन को, माग राग मो हिये ।
जाया सो धराया नाम, काम कछु कर जाओ,
'सोहन' सुरंग समै, व्यर्थ मत खोइये ॥ ३६ ॥

— थोकड़े सम्बन्धी दोहे —

नहीं बोल्या में नव गुणा, राग द्वेष नहीं दोय ।
चार कषाय न ऊपजे, तीन दण्ड नहीं होय ॥ १ ॥

एक गति त्रस नाल बहि, दो गति ऊँचा लोक ।
तीन है तिर्च्छा क्षेत्र में, चार कही अधो लोक ॥ २ ॥

ऊँचा लोक में दस कह्या, नीचा में इक्कीस ।
तिर्छा में दण्डक गिणो, पूरा आठ कम बीस ॥ ३ ॥

भवन व्यन्तरा ज्योतिषी, नरक तिर्यंच के मॉय ।
स्त्री पंडग इन सात में, समकीती नहि जाय ॥ ४ ॥



卐 आगति गति का थोकड़ा 卐

अरी, हरी, करि, केहरी, भय खा सब भग जाय ।
वर्द्धमान के जाप से, कष्ट नष्ट हो जाय ॥ १ ॥

पतित पाविनी भगवती, वाणी - गंग - प्रवाह ।
चिर संचित अघ दाग को, धोलो यदि शिव चाह ॥ २ ॥

अनुकम्पा दिल धार ने, कीनो अति उपकार ।
भवसागर में डूबता, दीनो गुरुवर तार ॥ ३ ॥

आगम श्री जीवाभिगम, आदि पाठ अनुसार ।
पांच सौ त्रेसठ जीव की, कहूँ गतागत सार ॥ ४ ॥

— नरक गति —

प्रथम नरक की आगती, पांच+बीस की जान ।
दूजी नरक की बीस की, गत चालीस प्रमान ॥ ५ ॥

तीजी से छट्ठी नरक, आगत क्रम से जान ।
उन्नीस, अठ्ठारह तथा, सतरह, सौलह मान ॥ ६ ॥

गत सब की चालीस है, किन्तु सातवी मांय ।
आगत सौलह स्थान की, तिर्यक् दस में जाय ॥ ७ ॥

— देव गति —

भवनपती और व्यन्तरा, आगत शत+इग्यार ।
ज्योतिषी, पहला देव की, है पच्चास उदार ॥ ८ ॥

देवलोक दूजा तथा, प्रथम जान किल्वीष ।
आगत चालिस, तीस की, गत है छय्यालीस ॥ ९ ॥

तृतीय देव. से आठ तक, आगत समझो वीस ।
प्राज्ञ कृपा 'सोहन' कहे, गत इनकी चालीस ॥१०॥

नवमें अमर विमान से, तक सर्वारथ सिद्ध ।
आगत पन्द्रह की तथा, गत हैं तीस प्रसिद्ध ॥११॥

— तिर्यंच गति —

पृथ्वी, पानी, वनस्पति, दौ सौ तैयालीस ।
आगत है, गत जानिये, इक सौ साठ+उन्नीस ॥१२॥

तेउ वायु की आगती–लड़ी, गती अड़चास ।
आगत गत विकलेन्द्रि की, लड़ी कहावे खास ॥१३॥

असन्नी तिर्यंच में, पंचेन्द्रिय की जात ।
आगत लड़, गत तीन सौ–पिच्चाणु साक्षात् ॥१४॥

पंचेन्द्रिय सन्नी तिरी, के हैं पांच प्रकार ।
जल, थल, खेचर, उरपरि, भुजपरिसर्प उदार ॥१५॥

पांचों की आगत कही, दौ सौ सड़सठ भ्रात ।
गत पांचों की अलग है, पढिये सभी क्रमात ॥१६॥

पंच शती में जोड़िये, जलचद के संत वीस ।
थलचद के इक्कीस और, खेचर के उन्नी ॥ १७ ॥

उर परि के तेवीस और, भुजपरि के दस+सात ।
यों पांचों गत कही, सखिये जिनको याद ॥ १८ ॥

— मनुष्य गति —

आगत असन्नी मनुज की, एक सौ सित्तर एक ।
गत एक सौ गुण्यासी की, कही सूत्र में नेक ॥ १९ ॥

सन्नी नर की आगती, ढाई सौ+छब्बीस ।
पाँच सौ त्रेसठ की गती, भाखी श्री जगदीश ॥ २० ॥

देव कुरु, उत्तर कुरु, इनकी आगत बीस ।
गत दोनों की एक है, एक सौ अट्ठाबीस ॥ २१ ॥

हरि, रम्यक् आवास की, आगत तो है बीस ।
गत इनकी बतला रहे, इक सौ ने छब्बीस ॥ २२ ॥

हेमवय, हैरण्यवय, आगत मानो बीस ।
एक सौ ने चौबीस की, गत है विश्वावीस ॥ २३ ॥

छप्पन अन्तर्द्वीप की, आगत है पच्चीस ।
गत एक सौ दो की भली, फरमाते हैं ईश ॥ २४ ॥

तीर्थंकर और केवली, की आगत लो मान ।
अड़तिस, व सौ+आठ, की गती मोक्ष का स्थान ॥ २५ ॥

चक्रवर्ती की आगती, बय्यासी की होय ।
गत है चौदह नरक की, भविजन लेओ जोय ॥ २६ ॥

हलधर, हरि की आगती, तेय्यासी, बत्तीस ।
हलधर की पदवी अमर, हरि गत छह क्रम बीस ॥ २७ ॥

मांडलीक की आगती, ढाई सौ+छब्बीस ।
मरकर जाने की जगह, पंचशती+पैंतीस ॥ २८ ॥

शुद्ध श्रमण की आगती, दौ सौ सित्तर + पांच ।
गत है ऊंचा लोक की, सित्तर लेना जांच ॥ २९ ॥

साधु विराधक आगती, दौ सौ सित्तर जान ।
गत इक सौ चौवीस की, यह जिनवर फरमान ॥ ३० ॥

आज्ञा पालक श्राद्ध की, आगत भाखी ईश ।
दौ सौ छिन्तर की तथा, गत है बय्यालीस ॥ ३१ ॥

आज्ञा खण्डित श्राद्धकी, दौ सौ सित्तर + एक ।
आगत हैं, गत जानिए – एक सौ बाइस नेक ॥ ३२ ॥

सम्यक्त्वी की आगती, तीन सौ त्रेसठ मान ।
गति माने हैं चहुं विधी, जिनका करुं बयान ॥ ३३ ॥

दौ सौ बाईस भी तथा, ढाई सौ ने आठ ।
दौ सौ बय्यासी पुनः, त्रिशत + दस और आठ ॥ ३४ ॥

आगत मिथ्यादृष्टि की, त्रिशत + छासठ जान ।
गत इनकी है पंचशती + त्रेपन के परमाण ॥ ३५ ॥

मिश्रदृष्टि की आगती, मिथ्यादृष्टि समान ।
मिश्र दशा में ना मरे, अतः अमर यह स्थान ॥ ३६ ॥

प्रथम वेद की आगती, तीन सौ सित्तर + एक ।
पांच सौ ने इगसट्ठ की, गती जानिये नेक ॥ ३७ ॥

पुरुष वेद की आगती, नारी वेद समान ।
जीवों के सब भेद की, गत इसकी लो जान ॥ ३८ ॥

आगत तीजे वेद की, ढाई सौ+पैंतीस ।
पुरुष वेद सम है गती, फरमाते जगदीश ॥ ३९ ॥

नो गर्भज की आगती, तीन सौ ने उनतीस ।
गत इनकी ज्ञानी कहे, पौने चार सौ+बीस ॥ ४० ॥

नो गर्भज पंचेन्द्रि की, ढाई सौ+दस+पांच ।
आगत है, गत जानिये, त्रिशत+निव्वे+पांच ॥ ४१ ॥

गर्भज की आगत कही, ढाई सौ+पैंतीस ।
गत त्रैसठ और पांच सौ, यही उदारिक की स ॥ ४२ ॥

वैक्रिय की आगत सुनो, इक सौ ग्यारह भ्रात ।
गत है छयालीस की, सोहन मुनि साक्षात ॥ ४३ ॥

आगत समुच्चय वैक्रिये, तीन सौ सित्तर+एक ।
गत पांच सौ त्रेसठ तणी, यही सन्नी की नेक ॥ ४४ ॥

असन्नी की आगती, दो सौ तथ्यालीस ।
गत है साढे तीन सौ, ऊपर पैंतालीस ॥ ४५ ॥

आहारक की आगती, दो सौ सित्तर+पांच ।
गत सित्तर की जो कही, लो आगम से जाँच ॥ ४६ ॥

= प्रशस्ति –

पूज्य प्राज्ञ गुरुदेव की, हो गई कृपा अपार ।
मुनि 'सोहन' ने जोड़कर, दोहे किये तैयार ॥ १ ॥

५ १ ० २
पाण्डव-भू-ख-भुजाब्द में, गुलाबपुरा चौमास ।
आश्विन शुक्ला प्रतिपदा, सफल हुई मन आस ॥ २ ॥

卐 जिनेन्द्र - स्तुति 卐

(तर्ज- मन डोले, मेरा तन डोले०)

जिनराया, त्रिशला जाया, करदे बेड़ा पार रे,
मैं शरण तिहारी आया हूँ ॥ टेर ॥

काल अनन्ता जग में भटका, मिली नहीं कहीं साता ।
नर्क निगोद की महा वेदना, याद किया भय आता-अजी हां-
बार बार यह,जन्म मरण सह, हो गया दुःखी अपार रे ॥ मैं० १ ॥

तूं ही मुझको तारणहारा और न जग में कोई ।
अन्य देव का शरणा लेकर, व्यर्थ जिन्दगी खोई-अजी हां-
भव भव मांही, मेरे सहायी, बनकर कर उद्धार रे ॥ मैं० २ ॥

सुनकर आया तेरे द्वारे, पापी जन को तारे ।
मुझ सा पापी नहीं जगत में, *विरद नाथ ! विचारे-अजी हां-
दीन सहायक,सब विधि लायक, गुण गाऊं हरबार रे ॥ मैं० ३ ॥

अब की बार आप संभारे, पड़ी पोत मझधार ।
करके श्रम मैं हार गया हूँ, सुन ले नाथ पुकार-अजी हां-
डूबती नैया, बन के खवैया, सद्य लगादे पार रे ॥ मैं० ४ ॥

अनन्त ज्ञान दर्शन को पाऊं, बनूं आप स्वामी ।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' की, मिट जावे सब खामी-अजी हां-
दयानिधी, कर पूर्ण ऋद्धि, मै भरलूं ज्ञान भंडार रे ॥ मैं० ५ ॥



*अपना कर्त्तव्य ।

卐 महावीर - स्तुति 卐

(तर्ज- जब तुम्ही चले परदेश०)

कर महावीर का जाप, मिटे संताप, सदा सुखकारी,
तुम जपो सभी नर नारी ।। टेर ।।

जो शुद्ध मन वच से ध्यान करे, मन चिन्तित सब ही काज सरे ।
है नाम मन्त्र की महिमा अपरम्पारी ।। तुम० १ ।।

शीत ताप बिन औषध भागे, डायण सायण पिण नहीं लागे ।
दुष्ट मुष्ट सब नष्ट होय बीमारी ।। तुम० २ ।।

दुश्मन भी सज्जन हो जावे, सब कलह क्रूरता मिट जावे ।
राज कचहरी फतह होय हरबारी ।। तुम० ३ ।।

'ओम् नमो भगवते वर्द्धमानाय' जप, *त्रयोदशी आयम्बिल कर तप।
मिट जाय दरिद्रता मिले लक्ष्मी भारी ।। तुम० ४ ।।

गुरु प्राज्ञचन्द्र ने फरमाया, संशय नहीं इसमें कुछ भाया ।
'सोहन' ध्यान से पहुँचे भवोदधि पारी ।। तुम० ५ ।।



卐 जिनवाणी की आरती 卐

(तर्ज- जय महावीर प्रभो०)

ओम् जय जय जिनवाणी - माता - जय जय जिनवाणी ।
अनन्त ज्ञान की दाता माता भविजन सुखदानी ।। ओम्० ।।

प्रभु मुख से थी प्रकटी वाणी, गणधर श्रुतधारी ।। माता० ।।
ज्ञान [1]पयोनिधि जाय मिली मां, भङ्ग तरङ्ग वारी ।। ओ० १।।

---

*तेरस । 1 समुद्र ।

प्रेम से मिलन करे सुर मानव, मृग हरि हर्षानी ।। माता० ।।
विश्व विख्याता सब जग त्राता, मोटी महारानी ।। ओम्० २ ।।

मिथ्या १तिमिर-नसावन अम्बा, भानु जिम छाजे ।। माता० ।।
सुनत मगन हो सुर मानव गण, जोजन में गाजे ।। ओम्० ३ ।।

पतित-उद्धारन भविजन-तारण, पावन अघहारी ।। माता० ।।
अनन्त जीवों को तारे माता, अब तो मुझ बारी ।। ओम्० ४ ।।

संघ सकल मिल विनति करत है, अर्जी यह धारी ।। माता० ।।
'स्वाध्यायी संघ' शरण तिहारी, जन्म मरण टारी ।। ओम्० ।।

'सोहन मुनि' थांरो शरण लियो है, भगवती सुखदानी ।।माता०।।
सकल संघ में सम्पति अनुदिन, रखियो जिन वाणी ।।ओम्. ६।।

गुलशन गुलाबपुरे* गुलक्यारी, फूले फुलवारी ।।माता०।।
'स्वाध्यायी संघ अमर रहे', जिम सब नग सरदारी ।।ओम्. ७।।



卐 प्रभु से प्रार्थना 卐

(तर्ज—पदम प्रभु पावन नाम)

नाथ ! मैं तो आयो शरण तिहारी, देवो भवोदधि तारी ।। टेर ।।

पुत्र पौत्र और कुटुम्ब कबीलो, सुन्दर मिल गई नारी ।
मकड़ी जाल ज्यूं जाल बिछाकर, फांस लियो संसारी ।।नाथ. १।।

सत्संगत पल भर नहीं कीनी, कीनो काम बजारी ।
रात दिवस घर धन्धे में पचकर, ऊमर खोई सारी ।।नाथ. २।।

---

१ अन्धकार । *जिस क्षेत्र मे बोले उसका नाम बोलना ।

काम, क्रोध मद, मोह फांस में, उलझ रह्यो हूँ भारी ।
भूल गयो मैं हिताहित अपणो, बण रह्यो हूँ अविचारी ।।नाथ. ३।।

•अघ अगणित करिया भव भव में, लेखो नहीं है लिगारी ।
पापोद्धारक समझ 'सोहन मुनि' चरण शरण ली थांरी ।।नाथ. ४।।



卐 जागरण-सन्देश 卐

(तर्ज—गावो गावो ए प्यारे भइओ ! गुरुवर के गुणगान)

धरलो धरलो अयि प्यारे मित्रों ! सदा जिनेश्वर ध्यान ।। टेर ।।

गया वक्त नहीं वापिस आवे, यह ज्ञानी फरमान ।
कितना सुन्दर समय मिला है, जरा इसे पहिचान ।। ध. १ ।।

उलझ रहे हो जगत बीच तुम, अपना अपना मान ।
कौन तुम्हारा तुम हो किसके, कुछ तो करलो ज्ञान ।। ध. २ ।।

पाप पुण्य दो संग चलेंगे, पड़ा रहे सामान ।
जर जेवर अरु कोठी बंगले, छोड़ चले इन्सान ।। ध. ३ ।।

ऐसा अवसर मिले न तुमको, उत्तम नर भव जान ।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे रटो वीर भगवान ।। ध. ४ ।।



卐 आत्मार्थी को उद्बोधन 卐

(तर्ज—पूर्ववत्)

करले करले अयि प्यारे मेरे, आतम का उद्धार ।। टेर ।।

• पाप ।

दुर्लभ मानव तन को पाकर, क्यों खोता बेकार।
इन्द्र चाहना करे अहोनिश, पाऊं नर देह सार ।।करले. १।।

पुण्य प्रभावे मिल गया साधन, करले पर उपकार।
पुण्य क्षीण होने पर तेरा, रहे न कुछ अधिकार ।।करले. २।।

तन धन यौवन क्षणिक काल के, फूले मती गिवांर।
पल में पलट जाय बादल ज्यूं, संशय नहीं लिगार ।।करले. ३।।

गया समय नहीं पीछा आवे, कर लाखों उपचार।
समय एक प्रमाद करे मत, वीर वचन दिल धार ।।करले. ४।।

सत्संगत का ऐसा अवसर, मिले नहीं हर बार।
प्राज्ञचन्द्र गुरुदेव प्रसादे, 'सोहन' कहे हितकार ।।करले. ५।।

卐 पथिक को प्रेरणा 卐

(तर्ज– पूर्ववत्)

ले ले अयि पंथी प्यारे ! नर होने का सार ।। टेर ।।

मात पिता अरु कुटुम्ब कबीला, घर की सुन्दर नार।
स्वारथ से सब जी जी करते, नहीं तो दे धिक्कार ।। ले० १ ।।

रात दिवस तूं घर धन्धे का, करता रहा विचार।
निज आतम का भान भूल कर, जग में हुआ खुवार ।। ले० २ ।।

कहां से आया किधर जायगा, अब तो होश सम्भार।
धर्म तत्व की सड़क साफ है, ज्ञानी रहे पुकार ।। ले० ३ ।।

धन्ना शालिभद्र ने देखो, छोड़े धन भण्डार ।
एक रात में समझा सबको, जम्बू हुए अणगार ॥ ले० ४ ॥

धर्म शरण ले मुनि अनाथी, दीने दुःख विडार ।
दशार्णभद्र राजा को देखो, इन्द्र पड़ा चरणार ॥ ले० ५ ॥

इसकी महिमा कहां तक गाऊं, बढ़ जावे विस्तार ।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे, धारो बेड़ा पार ॥ ले० ६ ॥



卐 गाफिल जाग 卐

(तर्ज– मन डोले मेरा तन डोले०)

सुकृत करले, तोषो[1] भरले, जाना है परलोक रे,
तूं गाफिल हो क्यों सोता है ॥ टेर ॥

देख देख कर घर की सम्पति, फूले मती गिवार ।
गई न किसके साथ लक्ष्मी, करले जरा विचार - अरे हां–
कमर कन्दोरा, गल का डोरा, लेंगे सब निकार रे ॥ तू० १ ॥

सब मतलब के सगे सम्बन्धी, काम न कोई आवे ।
जब लग तुझसे स्वारथ पहुँचे, तब लग गुण मुख गावे - अरे हां–
काम न आवे, सब तज जावे, है झूंठा परिवार रे ॥ तू० २ ॥

पाकर उत्तम साधन नरभव, कहो क्या लाभ कमाया ।
पूञ्जी अपनी खोकर यहां पर, उल्टा कर्ज बढ़ाया - अरे हां–
हंस-हंस लेवे, रो रो देवे, ज्ञानी रहे पुकार रे ॥ तू० ३ ॥

---

१ खजाना

जैसा बीज बोयेगा वैसा, फल पावेगा भाई ।
बोकर यहां बंबूल कहो कब, किसने केरी खाई - अरे कहां-
जैसा करेगा, वैसा भरेगा, यह जग का व्यवहार रे ॥ तू० ४ ॥

जोश बीच मत होश भूल, यह समय निकल जावेगा ।
बनी बनी में बना नहीं तो, फिर कछु नहीं होवेगा - अरे हां-
गुरु चेताते, साफ सुनाते, आगे घोर अन्धार रे ॥ तू० ५ ॥

प्रेम सहित नियम को पालो, चालो जयणा राख ।
आज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे, सुकृत के फल चाख - अरे हां-
वीर आराधो, संगति साधो, हो जावे उद्धार रे ॥ तू० ६ ॥

卐 सत् शिक्षा 卐

(तर्ज- बोल बोल आदीश्वर वावा)

धार धार या शिक्षा दिल में गुरु फरमावे रे,
गुणिजन धार रे ॥ टेर ॥

ब्राह्म मुहूर्त में शैय्या तज कर, आतम चिन्तन कीजे रे ।
प्राणी मात्र को निज सम मानी, सुख अति दीजे रे ॥ गुणि० १ ॥

देव गुरु और धर्म तत्व को, दिल में खूब रमाजे रे ।
काम पड़े पर कायम रहिजे, रंच न डीगजे रे ॥ गुणि० २ ॥

आगम वाणी सुनकर श्रद्धा, जिन वचनां पर कीजे रे ।
शंका होवे तो पूछ [1]त्वरित, निर्णय कर लीजे रे ॥ गुणि० ३ ॥

सुगुरु की संगत में जाकर, ज्ञान नयो नित लीजे रे ।
नय निक्षेपा स्याद्वाद को, रहस्य सुणीजे रे ॥ गुणि० ४ ॥

---

१ शीघ्र

आश्रव पाप बन्ध से हरदम, जग में बचतो रहीजे रे ।
संवर की करणी कर जीवन, सफल करीजे रे ।। गुणि० ५ ।।

अनित्यादिक धार भावना, नर भव लाहो लीजे रे ।
ईर्ष्या द्वेष की महाज्वाला से, दूरो रहीजे रे ।। गुणि० ६ ।।

परभव निश्चय जाणो है यो, ध्यान हृदय में लीजे रे ।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे, सुकृत कीजे रे ।। गुणि० ७ ।।



卐 मोह की प्याली 卐

(तर्ज— जब तुम्ही चले परदेश)

तूं समझ अरे नादान ! बना अज्ञान, चला है खाली,
यह पीकर मोह की प्याली ।। टेर ।।

जग एक मुसाफिर खाना है, यहां केवल आना जाना है ।
फिर भी कहता मेरे लाला लाली ।।यह० १।।

धन दौलत माल खजाना जब, नहीं रहे पास में कौड़ी तब ।
सब छोड़ यहां परलोक आतमा चाली ।।यह० २।।

रे ! ध्यान लगा कर सोच जरा, क्या गति होगी इस समय मरा ।
खोल बही तूं अपनी कभी सम्भाली ।।यह० ३।।

मुनि बार बार चेताते है, सुमार्ग तुम्हें दिखलाते है ।
नहीं मानी सीख होगई बुद्धि मतवाली ।।यह० ४।।

गुरु प्राज्ञ दया के सागर है, कहे समय बड़ा यह हितकर है ।
'सोहन' समझ तूं अब तो हे पंपाली ।।यह० ५।।



जैसा बीज बोयेगा वैसा, फल पावेगा भाई ।
बोकर यहां बंबूल कहो कब, किसने केरी खाई - अरे कहां-
जैसा करेगा, वैसा भरेगा, यह जग का व्यवहार रे ॥ तू० ४ ॥

जोश बीच मत होश भूल, यह समय निकल जावेगा ।
बनी बनी में बना नहीं तो, फिर कछु नहीं होवेगा - अरे हां-
गुरु चेताते, साफ सुनाते, आगे घोर अन्धार रे ॥ तू० ५ ॥

प्रेम सहित नियम को पालो, चालो जयणा राख ।
आज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे, सुकृत के फल चाख - अरे हां-
वीर आराधो, संगति साधो, हो जावे उद्धार रे ॥ तू० ६ ॥

卐 सत् शिक्षा 卐

(तर्ज- बोल बोल आदीश्वर बाबा)

धार धार या शिक्षा दिल में गुरु फरमावे रे,
गुणिजन धार रे ॥ टेर ॥

ब्राह्म मुहूर्त में शैय्या तज कर, आतम चिन्तन कीजे रे ।
प्राणी मात्र को निज सम मानी, सुख अति दीजे रे ॥ गुणि० १ ॥

देव गुरु और धर्म तत्व को, दिल में खूब रमाजे रे ।
काम पड़े पर कायम रहिजे, रंच न डीगजे रे ॥ गुणि० २ ॥

आगम वाणी सुनकर श्रद्धा, जिन वचनां पर कीजे रे ।
शंका होवे तो पूछ [1]त्वरित, निर्णय कर लीजे रे ॥ गुणि० ३ ॥

सुगुरु की संगत में जाकर, ज्ञान नयो नित लीजे रे ।
नय निक्षेपा स्याद्वाद को, रहस्य सुणीजे रे ॥ गुणि० ४ ॥

---

१ शीघ्र

आश्रव पाप बन्ध से हरदम, जग में बचतो रहीजे रे ।
संवर की करणी कर जीवन, सफल करीजे रे ॥ गुणि० ५ ॥

अनित्यादिक धार भावना, नर भव लाहो लीजे रे ।
ईर्ष्या द्वेष की महाज्वाला से, दूरो रहीजे रे ॥ गुणि० ६ ॥

परभव निश्चय जाणो है यो, ध्यान हृदय में लीजे रे ।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे, सुकृत कीजे रे ॥ गुणि० ७ ॥



卐 मोह की प्याली 卐

(तर्ज— जब तुम्ही चले परदेश)

तूं समझ अरे नादान ! बना अज्ञान, चला है खाली,
यह पीकर मोह की प्याली ॥ टेर ॥

जग एक मुसाफिर खाना है, यहां केवल आना जाना है ।
फिर भी कहता मेरे लाला लाली ॥यह० १॥

धन दौलत माल खजाना जब, नहीं रहे पास में कौड़ी तब ।
सब छोड़ यहां परलोक आतमा चाली ॥यह० २॥

रे ! ध्यान लगा कर सोच जरा, क्या गति होगी इस समय मरा ।
खोल बही तूं अपनी कभी सम्भाली ॥यह० ३॥

मुनि बार बार चेताते है, सुमार्ग तुम्हें दिखलाते हैं ।
नहीं मानी सीख होगई बुद्धि मतवाली ॥यह० ४॥

गुरु प्राज्ञ दया के सागर है, कहे समय बड़ा यह हितकर है ।
'सोहन' समझ तूं अब तो हे पंपाली ॥यह० ५॥



卐 क्षण भंगुर जीवन 卐

(तर्ज—पूर्ववत्)

क्षण भंगुर जीवन जान, ज्ञानी फरमान, ध्यान में धरले,
शुभ करना है सो करले ॥ टेर ॥

कच्चे घट सम यह काया है, आयु पय[1] भर कर लाया है।
विनसत नहीं होवे बार सुकृत धन भरले ॥शुभ० १॥

जिनको तूं अपना मान रहा, नहीं देंगे काम जब काल गहा।
सब खड़े देखते रहे रूह[2] जब राह ले ॥शुभ २॥

धन के कारण दिन रात फिरा, नहीं सुनने की थी सुनी गिरा[3]।
अमूल्य देह दी खोय पड़ा क्या पल्ले ॥शुभ० ३॥

कितने दिन का अब जीना है, जीवन में क्या क्या कीना है।
कुछ तो अपना लेखा जोखा करले ॥शुभ० ४॥

यहां अनन्त पुण्य करके आया, तब नर तन यह तूने पाया।
'सोहन मुनि' गुरु प्राज्ञ कथन दिल धरले ॥शुभ० ५॥



卐 क्रोध महा चण्डाल 卐

(तर्जः— पूर्ववत)

क्रोध महा चण्डाल, करे बेहाल, ज्ञान विसरावे,
निज पर का भान भुलावे ॥ टेर ॥

जब क्रोध भूत घट में आवे, तब हाथ पैर सब कम्पावे।
दोनों आंखें हो लाल, भाल चढ़ जावे ॥ निज. १ ॥

---

१ पानी। २ आत्मा। ३ वाणी।

क्या मुख से शब्द उच्चरता है, नहीं पता स्वयं को रहता है ।
खुद बिन अग्नि के जलता अन्य जलावे ।। निज. २ ।।

सम्बन्ध त्याग छिन में करता, वह पाप पिण्ड पूरा भरता ।
विष भक्षण करके क्षण में प्राण गमावे ।। निज. ३ ।।

निज देह खेह[1] सम बनवावे, चलती चिन्ता को बुलवावे ।
करदे अनहोनी हान वो शान गमावे ।। निज. ४ ।।

सब सज्जनता जड़ से जावे, वहां दुर्जनता दौड़ी आवे ।
'सोहन मुनि' तज क्रोध स्वर्ग पद पावे ।। निज. ५ ।।

त्रय ठाणों से विचरत आये, लघु पादु में आनन्द पाये ।
अक्षय तीज को जोड़ करी यह गावे ।। निज. ६ ।।



卐 चेत चेत इन्सान 卐

(तर्ज—सुख दुःख एक समान मनवा०)

क्षण में बदले शान मनवा, क्षण में बदले शान ।
मत कर तू अभिमान, मनवा क्षण में ।।टेर।।

नित नये आभूषण सज कर, मन में करता मान ।
चंचल लक्ष्मी नहीं है किसकी, क्यों होता बेभान ।।मनवा. १।।

गोरे गोरे तन को निरखी, फूल रहा तज ज्ञान ।
विद्युत्प्रभा[*] सम क्षण में क्षय हो, भूले मत मतिमान ।।मन. २।।

पुण्य साथ में है तब तक ही, माने लोक महान ।
पाप उदय हो गया समझले, पल में पलटे शान ।।मनवा. ३।।

---

१ राख * बिजली का प्रकाश ।

मेरा मेरा कह कर जग में, क्यों उलझा नादान।
काल बलि आ दम में करदे, इस तन का अवसान ।।मनवा. ४।।

सद्गुरु दे उपदेश सदा यह, चेत चेत इन्सान।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे, धरले जिनवर ध्यान ।।मनवा. ५।।



卐 करणी कर लीज्यो 卐

(तर्ज—घूडला घूमेला जी घूमेला०)

यो सुन्दर अवसर पाय, करणी कर लीज्यो जी कर लीज्यो।
यो व्यर्थ चल्यो नहीं जाय, दिल में धर लीज्यो जी धर लीज्यो।टेर।

काया है बादल की छाया, बिजली सम जाणो या माया।
नश्वर जीवन मांय, करणी कर लीज्यो जी० ।। यो० १ ।।

द्रव्य नहीं पर भव में चाले, छोड़ गये चक्री तत्काले।
या लीजो हृदय जमाय, करणी कर लीज्यो जी० ।यो० २।

पूर्व पुण्य अखूट कमाया, जद थे दश बोलां ने पाया।
भाव विशुद्धि लाय, करणी कर लीज्यो जी० ।। यो० ३ ।।

सत्संगत में समय लगावो, मुनि दर्शन का भाव बढ़ावो।
समय न व्यर्थ गमाय, करणी कर लीज्यो जी० ।।यो० ४।।

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन' गावे, परिषद सुनकर अति हर्षावे।
टॉटोटी के मांय, करणी कर लीज्यो जी० ।।यो० ५।।



चेतन जी ! सोच !!

(तर्ज—खेलण दो गणगोर०)

सोच जरा मन मांय, चेतनजी, सोच जरा मन मांय ।
अरे तूं तो भूल गयो निज काज, चेतनजी उलझ गयो जग मांय,
चेतन जी सोच० ॥ टेर ॥

धन दौलत सन्तान रु दारा, नहीं आवे कोई काम ।
अरे ओतो कुटुम्ब कबीलो स्वार्थ को है, किनको है यो धाम ।
॥ चेतन जी० १ ॥

कूड़ कपट छल छिद्र करी नित, संग्रह कीनो दाम ।
अरे तूं तो अन्तिम विरिया छोड़ चल्यो जी होकर के बदनाम ।
॥ चेतन जी० २ ॥

म्हारो म्हारो कह कर इण में, फ़ंस गयो मकड़ी जेम ।
अरे तू तो रात दिवस ही दौड़ रह्यो है, छोड़ दियो धर्म नेम ।
॥ चेतन जी० ३ ॥

जाणो है रहणों नहीं यहां पर, चन्द दिनां रे मांय ।
अरे तूं तो यो अवसर मत चूक चेतन जी खाली हाथ न ।
जाय ॥ चेतन जी० ४ ॥

प्रातः समय नित वीर भजन कर, गुरु चरणे शिर नांय ।
ए जी इम प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे, जन्म मरण मिट
जाय ॥ चेतन जी० ५ ॥



卐 कर्म मत बांधो 卐

(तर्ज—धू सा की)

बांधो मती, कर्म कभी भाया, बांधो मती ॥ टेर ॥

कर्म बांधणो सरल जगत् में, दुःख पावे भुगतण विरिया ॥बांधो. १॥
हंसी हंसी में कर्म बांध ले, छूटे नहीं हरगिज रोया ॥बांधो. २॥
मद छकियो सोचे नहीं मनमें, खबर पडे सन्मुख आया ॥बांधो. ३॥
पाप अठारा सेवन करतो, दुःख पासी दुर्गति पाया ॥बांधो. ४॥
जिसके कारण कर्म करे तू, साथ न देशी उदय आया ॥बांधो. ५॥
आखिर सब ही तज कर जाणो, भूले मती गुरु फरमाया ॥बांधो, ६॥
काट काट भव भ्रमण जाल को, समझ वक्त यह भला आया ॥बां. ७॥
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' कहे, अजमेर का सुणजो सब भाया ॥बां. ८॥

卐

卐 चौबीसी 卐

(तर्ज – रे जीवा विमल जिनेश्वर)

रे जीवा ! चौबीसों जिनराज को, नित प्रति लीजे नाम,
रे जीवा ! करम कटक दूरा टले, पावे सुख अभिराम ॥ टेर ॥

रे जीवा ! रिषभ अजित संभव, अभिनंदन सुमति पद्म सुख धाम।
रे जीवा ! सुपार्श्व, चन्दा प्रभु, नाम से हो मङ्गल काम ॥१॥

रे जीवा ! सुविधि शीतल श्रेयांसजी, वासुपूज्य अभिराम।
रे जीवा ! विमल अनंत धर्मनाथ की, सेवा दे शिव ठाम ॥२॥

रे जीवा ! शांति कुन्थु अरनाथजी, मल्ली मुनि सुव्रत नाथ ।
रे जीवा ! नमी नेम पारस महावीर का, जाप भाता लो साथ ॥३॥

रे जीवा ! गणधर ग्यारह गुणनिधि, बीस विहरमान देव ।
रे जीवा ! सोलह सतियां ने वंदतां, प्रकटे सुख अहमेव ॥४॥

रे जीवा ! राग द्वेष पतला करी, नाम लिया दुःख जाय ।
रे जीवा ! प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' थांरो जनम मरण मिट जाय ॥५॥

卐 जग में सार 卐

(तर्ज—ख्याल की)

अरिहन्त देव का, सुमिरण करना ही जग में सार है ॥ टेर ॥

क्षण में देह विनश जायेगी, जिम बादल की छाया ।
सारे धन्धे धरे रहे, जब छोड़े हंसा काया जी ॥अरि० १॥

पच पच कर मर गए अनन्ते, हाथ न कोड़ी पाया ।
पूर्व कमाई क्यों खोता है, गांठ पुण्य की लाया जी ॥अरि० २॥

मिले न ऐसा अवसर तुझको, मैल साफ कर भाया ।
सत्संगत का प्रवाह बह रहा, धोले आकर काया जी ॥अरि० ३॥

रात दिवस तू फिरे भटकता, गिणे धूप नहीं छाया ।
कोड़ी कोड़ी जोड़ जगत में, कोटिपति कहलाया जी ॥अरि० ४॥

आखिर समझ ले धर्म बिना नर, किंचित् नहीं सुख पाया ।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' ने, जयपुर जोड़ सुनाया जी ॥अरि० ५॥

卐 अपने को महकाओ 卐

(तर्ज– जपो तुम सार मन्त्र नवकार० या नवीन रसिया)

सुमरो महावीर जिन चन्द, वरते घर घर में आनन्द ॥ टेर ॥

अनादि काल से अयि चेतन ! तूं, पड़ा मोह के फन्द ।
मोक्षपुरी की राह समझ ले, मिट जावे दुःख द्वन्द ॥ सु. १ ॥

मानव भव सम मिले न तुझको, भव छेदन का कन्द ।
यदि रहा तूं सोता नींद में, खो जावे मतिमन्द ॥ सु. २ ॥

सुकृत निधि ले सदा साथ में, हो परभव आनन्द ।
नहीं तो माया जाल बीच फंस, हो जावेगा जन्द ॥ सु. ३ ॥

रहो परस्पर बड़े प्रेम से, समय यहां पर चन्द ।
रह जावेगी महक आपकी, ज्यूं चन्दन की गन्ध ॥ सु. ४ ॥

सम्वत् तेरह दो हजार में, भाणगढ़[१] सानन्द ।
तीन ठाणों से किया चौमासा, 'सोहन मुनि' कहे छन्द ॥ सु. ५ ॥



卐 भव्य - कामना 卐

(तर्ज– इक तीर फेंकता जा.)

भगवन् यही है अरजी, अक्षय सुखों का वर दें ।
कुछ और मैं न चाहूं, मुक्ति का शीघ्र घर दें ॥ टेर ॥

संगठन बना के सारे, इक तार में बन्धे हम ।
यह आत्मा हमारी, सब वैर भाव तज दे ॥भगवन्. १॥

---

१ भिणाय ।

सब प्राणी पर हमारी, सम दृष्टि नेक होवे ।
अपने समान समझें, ऐसे सुभाव भर दें ।। भगवन्. २ ।।

जिनवाणी पर हमारी, श्रद्धा अटूट होवे ।
कुकृत्य से हटा मन, सुकृत्य में लगा दें ।। भगवन्. ३ ।।

अति वीर धीर त्यागी, शुद्ध संयमी बने हम ।
निन्दा, प्रमाद, हिंसा, अपने हृदय से तज दें ।।भगवन्. ४।।

मुनि संघ यह हमारा, आदर्श पन्थ पकड़े ।
'सोहन' यह अर्ज करता, जल्दी उद्धार कर दें ।।भगवन्. ५।।



卐 नादान ! सोच !! 卐

(तर्ज– जब तुम्ही चले परदेश०)

कुछ करले दिल में ध्यान, अरे नादान, पकड़ ले जावे ।
जब काल अचानक आवे ।। टेर ।।

फंस गया जगत के फंदे में, नहीं सोच सका कुछ धन्धे में ।
खोल तिजोरी फूला नहीं समावे ।। जब. १ ।।

एक भवन बनाकर हर्षाया, ला-लाकर सबको दिखलाया ।
खूब करुंगा मौज मोद मन लावे ।। जब. २ ।।

मै इतने धन का स्वामी हूँ, मैं सारे शहर में नामी हूँ ।
यों मद में बोले मुझसा कौन दिखावे ।। जब. ३ ।।

निर्बल को खूब सताता है, धन जोड़ जोड़ हर्षाता है ।
पर समझ एक दिन छोड़ यहां सब जावे ।। जब. ४ ।।

गुरु 'प्राज्ञ' सदा चेताते हैं, कर वीर जाप समझाते हैं ।
'सोहन मुनि' यदि जग से तिरना चावे ।। जब. ५ ।।

卐 नर जीवन का सार 卐

(तर्ज–सूरदासजी के पद की)

नाथ ! मोहे दे बुद्धि इसवार,
पाकर उत्तम साधन समझूं नर जीवन का सार ।। टेर ।।

भौतिक जग की चकाचौंध से दूर रहूँ हर बार ।
कटि कंचन के चक्कर में फंस, देऊं न जन्म बिगार ।।नाथ० १।।

मिथ्या स्वांग धरु नहीं तन पर, हो मन शुद्ध विचार ।
करनी कथनी सम हो मेरी, कपट न होय लिगार ।।नाथ० २।।

आतम गुण की ओर लक्ष्य हो, जग प्रपंच परिहार ।
एक इष्ट का सच्चा सुमिरण दिल में रहे हरबार ।।नाथ० ३।।

ज्ञान ध्यान में रमण करु नित, मिथ्या प्रमाद निवार ।
सुगुरु देव धर्म ही तारक, मानू जग में सार ।।नाथ० ४।।

अन्त समय में अनशन करके, शरण ग्रहूँ मैं चार ।
शुभ भावों से कर आलोचन, लेऊं जन्म सुधार ।।नाथ० ५।।

राग द्वेष ही बीज जगत के, देऊं सद्य उखार ।
गुरु प्राज्ञ की शिक्षा 'सोहन' दे भव जल से तार ।।नाथ० ६।।

卐 होली पर शिक्षा 卐

(तर्ज–फागण की)

शिक्षा धारले २ थांरो हो जावे उद्धार ।। टेर ।।

मदमातो तू बण होली में, अपशब्दा सु बोले रे ।
भजन करन को जीभ मिली नहीं, हृदय तोले रे ।।शिक्षा० १।।

पानी मांही जीव असंख्या, ज्ञानी गुरु फरमावे रे।
बिन कारण तू ढ़ोल इन्हें, क्यों कर्म कमावे रे ।।शिक्षा० २।।

धूल धमासा कीचड़ को ले, उत्तम देह पर डाले रे।
मिनख पणां ने छोड़ रासभ[१] को, काम संभाले रे ।।शिक्षा० ३।।

हंस हंस कर के बांधे कर्म पिण, रोयां सुं नहीं छूटे रे।
मौज मजा में मस्त बना धन, इन्द्रयां लूटे रे ।।शिक्षा० ४।।

मनुष जनम को टाणो[२] पाणो, ज्ञानी कठिन बतावे रे।
सफल बना उत्तम कारज कर, सद्गति पावे रे ।।शिक्षा० ५।।

सत्संगति कर सत्पुरुषां की, जनम सफल हो जावे रे।
मदनगंज में प्राज्ञ प्रसादे, 'सोहन' सुनावे रे ।।शिक्षा० ६।।

卐 प्रेम का मन्त्र 卐

सुनादो सुनादो सुनादो गुरुवर, प्रेम का मन्त्र सुनादो गुरुवर ।।टेर।।

पुत्र पिता आपस में झगड़े, हो जाय कचहरी बीच खड़े।
सुज्ञान का जाम पिलादो गुरुवर ।।प्रेम १।।

वरण वरण में फूट पड़ी है, फिर रही मानो गेंद दड़ी है।
इसे रोकने की शक्ति बता दो गुरुवर ।।प्रेम० २।।

देश देश में इसका वासा, नर नारी हन रही है खासा।
ज्ञानावरण हटा दो गुरुवर ।।प्रेम० ३।।

फूट देवी को नमस्कार कर, कहते हैं हम सब ही मिलकर।
इसकी तो बिल्टी कटा दो गुरुवर ।।प्रेम० ४।।

गोविन्दगढ़ में 'सोहन' सुनाता, मिले प्रेम वर हमको भ्राता।
सत्वर पंथ दिखादो गुरुवर ।।प्रेम० ५।।

---

१ गधा। २ स्थान (अवसर)।

卐 संघ सिरताज 卐

(तर्ज—जब तुमहीं चले परदेश०)

हम नमन करें सब आज, संघ सिरताज, ज्हाज भव तरणी,
तुम महिमा जाय न वरणी ।। टेर ।।

तुम सरल शांत गुण ग्राहक हो, अति उत्तम संघ सहायक हो,
मन भायक लायक वाणी सुधारस झरणी ।। तुम. १ ।।

तुम विषय कषाय उदासी हो, जिन आगम के अभ्यासी हो ।
प्रतिभाशील प्रचण्ड आपकी करणी ।। तुम. २ ।।

इस श्रमण संघ के प्यारे हो, श्री नानक गच्छ उजियारे हो ।
सहन शीलता स्पष्ट कष्ट पथ हरणी ।। तुम. ३ ।।

है सदा शेर दिल रङ्ग भरा, प्रतिवादी का दिल देख डरा ।
बना स्वाध्यायी संघ मोक्ष निस्सरणी ।। तुम. ४ ।।

'श्री पन्नालाल' प्रवीण मुनि, 'सोहन' के तारक आप गुनि ।
यश सौरभ से घन फूल रही है धरणी ।। तुम. ५ ।।

卐 हुआ सवेरा जाग रे ! 卐

(राग–प्रभाती)

जाग जाग ओ सोने वाले !, हुआ सबेरा जाग रे ।
कितना वक्त आलस में खोया, अब तो जल्दी जाग रे ।। टेर ।।

क्यों तू गर्व में फूल रहा है, देख देख परिवार रे ।
कितना दिन का है यह रिश्ता, कर विचार महा भाग रे ।। १ ।।

सन्तति, सम्पति, नहीं बचावे, जब आवेगा काल रे ।
त्याग चलेगा सब ही साधन, मत कर तू अनुराग रे ॥ २ ॥

ज्ञानी जन तुझ को सतावे, मत उलझे संसार रे ।
आत्म चिन्तन में लीन थई ने प्रभु सुमिरन में लाग रे ॥ ३ ॥

मत कर कुछ विश्वास श्वांस का कब यह क्षय हो जाय रे ।
प्राज्ञ कृपा से 'सोहन' मुनि कहे, तज दे जग से राग रे ॥ ४ ॥

卐 शुद्ध विचार 卐

(तर्ज—होवे धर्म प्रचार)

हाँ होवे शुद्ध विचार, मानव जीवन में ॥ टेर ॥

दीन दुःखी जन देखे आगे, कभी न करुणा दिल से भागे ।
कर दें सुखी अपार ॥ मानव. १ ॥

मिथ्या शब्द कभी नहीं बोलें, तोल हृदय में मुंह से खोलें ।
वचन कहें हितकार ॥ मानव. २ ॥

राह बीच पर-वस्तु पड़ी हो, छुए न चाहे रत्न जड़ी हो ।
कंचन रज इक सार ॥ मानव. ३ ॥

पर नारी माता सम मानें, विषय वासना विष सम जानें ।
जागे नहीं विकार ॥ मानव. ४ ॥

सम्पत्ति संग्रह करना छोड़ें, बांट सभी में मन को मोड़ें ।
सब जन हो परिवार ॥ मानव. ५ ॥

द्वेष हृदय में कभी न आवे, सब ही समदर्शी बन जावें ।
बहे प्रेम की धार ॥ मानव. ६ ॥

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन' गावे, यह शिक्षा सब जन मन भावे।
करें धर्म विस्तार ॥ मानव. ७ ॥



卐 काट काट यम फांस 卐

(तर्ज—पपैया काहे मचावे शोर०)

समझ नर ! मत कर अब विश्वास ॥ टेर ॥

धन खातिर मिथ्या प्रपंच कर, जोड़ी धन की रास।
धर्म छोड़ कर अहो निशि ही तूं बना फिरे धन दास ॥ १ ॥

जिनके कारण दौड़ रहा है, कौन तुम्हारा खास।
कौन बचायेगा विपदा में, जब पायेगा त्रास ॥ २ ॥

विसर गया है आतम हित को, डाल गले मोह फाँस।
क्या करने को आया यहां पर, कितने दिन है वास ॥ ३ ॥

बाँध रहा है कितने पुल तूं, बना बना कर आस।
किन्तु क्षण में निकल जायगा, इस तन में से श्वांस ॥ ४ ॥

'सोहन मुनि' चेताये हरदम, चूके मत यह चांस।
मौका अच्छा तेरे हाथ में, काट काट यम फाँस ॥ ५ ॥



卐 सब त्याग चलेगा 卐

(तर्ज—दिल लूटने वाले जादूगर०)

है अटल नियम इस लक्ष्मी का, यह सदा एक सी नहीं रहे।
इसका न कभी तुम गर्व करो, यों ज्ञानी वारम्वार कहे ॥ टेर ॥

पाकर के सम्पति मत फूलो, यह आने जाने वाली है,
यह कभी हंसाती, कभी रुलाती, इसकी चाल निराली है।
विश्वास कभी मत करना बन्धव !,जो जीवन में सौख्य चहे ॥ १ ॥
मृग तृष्णा सब इसके पीछे, जग उलझ पुलझ कर दौड़ रहा,
यह काम नहीं आये कुछ भी,जब काल अचानक आय अहा !!
यों दौड़ धूप कर विरथा मानव, भारी भारी दुःख सहे ॥ २ ॥
है दुःख आय में, व्यय में भी, और दुःख सदा रक्षण मांही,
है रात दिवस चिंता का घर, तुम सुन लेना मेरे भाई।
रख अन्दर इसको ताले में, खुद बाहर भू पर पड़ा रहे ॥ ३ ॥
हे भोले मानव ! थोड़े से इस धन को पा क्यों फूल रहा,
हम चौड़े, बाजार है संकड़े, ऐसे अकड़ क्यों घूम रहा।
है नाम चंचला लक्ष्मी का, जाने में क्षण भी नहीं लहे ॥ ४ ॥
तू धर्म कर्म को गिने नहीं, निशिवासर इसका ध्यान करे,
उन्मत्त बनी धन के पीछे, तन देने में भी नहीं डरे।
हां ! आखिर में सब त्याग चलेगा, 'सोहन मुनि' चेताय कहे ॥ ५ ॥

●

卐 झट तिर जावे रे 卐

(तर्ज– साता कीज्यो जी०)

क्यों विसरावे रे, भज प्रभु नाम तेरे काम में आवे रे ॥ टेर ॥
मोह माया में फंसकर तू तो, जीवन व्यर्थ गमावे रे।
नहीं आवेला काम कोई भी, फिर पिछतावे रे ॥ क्यों० १ ॥
अमूल्य समय मिल गयो पुण्य से, लौट न पाछो आवे रे।
चला गया सो चला गया, ज्ञानी फ़रमावे रे ॥ क्यों० २ ॥
सामायिक स्वाध्याय ध्यान में, गहरो चित्त रमावे रे।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, झट तिर जावे रे ॥ क्यों० ३ ॥

●

卐 कथाओं के कवित्त 卐

वाणिज्य ग्राम के मांय, गौतम गोचरी जाय,
आनन्द संथारा ठाया, सुन वहां आये हैं ।
श्रद्धा से वंदन कर, बात कहो हर्ष धर,
अवधि ज्ञान से मुझे, इत्ता दिखलाये हैं ।
नहीं आवे इत्तो ज्ञान, आलोचो मिथ्या का स्थान,
ऐसा कह आये जब, प्रभु फरमाये हैं ।
श्रावक ने सत्य कही, क्षमा मांगो ढील नहीं,
"सोहन" तुरन्त जाय, गौतम खमाये हैं ॥ १ ॥

--- हक की कमाई ---

भूपति वृद्धा के पास, लेके आया दिल आस,
हक की कमाई रोटी, आधी मुझे दीजिए ।
कहे वृद्धा मेरी आज, आधी हक की है राज,
जुलुस प्रकाश लख, सोचा काम कीजिये ।
पूणियां उसी में काती, किया नहीं दिया बात्ती,
इसीलिये पूरा हक मेरा न समझिये ।
भूप मन समझाय, हटा दीनो खोटी आय,
"सोहन" यों बुरी आय, सदा तज दीजिये ॥ २ ॥

--- बुद्धि हीनता ---

एक सेठ देह पर, आभूषण सज कर,
चला है प्रमोद धर, विदेश के मांई रे ।
राह में हाजत आई, टट्टी जाते बेर खाई,
चला आगे वैश्या नाच, देखे हरसाई रे ।
वैश्या कहे कहूँ बात-सेठ सुन भय खात,
भूषण दे बार बार, तो भी वही गाई रे ।
टट्टी जाते बेर खाया, माल गवां दुख पाया ।
'सोहन' हो बुद्धिहीन, इज्जत गमाई रे ॥ ३ ॥

--- बुद्धि मत्ता ---

श्रृगाली कहे रे नाथ, चलो झट मेरे साथ,
समीप प्रसव काल, स्थान तो बताईये ।
लाया सिंह गुफा मांहि, देख वह घबराई,
सिंह जब आयेगा तो, बच कहां जाईये ।
इतने में सिंह आया, युक्ति से उसे भगाया,
वानर कहे रे भाया, भाग मत जाईये ।
पुनः आया देख कहे, काका लाया चुप रहे,
भागा सिंह "सोहन" यों, बुद्धि काम लाईये ।। ४ ।।

--- स्वभाव ---

सेठ सुता पान बाई, घणा लाड़ प्यार मांही,
बड़ी हुई परणाई, बड़ा घर मांई है ।
लगी टेव छोड़े नहीं, उठा लेवे देखे वहीं,
घर वाला तंग होय, पीयर भिजाई है ।
पाड़ोसी के घर जाय, डाल चोर चोटी मांय,
धरी जब बहिनों ने, गाकर सुनाई है ।
सुनी सब धिक्क कहे, तो भी वो की वो ही रहे,
'सोहन मुनि' स्वभाव, छूटे न छुटाई है ।। ५ ।।

--- स्वार्थ ---

पटेल के पूत नहीं, धन धाम भैसे मही,
और घणी आय घर, पूछे सब सार है ।
कुटुम्ब परीक्षा हित, कौन मेरा सच्चा मीत,
बिमारी का मिसकर, करे हा हा कार है ।
आके कहे परिवार, लेवेंगे सभी संभाल,
देना है दसों हजार, कौन लेगा भार ये ।
सुन सारे भाग रहे, देख यों पटेल कहे,
'सोहन' मालूम हुआ, स्वार्थ का संसार है ।। ६ ।।

--- जैसा कर्म वैसा फल ---

साधु एक फेरी देवे, मुख से वो ऐसा कहे।
भला करे भला होवे, बुरे से बुराई है।
बुढ़िया सोचे यों दिल, देखूं कैसे मिले फल,
विषयुक्त बना लड्डू, देके हरसाई है।
वृद्धा के दो पुत्र आये, मांग वे ही लड्डू खाये,
विष चढ़ा मर जाये, देख दुःख पाई है।
जैसा करे वैसा भरे, ज्ञानियों के वाक्य खरे,
'प्राज्ञ' शिष्य 'सोहन' यों, सच दरसाई है ॥ ७ ॥

--- सरलता ---

गुरु शिष्य चल आये, चेला जी गोचरी जाये,
दाता ने पकौड़े दिये, गिने तो बत्तीस है।
मार्ग में करे विचार, गुरुजी का अति प्यार,
आधे तो देंगे ही अभी, खालूं बकसीस है।
खाते खाते एक रहा, गुरुजी से आय कहा,
सुन के वृतांत गुरु, लाये नहीं रीस है।
कैसे खाया ऐसे खाया, देख गुरु हरसाया,
'सोहन' सरल मुनि, बने जगदीश है ॥ ८ ॥

--- देखा देखी का फल ---

खाती एक सेठ घर, काम करे चित्त धर,
एक दिन आये सेठ, देखा घबराई है।
पानी ला सेठानी पावे, कुल्ला सेठ छिड़कावे,
'अहो भाग' जान चित्त, अति हरसाई है।
खाती ने भी वैसा किया, खातण का दूखे जिया,
दोय लट्ठ मार दिया, पडा खाट मांई है।
देखा देखी करो मती, पुण्य बिना आज्ञावती,
मिले नहीं नारी सती, 'सोहन' सुनाई है ॥ ९ ॥

--- खोटे भाव ---

ग्वार की ढेरी पे भील, बैठा सोच रहा दिल,
भीलनी आई तो उसे, प्रेम से सुनाई है।
भील कहे सुनो-नार, गेहूं सभी बने ग्वार,
बालू सब शक्कर औ, पानी घी बनाई है।
खाये खूब तरमाल, कौन खाने देगा हाल,
भील बोला दोनों सिवा, सारे मर जाई है।
खोटे भाव लाके जीव, नरकों की देवे नींव,
'सोहन' मुनि यों व्यर्थ, कर्म बंध जाई है ॥ १० ॥

--- निद्रालु श्रोता ---

पंडित कथा सुनाय, भक्त एक नीन्द मांय,
देखे स्वप्न नर एक, वस्त्र लेने आयो है।
कपड़ा को मोल कीनो, ग्राहक उत्तर दीनो,
मारे नहीं जंची तब, भक्त दरसायो है।
लेजा लेजा कह रह्यो, झट पानो फाड़ दियो,
पण्डित भी देख कह्यो, अरे कांई कियो है।
भक्त कहे वस्त्र दीनो, कथा पानो फाड़ लीनो,
'सोहन' पण्डित मन, अति दुख पायो है ॥ ११ ॥

--- स्वार्थी वक्ता ---

राजा के समीप आय, पण्डित कथा सुनाय,
पुत्र से कहे यों आज, मुझे गांव जाना है।
कथा में प्रसंग आया, तिल मात्र मांस खाया,
अहो निशि नरक में, पड़े मार खाना है।
सुन भूप विदा दीनी, पुनः पिता कथा कीनी,
कहे तिल मात्र खाय, उसे नर्क जाना है।
आप तो बहुत खाओ, नरकों में कैसे जाओ,
'सोहन' यों स्वार्थ वश, बोले मन माना है ॥ १२ ॥

--- शून्य हृदय श्रोता ---

वक्ता सोचे दिल मांय, श्रोता घणा बैठा आय।
समझे वा नहीं देखूं यों ही माथो खावे हैं।
जांच हित वक्ता बोले, गुड भेली सेठ तोले,
मक्खियां झपट्टो मार, भेली को उठावे हैं।
सेठ देखतो ही रह्यो, हरे हरे लोग कह्यो,
सुण हरे पण्डित को, दिल दुःख पावे हैं।
सोचने की बुद्धि नांय, व्यर्थ में समय जाय,
'सोहन' हो ऐसे श्रोता, साथ क्या ले जावे हैं॥ १३

--- नारी आज्ञा ---

भूप को कथा सुनावे, पण्डित के मन आवे,
बांधने का फटा वस्त्र, राजा को दिखावे है।
केई दिन बीत गया, आया नहीं वस्त्र नया,
रानी कहे नृप! मुझे वस्त्र थान चावे है।
उसी क्षण थान आया, पण्डित को सम्भलाया,
रानी कहे गुरु आज्ञा, लोग टाल जावे है।
नारी आज्ञा जैसे यदि, प्रभु आज्ञा माने जीव,
'सोहन' आराधे धर्म, शीघ्र तिर जावे है॥ १४।

--- स्वार्थी पंच ---

हंस दम्पति ने प्रीति, काग से बढ़ायी अति,
जाती हंसणी को वहीं, काग ने रुकाई है।
काग कहे मेरी नार, दोनों में बढ़ी झपाड़,
न्याय लेने हित तब, पंचाई कराई है।
पंचों पक्ष करो मेरा, पूर्वज दिखादूं तेरा,
हंसणी है काग की यों, पंचों ने बताई है।
विष्ठा से निकाल कीट, काग कहे ये ही धीठ,
'सोहन' बडेरे हैं जो, खोटी की पंचाई है॥ १५॥

— मिथ्या बड़ाई —

वायस ने रोटी पाई, वृक्ष डाल बैठा जाई,
लोमड़ी ने देखा रोटी, मन ललचाया है ।
बोली आज मामा काग, सुना दो गायन फाग,
सुनने को मीठा राग, मेरे मन आया है ।
भेद कुछ जाना नांय, बोला रोटी पड़ी जाय,
लोमड़ी ने ली उठाय, काग पछताया है ।
सुन के मिथ्या बड़ाई, फूल गया चित्त मांही,
'प्राज्ञ' शिष्य 'सोहन' वो गांठ का गमाया है ॥ १६ ॥

— अर्थ ज्ञान करो —

दम्पति किसान एक, आपस में प्रेम नेक,
एक दिन नारी कहे, 'घृत' मेरा नाम है ।
पति कहे 'खीचड़ो' तू, आज से ही नाम दे दूं,
बछड़े को, 'मेहमान' कहें सुख धाम है ।
सम्बन्धी आये हैं घर, रस्सी लाओ कहे नर,
बांधो मेहमान सुन, भागे दूर ग्राम है ।
'सोहन' जाने ना मूढ़, जिनवाणी अर्थ गूढ़,
ऐसी दशा होय तांकी, मिले न आराम है ॥ १७ ॥

— बुद्धि मत्ता —

मियां घर चोर आई, छाजे पे बैठा है जाई,
चोर चोर मियां सुन, मुंह को निकाले है ।
दाढ़ी को पकड़ लीनी, मियां ने उपाय कीनी,
सौ सौ के दो नोट लादे, बीबी को पुकारे है ।
चोटी जो पकड़ लेगा, दुगुना ही देना होगा,
चोर सुन छोड़ दाढी, चोटी को संभारे है ।
मियां मुंह खीच लीना, चोर चट राह लीना ।
"सोहन मुनि" यों बुद्धि, संकटों को टाले है ॥ १८ ॥

— मिश्र दृष्टि का उदाहरण —

चोर आये सेठ घर, पोटें बांधी माल भर,
सेठानी चोरों को लख, मोही मन मांही है।
हो गई चोरों के साथ, उन्हें ही माने है नाथ,
देख चोर कहे बात, जार नार आई है।
पति की जो हुई नाहीं, आपणी या कब थाई,
आपस में सोच उसे, तजी वन मांही है।
दुःखी हो के पछताय, ऐसे मिश्र दृष्टि थाय,
"सोहन मुनि" ये बात, ज्ञानी फरमाई है॥ १६।

— कर्ज चुकाना होगा —

सेठ जी हमेशा जावे, कंदोई से मीठा खावे,
अच्छा अच्छा माल देख, झट तुलवावे है।
एक मास हुआ जब, कंदोई ने कहा तब,
सेठ जी दिरावो दाम, तीस बतलावे है।
सुनी दिल दुःख पाया, तीस कैसे बतलाया,
हिसाब सुनाया तब, अति पछतावे है।
'सोहन' यों कर्म कर्ज, लेगा तो होगा ये फर्ज,
चुकाना पडेगा भाई, छूटे ना छुटाई है॥ २०॥

— ज्ञान का अपात्र —

तप हित वृकासुर, वन में चले आतुर,
नारद जी मिले तब, पूछी बात मन की।
कौन शीघ्र राजी थाय, शिव को दिया बताय,
जाप करे होम करे, आहुति दे तन की।
मांग वर शिव कहे, हाथ रखूं तन दहे,
दिया तब उमा लख, चाह जगी उन की।
रुद्र मार नारी करुं, अनिष्ट से नहीं डरूं,
'सोहन' अयोग्य को न, देना कला ज्ञान की॥ २१॥

--- द्रव्य सामायिक ---

सेठ सामायिक करे, मन दौड़ा दौड़ा फिरे,
सोचा माल मांही मेरे, खूब ही कमाई है।
अच्छा अश्व देख लाऊँ, काबुल के मांही जाऊँ,
मन से गये हैं अश्व, ले लिया दौड़ाई है॥
मुनीम ने पूछा आय, दास रहा यों सुनाय,
सेठ जी काबुल मांय, गये घोड़े तांई है।
जब सेठ हाट आये, मुनीम सभी सुनाये,
"सोहन" समता विन, काहे की समाई है ॥ २२ ॥

--- बुद्धिमत्ता ---

बादशाह सभा भरी, चोबे आय खम्मा करी,
बैठाया आसनोपरि, बातें जो चलाई है।
सुन शाह हुए राजी, चोबे की जमी है बाजी,
सब ही लोगों के मन, दाह अति छाई है।
शाह को उबासी आई, चुटकी रहे बजाई,
अंगुष्ठ दिखाये चोवे, पूछी तो बताई है।
उड़ा रहे सब लोग, मैंने कहा पुण्य थोक,
"सोहन" सराहे शाह, बुद्धि की बड़ाई है ॥ २३ ॥

--- अभागा परिवार ---

दीनता से दुःखी एक, कुटुम्ब को झट देख,
देव ने कहा रे तीनों, वर मांग लीजिये।
एक एक वर लिया, देव कहे तुम्हें दिया,
घर आय बोली नार, रुपवती कीजिये।
राजा देख राणी कीनी, गर्दभो पति ने कीनी,
पुत्र वर मांगे इसे, माता कर दीजिये।
"सोहन" यों नर भव, आया है हाथों में तव,
बातों में ऐसे ही व्यर्थ, गवां मत दीजिये ॥ २४ ॥

--- कृतघ्नी जीव ---

शीत से दुःखित काय, पड़ा चूहा रस्ते मांय,
राजहंस देख उसे, पंखों में दबाया है।
ठंड मिटी काटे पंख, भूला उपकार रंक,
हित की सुनावे हंस, माने न मनाया है।
ऐसे ही कृतघ्नी जीव, विसारे किया सदीव,
नर्क तणी देवे नींव, पाप भार ढोया है।
'सोहन मुनि' यों कहे, भला यदि निज चाहे,
कृतघ्नी से दूर रहे, संकेत सुनाया है ॥ २५ ॥

--- छल-कपट ---

राज सभा बीच आय, दोषी दिया पकड़ाय,
भूप ने आज्ञा सुनाय, नाक दी कटाई है।
स्थान स्थान जुल्मी जाय, अहो ईश दर्श पाय,
कहे ऐसे लोक आय, हमें दो दिखाई है।
मेरे जैसे बनो सब, नाक कटा दिया जब,
जुल्मी कहे दिखे कहो, इसी में भलाई है।
ऐसे झूठे छली नर, प्रपंचों को फैलाकर,
फंसाले 'सोहन मुनि' सच दरसाई है ॥ २६ ॥

--- झूठा मान ---

राजहंस पास आय, काग बैठा यो सुनाय,
मेरे सम गति नांय, दर्प करी बोले है।
मुस्कराते हंस बोला, व्यर्थ क्यों मचावे रोला,
फिर भी वायस बोला, कौन मम तोले है।
हंस ने उडान भरी, चला काग जोश धरी,
थका जब जाय पड़ा, सर मांही डोले है।
"सोहन" यों झूठा मान, करके गंवाये शान,
अतः छोड़ो अभिमान, ज्ञानी जन बोले है ॥ २७ ॥

--- बुद्धिमत्ता ---

सभा बीच शाह कहे, बीरबल कहां रहे ?
जब ईश जनता को, रुप बांट रहा था।
बीरबल बोले शाह ! आप पूर्व गये वहां,
आपने जो रुप लिया, मै भी पीछे खड़ा था :
रुप और रहा नहीं, बुद्धि मुझे दीनी सही,
इसीसे तुम्हारी जीत, होगी ऐसे कहा था।
सुन बादशाह बात, मन मांही शरमात,
बुद्धि से 'सोहन' मुनि, उच्च पद गहा था ॥ २८ ॥

--- काम चोर नारी ---

सन्त तुकाजी के संग, घर आये चार सन्त,
नारी सोचे मन मांही, ये तो घर खा रहे।
सन्त गये कार्य खास, रोती नार बोली तास,
इनसे मारेगा सुन, साधु भागे जा रहे।
आके देखा साधु नांही, मूसल मांगा सुनायी,
नाहीं दिया तब सन्त, ले जाके दिखा कहे।
रुको रुको भागो मती, देख डरे क्या हो गती,
'सोहन' पापों के योग, ऐसी नारी को लहे ॥ २९ ॥

--- शून्य हृदय श्रोता ---

दोनों हाथ मांही एक-एक पैसा देवे सेठ,
साग लेने नौकर को, भेजा हरसाई है।
हाट जाते ध्यान आया, सेठजी से पैसा लाया,
किस किस पैसे की क्या, साग मंगवाई है।
वापिस आ बात कही, सेठ सुन दरसाई,
पैसा-पैसा सम भाई, भृत्य को सुनाई है।
दास कहे भूल गया, ऐसा है जो शून्य हिया,
"सोहन" बोलो ये काम, आवे किस मांही है ॥ ३० ॥

--- नीम-हकीम ---

कुछ दिन वैद्य पास, रह आया निज वास,
काम करु वैद्यगी का, ऐसी मन आई है।
रोग से पीड़ित मांजी, सेठजी खोजे इलाजी,
यही वैठा मिला उन्हें, लाकर दिखाई है।
सोचे देख वही योग, ऊँट वाला इन्हें रोग,
उसी क्षण जोश भर, मुक्की की लगाई है।
मांजी गये परलोक, सेठ घर छाया शोक,
"सोहन" हकीम नीम, अति दुखदाई है ॥ ३१ ॥

-.- बुद्धिमत्ता ---

पति से यों बोली नार, करु मैं भोजन त्यार,
किन्तु घर मांही नाथ, ईन्धन तो नांही है।
पति कहे लड़कर, जा तू पाड़ोसी के घर,
ऊपर पड़ी जो भारी, दीजे तू फिकाई है।
वही काम नारी कीनो, भेद नहीं कोई लीनो,
गाली दे के नारी फेंके, जाने यों लड़ाई है।
लोग आके समझाय, काम भी लिया बनाय,
'सोहन मुनि' ये सब, बुद्धि की बड़ाई है ॥ ३२ ॥

--- वक्र बुद्धि पुत्र ---

पिता पुत्र घर मांय, भोजन पिता बनाय,
बुलाने ग्राहक आय, जल्दी चलो काम है।
जाने को हुआ तैयार, पुत्र को कहे यों सार,
देखते रहना सब, तेरे जिम्मे ठाम है।
पीछे से आया है श्वान, खा गया सभी सामान,
पिता पूछे तब कहे, सम्भलाया धाम है।
रोको यदि आवे श्वान, किया नहीं फरमान,
'सोहन' जो ऐसा पूत, मिले क्या आराम है ॥ ३३ ॥

--- देखा देखी ---

पतिव्रता घर मांय, कूट रही नाज लाय,
पति आते देख उठी, तज सब काम को।
मूसल आकाश मांही, अधर ठहराया बाई,
देख सोचे पड़ोसन, पैदा करु ं नाम को।
उसने भी वैसा किया, निज शीश फोड़ लिया,
हाय हाय कर वही, दोष देवे स्वाम को।
'सोहन' यों बराबरी, जाने नहीं शक्ति खरी,
सच्ची भक्ति करे तब, पावे अन्तर्याम को ॥ ३४ ॥

--- झूठा सुख ---

मोहल्ले में एक श्वान, वक्त पे न खान पान,
क्षीण तन देख अन्य, श्वान आय बोले हैं।
चलो मेरे साथ भाई, रहो सदा मौज मांही,
बोला—नहीं और स्थान, सुख इम तोले है।
लड़े जो आपस मांही, नार्या बात बोले याही,
"सिताव्या की वेर" सुन, हियो ले हिलोरे है।
'सोहन' यों मिथ्यामान' खूब सुख रह्या जान,
ऐसे ही संसारी जीव, सुख मान डोले है ॥ ३५ ॥

— जैसी करणी, वैसी भरणी —

राजा सोचे दे दू ँ राज, परीक्षा लेने के काज,
दोनों पुत्रों को बुलाय, दाम दस दीने हैं।
भवन भरो सुनाय, दोनों ही आज्ञा को पाय,
एक कचरे से भर, हुशियारी गिने है।
दूसरा इत्तर लाय, छिड़का भवन मांय,
पिता देख राज दीना, अति सन्माने है।
ऐसे जग मांही जीव, कोई दे नरक नींव,
दूसरा 'सोहन' कोई, मोक्ष सुख लीने है ॥ ३६ ॥

— जैसी करणी : वैसी भरणी —

सेठ खूब धन कमा, जोड़ जोड़ करे जमा,
एक दिन घर मांही, आग प्रगटाई है ।
चारों ओर घेर लीना, सेठ अति सोच कीना,
तिजोरी में नोट पड़े, काढूं मन आई है ।
खण्ड़ एक उठा लाया, रद्दी रद्दी पत्र पाया,
देख मन पछताया, ध्यान बिसराई है ।
ऐसे ही संसारी प्राणी, दौड़ रहे धन कानी,
'सोहन' धरम तज, खोटी गति पाई है ॥ ३७ ॥

— लेणा एक न देणा दो —

मोर कूर्म प्रीति घनी, एक दिन ऐसी बनी,
शिकारी आ मयूर को, जाल मांही डाले है ।
मोर कहे छोड़ भाई, बदले में मूल्य पाई,
कछुवे के पास आई, कहे दुःख साले है ।
कूर्म सुन लाल लाया, तजो मोर ले लो भाया,
छोड़े बाद पारधी के, मन लोभ चाले है ।
कहे लाल दोय देओ, एक को वापिस लेओ,
'सोहन' ले कूर्म गया, लोभी कांई नाले है ॥ ३८ ॥

— जिसकी लाठी उसकी भैंस —

एक विप्र भैंस लाया, चोर देख ललचाया,
लठ्ठ दिखा ठहराया, कहां तू ले जावे है ।
विप्र कहे ले जा भाई, मूल्य विना लेना नांही,
बदले में लठ्ठ दे दो; चोर संभलावे है ।
लठ्ठ आया हाथ मांही, विप्र कहे जोश खायी,
जिसकी लाठी उसकी भैंस, सब जन गावे है ।
'सोहन मुनि' यों भाखे, दौड़ दौड़ सभी आके,
शक्तिशाली नर आगे, मस्तक झुकावे हैं ॥ ३९ ॥

— गुणियों का आदर —

भोज ने जंगल मांय, देखा एक कृश काय,
भील राजा मौलि उठा, धारा मांही आ रहा ।
पूछा:-किं बाधति भारः, येन देहो वक्राकारः,
एवं श्रुत्वा काष्ठहार, उत्तर सुना रहा ।
अहो मम सर्वकारः, बांधते न तथा भारः,
बाधति बाधते यथा, दिल को दुःखा रहा ।
सुनी नृप हो प्रसन्न, खूब दिया उसे धन,
'सोहन' यों गुणी जन, बड़ाई को पा रहा ॥ ४० ॥

— चोर की दाढी में तिनका —

चोर ने चुराया हार, राजा को हुआ विचार,
आज्ञा दीनी थानादार, चारों को ले आईए ।
पांच चोर लेके आया, खोड़े में उन्हें बैठाया,
प्रातः सभा मांही लाया, आज्ञा फरमाईए ।
राजा बोला दाढ़ी मांही, तृण होगा चोर वही,
खास चोर देखे दाढ़ी, झट पकड़ाईए ।
सारा भेद खुल गया, लाके हार सौंप दिया,
'सोहन' यों सही बात, छुपे ना छुपाइए ॥ ४१ ॥

— ऊँट किस करवट वैठेगा —

माली औ कुम्हार दोनों, एक ऊँट भाड़े कीनो,
निज निज माल लाद, बेचने ले जावे है ।
ऊँट साग रह्यो खाय, कुम्भकार हरसाय,
माली देख दुःख पाय, उसे यों सुनावे हैं ।
ऊँट किस करवट, बैठेगा तू देख झट,
बोझे की तरफ बैठा, मटका फुटावे हैं ।
'सोहन' अन्य की हानि, देख के हंसे नादान,
किन्तु वही भविष्य में, वैसा फल पावे है ॥ ४२ ॥

— पराई पीर जानो —

श्रेणिक सभा के मांही, मन्त्री गण बोले आयी,
सभी वस्तुओं से सस्ता, मांस बिकवाय है।
अतः सब मांस खायें, आपकी आज्ञा हो जाये,
अभय प्रधान सुन, उन्हें समझाय है।
भूप के कलेजा चावे, रात में सभी के जावे,
लाखों दाम देकर के, खुद को बचाय है।
सस्ता दीखे अन्य मांस, आके कही भूप पास,
मंत्री सारे समझे यों, 'सोहन' सुनाय है ॥ ४३ ॥

— न इधर के - न उधर के —

न्यौता आया घर मांय, सेठ रोटी नहीं खाय,
गृह नारी बोली रोटी, अभी जीम लीजिये।
सेठ ने न मानी एक, साम को जीमण नेक,
रोटी खाके घर मांय, क्यों बिगाड़ा कीजिये।
न्यात में लड़ाई हुई, जीमने को जाना नांही,
दिन भर भूखा रहा, मन मांहीं छीजिए।
सेठ सोचे इधर का, रहा नहीं उधर का,
'सोहन' यों वक्त गये, पश्चात्ताप कीजिये ॥ ४४ ॥

— सच्चे गुरु भक्त —

गुरु पास शिवा आये; देख उसे हरषाये,
अन्य शिष्यों के दिलों में, ऐसा भाव आया है।
गुरु के है पक्षपात, देख रहे हैं साक्षात्,
तथ्य को बताने गुरु, ढंग यों बनाया है।
पेट मांही पीडा भारी, कह सोये उस बारी,
भक्तों ने दवा की पूंछी, तब यों सुनाया है।
सिहनी का दूध चावे, भक्त हो सो जाके लावे,
शीश झुका शिवाजी ने, भाव दरसाया है।

दूध ले मैं अभी आऊं, फिर अन्न जल पाऊं,
वन में जा सिंहनी को, वारता सुनाई है।
सिंहनी ने दूध दिया, हरसा शिवा का जिया,
लाके गुरु हाथ दिया, कैसे पीड़ा मांही है।
भक्त जन देख रहे, धन्य २ सब कहे,
गुरु बोले तेरा जैसा, शिष्य सुख दाई है।
मेरी पीड़ा सब गई, सभी को शिक्षा यों दई,
जाने यों 'सोहन' ऐसे, भक्तों से भलाई है॥ ४५॥

--- झूंठ पाप है ---

कौरव पाण्डव बीच, युद्ध की मची है खींच,
द्रौणाचार्य कूद पड़े, कौरवों की ओर से।
अपशब्द सुनूं कान, छोडूंगा तभी मैदान,
वरना मैं पाण्डवों को साफ करुं जोर से।
भीम ने गदा उठाय, अश्वत्थामा गजराय,
मार के दिया गिराय, हा हा मया जोर से।
अश्वत्थामा मारा गया, सुनी द्रोण बोले भैय्या,
धर्म पुत्र कहे तब, हटूं युद्ध ठोर से।
उसी वक्त नन्द लाल, धर्म पे चलाई चाल,
आज तो सहज तेरे, बाजी आयो हाथ में।
आपत्ति का काल कैसा, कह दो मुंह से ऐसा,
युधिष्ठिर भी आ गये - कृष्ण जी की बात में।
बोल उठे मतो मत, अश्वत्थामा हतो - हत,
कृष्ण शंख फूंक दीनो, सुनी नहीं साथ में।
थोड़ा सा जो बोला झूठ, 'सोहन' कहे अटूट,
स्वर्ग जाते नर्क खूंट, धर्म पुत्र आ थमे॥ ४६॥

--- भींत के भी कान ---

राजा के हैं चार कान, कोई नहीं लेवे जान,
अतः जो भी केश करे, उसे मार डारे हैं।
एक दिन भज्जु नाई, केश करे बारी आई,
मारने लगे हैं तब, अरज गुजारे है।
किसी से कहूंगा नहीं, रहूँगा जीवित सही,
बात मान छोड़ दीना, आया घर द्वारे है।
किन्तु बात पेट मांहीं, दाबो पर दबी नाहीं,
वन में जा तरु तल, 'सोहन' उच्चारे हैं।
गायक वहां पे आवे, देख तरु मन भावे,
सारंगी, तबला, ढ़ोल, अच्छा बन जावे है।
वृक्ष काट बना तीनों, चीजों को ले साथ सब,
राजा की सभा में आय, गायन सुनावे है।
सारंगी ने छेड़ी तान, राजा के हैं चार कान,
किसने कहा है? ध्वनि तबला से आवे है।
ढोल कहे भज्जु नाई, सभी बात चौड़े आई।
भींत के भी कान होते, 'सोहन' सुनावे है।

--- जिद्दी स्वभाव ---

कमाने को मित्र चार, चले है तजी आगार,
लोह खान मिली तब, गांठे बांध लीनो है।
आगे जाते ताम्र खान, मिली उन्हें मूल्यवान,
जानि के बांधी है गांठें, एक मना कीनो है।
चांदी सोना बज्र मणी, आई है कीमती घणी,
तीनों बांध चले घर, चौथा तज दीनो है।
खूब धन घर लाये, एक अति पछताये,
'सोहन' यों तजे नहीं, टेकी टेक लीनो है ।। ४८ ।।

--- स्वप्न की सुन्दरी ---

एक नर रात दिन, सोचे घर नार बिन,
जीवन है शून्य मेरा, सब दुख दाई है ।
गर्मियों में कूप पास, सोता रख मन आश,
स्वप्न में विवाह हुआ, दिल हरसाई है ।
पुत्र हुआ करे प्यार, एक दिन बोली नार,
बीच में सुलावें तब, आगे सरकाई हैं ।
कूप मांही पड़ जाये, स्वप्न नार डुबकाये,
असली से क्या हो गतो, 'सोहन' सुनाई है ।। ४६ ।।

--- अपना कुछ नही ---

अंगीरा नारद ऋषी दोनों ने देखा है दृश्य,
हाठ पे अनाज खाने, छाग एक आया है ।
बनिये ने मारी लट्ठ, नारद जी हंसे झट्ठ,
अंगीरा ने पूछा तब, पिता बतलाया है ।
धन को इकट्ठा कीना, पाप कर्म बांध लीना,
छाग बन वही आज, खाने हित आया है ।
दाने पे भी अधिकार, नहीं रहा इस बार,
'सोहन' मुनि यों पाप, बांध दुःख पाया है ।। ५० ।।

--- अपने कर्म ही रक्षक है ---

शिवाजी ने की अरदास, सुनो गुरु रामदास,
गरीबों के हित यह, तालाब बनाया हैं ।
गुरुजी पत्थर लाये, उसे वहां तुड़वाये,
पानी से सहित एक, भेक निकलाया है ।
रक्षा करे कौन अब, गुरुजी ने पूछा तब,
शिवाजी ने देख निज, मान को मिटाया है ।
'सोहन' यों पुण्य पाप, बांध कर लावें आप,
वही जीव भोगे साफ, ज्ञानी फरमाया है ।। ५१ ।।

--- धर्म रंग ---

गोचरी को मुनि आये, नम्र हो बाई सुनाये,
'प्रातः' अहो ! मुनि कहे, काल नहीं जाणियो ।
बोली तब ऐसे नार, आप घर ये आचार,
हम घर बासी खाना, मुनि को बताबियो ।
श्वसुर यों सुन आया, कहे भोले महाराया,
सारा भेद खोल मुनि, सेठ को सुनाबियो ।
सुन सेठ मुनि वाणी, रंग गये धर्म मांही,
'सोहन' यों सुज्ञ बहू, धर्म में लगाबियो ॥ ५२ ॥

--- दृढ श्रद्धा ---

कबीर के घर आय, भक्त कहे इम वाय,
कहां गये ? बोली नार, काम क्या बताईये ।
आया हूँ में लेके आश, कैसे होवे पाप नाश,
नार कहे तीन नाम, राम का ले जाईये ।
दिल में आमोद छाया, मिले हैं कबीर राया,
खुशी का कारण पूछा, सुन दुःख पाईए ।
नारी से आ बोले ऐसे, तीन नाम कहे कैसे,
'सोहन' हो दृढ़ श्रद्धा, एक ही तिराईए ॥ ५३ ॥

--- मनसा पाप ---

कर्ण भी होते जो भ्रात, छहों पति होते खास,
जब ऐसे द्रौपदी के, मनोभाव जागे हैं ।
कृष्ण यह बात जान, साथ में गये उद्यान,
लगा दो डाली के फल, कहा सभी आगे है ।
पांचों ने उठाया ऊँचा, नार बोली पड़ा नीचा,
लज्जित हो सोचे पाप, मनसा का लागे हैं ।
पाप का है अंश बुरा, रहो यातें सभी दूरा,
'सोहन' यों मन से भी, पाप बंधे सागे हैं ॥ ५४ ॥

--- सत्य के पुजारी ---

सुयोधन हो हताश, आये धर्मपुत्र पास,
उपाय बतावें :—देह, छिदे नहीं बाण से।
धर्म कहे देह धारी, देखले माता गांधारी,
वज्र सम होवे सुन, चला है बेभान से।
कृष्ण मिले पूछी बात, सुनाये सभी हालात,
लगा के लंगोट जाना, सुनो बंधु ध्यान से।
शत्रु ने उपाय पूछा, उसे भी बताया सच्चा,
धर्म पुत्र 'सोहन' यों, हुए सत्य ज्ञान से ॥ ५५ ॥

--- नम्र बनो ---

भीष्म के समीप आय, धर्मपुत्र पूछे वाय,
बलवान संग कैसा, व्यवहार कीजिए।
वेत्रवती वाली कथा, सुना रहे भीष्म पिता,
सिंधु कहे सभी लाती, तू भी लाके दीजिए।
नदी कहे देख जोश, नम्र होती तज रोष,
बेतों को उखाड़ूं कैसे, आप सोच लीजिए।
समर्थ से इसी भांत, रहे वो ही सुख पात,
प्राज्ञ शिष्य 'सोहन' यों, नम्र हो रहोजिए ॥ ५६ ॥

--- बुराई छा गई ---

वन मांही देव एक, मानव को कहे देख,
दो थैले मैं देऊं तुझे, रखना संभाल के।
भलाई का आगे रख, बुराई का पीछे किन्तु,
राह बीच पलट के, घर आया चाल के।
तभी से बुराई आगे, हुई है भलाई पीछे,
बुराई सभी के दिल, छायी डेरा डाल के।
'सोहन' समझ अब, खोटी राह तजो झट,
उन्नति करो रे सब, ज्ञानी बात पाल के ॥ ५७ ॥

— श्रद्धा —

पण्डित कथा सुनावे, लोग वहां खूब आवे,
गुजरी कथा को सुन, अति हरसाई है।
ईश नाम लेवे कोई, सागर से पार होई,
गूजरी ले ईश नाम, नदी पार आई है ॥
भोजन की मनुहार, पण्डित को लेके लार,
आई नदी पूर देख, गये घबराई है।
गूजरी हो गयी पार, देखे वह आंखें फार,
'सोहन' यों कीनी कथा, श्रद्धा नहीं आई है ॥ ५८ ॥

--- श्रद्धा ---

सेठ घर एक दिन, गोचरी आनन्दघन,
गये तब सेठानी ने, अरज सुनाई है।
दम्पति में रहे क्लेशो, मिट जावे कोई ऐसो,
उपाय गुरुजी मुझे, दीजे बतलाई है।
पत्र लिख दीना उसे, क्लेश मिटा संयोग से,
कुछ दिन बाद आये, गुरु तो बताई है।
पत्र खोल जब देखा, उसमें 'सोहन' लिखा,
लड़ो तो मेरा क्या जावे, श्रद्धा सुखदाई है। ५९ ॥

--- बगुला भक्त ---

राम गये पंपासर, देखा बक वहां पर,
लिछमन सुनो यह, कैसा ध्यान मांही है।
भक्ति में है अनुरक्त, खोता नहीं व्यर्थ वक्त,
राम के कथन बीच, मत्स्य ने सुनाई है।
मेरा वंश कीना नाश, लगा बैठा और आश,
ठगों की भक्ति में आप, गये उलझाई है।
ऐसे ढ़ोंगी धोखे बाज, फैला कर जाल साज,
राम जैसों को भी देते, 'सोहन' फंसाई है ॥ ६० ॥

--- समय की सूझ ---

जंगल में गया नर, भालू मिला राह पर,
दोनों भिड़े जेब से तो, पैसे गिर आये हैं।
इतने में अन्य नर, आके बोला देखकर,
कानों को यों ऐंठ कर, क्या लेने को आये हैं।
मुंह से उगल रहा, दाम देखो उसे कहा,
मुझे भी दो कान तब, उसे पकड़ाये हैं।
लेके दाम आगे चला, टाल दोनों निजी बला,
वक्त की 'सोहन' सूझ, कैसी काम आये है ॥ ६१ ॥

--- बुद्धिमत्ता ---

भूप पास तीन भाई, आये हैं नौकरी तांई,
कहे यों हमारा काम, हाजिर जवाबी है।
शिर के सफेद और, दाढ़ी के क्यों केश काले ?
पूंछने पे कहाः- बीस साल की छोटाई है।
दूजे से पूंछा यों थांरे, मूंछ श्वेत, सिर कारे,
बार २ धोने से ही, हुई सफेदाई है।
दाढ़ी मूंछ सफाचट, माता पक्ष कहे झट,
भूप आगे 'सोहन' यों, तीजे नें सुनाई है ॥ ६२ ॥

--- भुक्त भोगों की विस्मृति ---

प्यासा भूप वन मांय, भील पास चल आय,
पानी मांग पिया तब, कुछ होश आया है।
महलों में आया संग, भील देख रंग ढंग,
नाना विध खाना खा के, अति हरसाया है।
रहा दिन दोय चार, पुनः आया निजागार,
पूछे तब वे वे खाया, नाम नहीं आया है।
'सोहन' ऐसें ही पूर्व, भोग आया जीव सर्व,
पर नहीं कह सके, ज्ञानी ने बताया है ॥ ६३ ॥

---- बुद्धिमत्ता ---

एक सिंह वन मांय, केई जीव मार खाय,
मिली तब सभी जीव, बारी बांध दीनी है।
एक एक नित जाय, शशक की बारी आय,
देरी से गया है तब, शेर रीस कीनी है।
ढील कर कैसे आया, कहे दूजा वनराया,
मिल गया हुई देरी, बता, राह लीनी है।
कूप में उसे दिखाया, देख कूदा परछांया,
'सोहन' शक्ति से बड़ी, बुद्धि काम कीनी है ॥ ६४ ॥

--- नरभव रूपी हीरा ---

बर्तनों को मांजे सेठ, धूल की ढेरी पै बैठ,
जौहरी ने ऐसा देख, उसे समझाया है।
सवा लाख का है नंग, तेरी अंगुठी के संग,
इसको बिगाड़े मती, कठिन से पाया है।
फिर भी न ध्यान देवे, वैसे ही वो काम लेवे,
सेठ ने हीरे को ऐसे, आखिर गंवाया है।
नर भव हीरा पाया, काम भोग मांही खोया,
प्राज्ञ शिष्य 'सोहन' यों ज्ञानी फरमाया है ॥ ६५ ॥

--- मिथ्या जाल ---

मौलवी जी झाड़ो देवे, मुंह से सदा ही केवे,
जल थल नभ सब, बांधू पल मांही रे।
वृष्टि हुई जोश खाई, पानी आवे घर मांही,
टपकत बूंद बूंद, नारी घबराई है।
आय बोली पति पास, चू रहा आवास खास,
जग को बांधन चले, बूंद न बंधाई है।
'सोहन' यों मिथ्या बात, बना के फंसावे धूर्त,
भोले जन रहे नित, ढोंगी से ठगाई है ॥ ६६ ॥

--- अभिग्रह पूर्ति ---

शिष्य श्री मगन जी नो, अभिग्रह धार लीनो,
भीम, चुनी, राज तीनों भाई मिल आज जी।
खली और हल्दी साजी, गौचरी में धामे ताजी,
कल्पे है आहार भाजी - नहीं तो है त्याग जी।
गौचरी को गये घर - तीनों भाई वहां पर,
तीनों वस्तु धामी तब, पत्र दीनों हाथ जी।
अभिग्रह फल गयो, पुण्य योग कैसो भयो,
मसूदा में कियो ऐसे, गुरु 'गजमाल' जी ॥ ६७ ॥

--- बड़ो का बड़प्पन ---

सट्टे के व्यापार मांय, हानि देख भाग जाय,
देने को सहस्र तीन, पास नहीं पाई है।
एक पुर मांही आया, किसी ने उसे सुनाया,
सेठ जी के यहां हानि, तीन कोटि आयी है।
सेठ जी को देखन चला, जिन्दा रहे कैसे भला,
बात सुन सेठजी ने, रकम दिलाई है।
सोचे ये तो पुण्यवान, कौन कहे नुकसान,
'सोहन' छोटों का दुःख, बड़े दे मिटाई है ॥ ६८ ॥

--- जैसा करोगे वैसा भरोगे ---

सेठ खोली दान शाल, भिक्षु पावे रोटी दाल,
एक वक्त सड़ा आटा, रखा वहां लाई है।
बेटे की बहू ने जाना, कैसे ऐसा खावे खाना,
उसी ही आटे की रोटी, सेठ को खिलाई है।
खाके सेठ थूंक दीना, बोला आज ये क्या कीना,
बहू कहे आटा वही, देते दान मांही है।
जैसा दोगे वैसा लोगे, आगे कहो क्या करोगे,
सेठ को 'सोहन' ऐसे, बहू समझाई है ॥ ६९ ॥

--- मरना कौन चाहता ---

कृश तन वृद्धा रहे, दुखी होके ऐसे कहे,
प्रभु मुझे मौत दे दो, सदा ही पुकारती ।
एक दिन घर मांही, काला सांप गया आई,
लोक कहे मांजी सांप, सुन कर भागती ।
हमेशा ही मौत चाहो, मौत आयी तो क्यों जाओ,
अजाण में बोली मरु, मरे कौन जाणती ।
सब ही को प्राण प्यारे, मुंह से भले पुकारे,
'सोहन' यों आतमायें, निज प्राण चाहती ॥ ७० ॥

--- लोभ बुरा है ---

क्षत्री - पुत्र दोनों भाई, कमाने विदेश मांही,
ऊंट पर बैठ जाये, योगी मिला भागता ।
राह में पिशाच खावे, सुन के न ध्यान लावे,
वन मांही धन ढ़ेर, देख हरसावता ।
ऊंट पर लाद चले, सोचे सारा मुझे मिले,
भूख लगी एक गया, विष मिला लावता ।
तान के लगाया छूरी, दूजा खाना खाके मरा,
'सोहन' कहे यों लोभ, भाव को बिगाड़ता ॥ ७१ ॥

--- बड़ों की कृपा ---

नया मंत्री रख भूप, गज होदे धर चूप,
बैठ के सवारी सजा, बाग मांही जावे है ।
व्यापार में आयी हानि, सेठ को व्यथित जानि,
दो अंगुली खड़ी कर, उन्हें दिखलावे है ।
सेठ ने दिखाई एक, दोनों मंत्री यह देख,
सोचे एक रखो ऐसे, भाव दरसावे है ।
बारी - बारी मिले आके. लाखों दाम दिये लाके,
'सोहन' बड़ों की कृपा, दुःख को मिटावे है ॥ ७२ ॥

--- पुण्य हीनता ---

अश्व ले सईस चला, मार्ग में मनुष्य मिला,
कहो अश्व किसका है ? कहां तू ले जावे है ?
अश्व मेरे स्वामी का है, कौन ? घोड़ा जिसका है ?
नाम बता, लेता नहीं, कारण सुनावे है ।
नाम लूं तो रोटी नहीं, मिले दिन भर सही,
खुद की दी रोटी तब, नाम वो बतावे है ।
खाने बैठा लात मारी, मिली धूल मांहि सारी,
'सोहन' यों दुष्ट नाम, दुख उपजावे है ॥ ७३ ॥

--- सुनो और सोचो ---

पांवणां से तंग भारी, मनौती मनावे नारी,
देव ! मेरे दोय दिन, नहीं आवे पांवणां ।
फिर तो तेरे चढ़ाऊं, खांड का पांवणां लाऊं,
नहीं आया तब लाके सोचे है चढ़ावणां ।
आया घर मेहमान, बेटी को बताया काम,
बेटी कहे अम्मा जाऊं, खाने को मैं पांवणां ।
सुन मेहमान भागे, देव काम कीनो सागे,
'सोहन' यों मिथ्या मांही, नहीं उलझावणां ॥ ७४ ॥

--- स्वप्न का सा खेल ---

लोभी सोया वन मांय, नींद में सुपना आय,
देव हाथ मांही एक, रुपैया दे दीना है ।
नींद में रुपैया पाया, लोभी अति हरसाया,
एक से क्या होगा, तब दूजा मांग लीना है ।
देव कहे एक दूंगा, लोभी कहे दोय लूंगा,
आंख खुली हाथ खाली, पश्चात्ताप कीना है ।
जग का सभी सामान, आंख मींची छूटा जान,
'सोहन' यों फूलो मती, कित्ते दिन जीना है ॥ ७५ ॥

--- समय सूचकता ---

सिद्धसेन दिवाकर, जा रहा था गर्व धर,
मार्ग मांही वृद्धवादी, देख आया जोर से ।
आपस में करे वाद, ग्वालों ने देखा विवाद,
भाषा सुन सिद्ध की यों, बोले हारे शोर से ।
वृद्ध जीता सीधा भाषे, गये दोनों राजा पासे,
सिद्ध वाक्य सुन भूप, कहे बोले ढ़ोर से ।
सूरी बोले देव वाणी, 'सोहन' जीते यों ज्ञानी,
समय सूचक पावे, जय सब ठोर से ॥ ७६ ॥

--- अनर्थ करे अज्ञानी ---

हो गये मांजी बीमार, बुला वैद्य लाये द्वार,
देख बोला दवा इन्हें, देनी है दुकान से ।
दोनों पुत्र संग आये, वैद्यजी उन्हें बताये,
खूब हिला - हिला देना, दवाई को ध्यान से ।
माताजी को कर पग, पकड़ हिलाई जब,
दवा दे सुलाई तब, गये मांजी प्राण से ।
'सोहन' अज्ञानी जीव, सुनकर जिनवाणी,
अर्थ का अनर्थ कर, रूले है अज्ञान से ॥ ७७ ॥

--- अपनी हानि सब ही जाने ---

किसान की भैंस मरी, रो रहा है हाय करी,
इतने में पडौसी आ, पूछे बात कांई है ।
हजार की हानि हुई, मेरी ताजा भैंस मुई,
मस्तक पकड़ बोला, दशा खोटी आई है ।
काली चीज मांही भाई, दोनों के है लाभ नांही,
पूछे भैंस वाला तेरे, कैसी हानि आई है ।
काली हांडी फूटी मेरी, जान गया व्यथा तेरी,
खुद का 'सोहन' दुःख - खुद ही के मांही है ॥ ७८ ॥

--- दुर्जनों की चाल ---

जहां चिड़ियों का नीड, आया वहां बूढ़ा गीध,
खाना देंगी तुम्हें करो, काम रखवाल का।
लाके नित्य खाना देवे, पूरी वे संभाल लेवे,
गीध मित्र बिल्ला बन, किया काम जाल का।
हमेशा बच्चों को खावे, बातें वो मीठी बनावे,
चिड़िया ने सोचा यही, गीध दूत काल का।
खाना देना बन्द किया, गीध पर भव गया,
'सोहन' पता न पाये - दुर्जनों की चाल का ॥ ७९ ॥

--- गर्व चूर २ हो गया ---

संभव अशोक सूरी, पांच सौ ध्वजाएं पूरी,
आगे रख चाले नित, वादियों को जीत के।
मन मांही गर्व छाया, विचरत आप आया,
एक दिन गांव में तो, शब्द गूंजे गीत के।
वहां थे आनन्दघन, वाद करने की सुन,
आये देख बोले क्या, चलाई रीत चीत के।
बता तू गौतम आगे, कितनी ध्वजाएं चली,
'सोहन' मिटा है गर्व, वाक्य सुन प्रीत के ॥ ८० ॥

--- भावार्थ समझो ---

विप्र अग्नि मुख होता, कथा के प्रसंग श्रोता,
सुन के आया है घर, गया वन मांही रे।
शीत से ठिठुरे काय, सोचे ताप कैसे थाय,
इन्धन बहुत पर, आग पास नांही रे।
एक विप्र सोया पाया, जान कर हुलसाया,
कण्डा लाके तांके मुख, रहा वो घिसाई रे।
विप्र जाग लठ्ठ मारी, कहां गयी बुद्धि थारी
'सोहन' भावार्थ बिन, होता दुःख थाई

--- श्रद्धाहीनता ---

विप्र के थी एक गाय, बच्चा हुआ बन मांय,
उठा के कन्धे पे उसे, घर पर ला रहा।
तीन ठग यह देख, दूर-दूर गये बैठ,
आया जब विप्र पास, एक ने ऐसा कहा।
कुत्ता कैसे उठा लाये, क्रम से तीनों ही गाये,
सुनी शंका मन आये, मूर्खता मेरी अहा।
भूमि पे वो डाल चला, ठगों का मन्सोबा फला,
'सोहन' यों श्रद्धा छोड़े, श्रद्धाहीन जो महा ॥ ८२ ॥

— बड़ों की बात मानना चाहिए —

बोला एक हंस वृद्ध, बैठ परिवार मध्य,
तरु पास उगी हुई, बेल को हटाइये।
इससे है मृत्यु दंश, सुन बोले सभी हंस,
हमें क्या मारेगी यह, व्यर्थ क्यों मिटाइये।
छाई बेल व्याध ने, बिछाई जाल फंसे तब,
कैसे छूटें ? वृद्ध बोला, मृत से हो जाइये।
जैसा कहा वैसा कीना, मृत जान छोड़ दीना,
'सोहन' बड़ों की बात, मान सुख पाइये ॥ ८३ ॥

— मूर्ख से दूर रहो —

गाड़ी हांक रहा हाली, बैलों को देता है गाली,
यह सुन पंडित के, दिल दुःख छा रहा।
गालियां क्यों देता भाई, पड़ेगी ये किस मांही,
धणी का जो नाम लेके, इन्हें तू सुना रहा।
गाड़ीवान बोला ऐसे, जानू नहीं अर्थ कैसे,
जानेगा उसी में ये ही, पड़ेगी ऐसा कहा।
विज्ञ को विचार आया, बोलकर पछताया,
'सोहन' गंवार से तो, दूर ही भला महा ॥ ८४ ॥

— पाप की पूजा —

पुत्री के विवाह मांय, गणिका लीनी बुलाय,
सेठ को पण्डित आय, बात यों बताई है ।
दोष है लगन मांय, सेठ बरणी बिठाय,
एक मास तक बैठा, रात दिन तांई है ।
वैश्या तीन दिन रही, सात सौ रुपैया लही,
पण्डित जी मांगे तब, तीस दिलवाई है ।
'सोहन' यों जग मांय, पाप ही पूजा लहाय,
पण्डित रुपैये ले के, बात या सुनाई है ।। ८५ ।।

— निज दुःख से ज्ञान —

चोर थैली उठा लाया, बारह सौ का नोट पाया,
पता भी थैली वाले का, उस मांही पाया है।
केई आये विज्ञापन, परन्तु चोर के मन,
वापस लौटा दूं ऐसा, भाव नहीं आया है ।
अपना दस का नोट, खोया लगी दिल चोट,
सोचे कित्ता दुःख मैंने, उसे पहुंचाया है ।
वापिस ले जाके दीनी, कृतज्ञता मान लीनी,
'सोहन' ये अनुभव, निज से ही आया है ।। ८६ ।।

— जैसा को तैसा —

घड़ीसाज पास आय, घड़ी दे के यों सुनाय,
ठीक करने के आप, लोगे क्या बताइए ।
लगे जिसके आधे लूंगा, ठग बोला वही दूंगा,
अभी कर देता त्यार, आप लेते जाइए ।
उसी वक्त ठीक कीनी, आधी कीमत मांग लीनी,
एक दे तमाचा कहे, आधी भर पाईए ।
वो तमाचा देके लीनी, अतः आधी तुम्हें दीनी,
'सोहन' यों लोभ वश, कभी ना ठगाइए ।। ८७ ।।

— जिद्द अच्छी नहीं —

तीन मित्र गोठ कीनी, मालपुवा खीर फीणी,
लेके सभी साथ रेती, ढ़ेर पर आये है।
जीमने को बेला आई, देखी रस्सी रेत मांही,
एक ने धूलि हटाई, दूजा पास आये है।
धूली आवे सो हटावे, जानकार समझावे,
नही मानी तब वहां, कुत्ती निकलावे हैं।
मरी कुत्ती देख आगे, नाक भौं सिकोड़ भागे,
'सोहन' उचिन्दे सो ही, अति दुःख पावे है ॥ ८८ ॥

--- सच्चा पुत्र ---

माता कहे पुत्र आना, लोटा भर पानी लाना,
पानी लेके आया तब, मां को नींद आई है।
खड़ा रहा प्रातः तांई, माता देख घबराई,
कष्ट सहा सारी रात, क्षमा मांगे माई है।
मैंने कहां दुःख सहा, नव मास तक अहा,
तेरे पेट मांही रहा, कित्ता दुःख पाई है।
तेरा उपकार भारी, जाऊं नित्त बलिहारी,
'सोहन' सपूत पूत, सदा सुखदाई है ॥ ८९ ॥

---जैसा अन्न वैसा मन ---

महलों में विप्र आया, हार देख उठा लाया,
घर आके सोचे ऐसा, आया क्यों विकार ही।
पत्नी को आकर कहा, कैसा अन्न आज ग्रहा,
नार बोली सोनी जी से, आया था अबार ही।
पूंछी सारी बात उसे, स्वर्ण चुरा लाया पैसे,
उसी का खरीदा अन्न, बोला यों सुनार ही।
नृप को जा दिया हार, विप्र कहे सब सार,
'सोहन' अन्याय आय, बुद्धि दे बिगार ही ॥ ९० ॥

--- सत्य का प्रभाव ---

काफ़िले की सुन बात, विप्र पुत्र हुआ साथ,
माता दीनी सीख सत्य, कभी मत छोड़ना ।
कंथा में रक्खी दीनार, राह मांही चोर चार,
लूट के सभी को आये, पुत्र को दी ताड़ना ।
कंथा चोरों को दे दीनी, देख उसे पुनः कीनी,
पुत्र कहे मोहरे हैं, इनको सम्भालना ।
पूछे चोर कैसे कही, पुत्र ने सुनाई सही,
'सोहन' मुनि यों चोर, चोरी को दी त्यागना ।। ९१ ।।

--- त्यागी विरले ही है ---

सेठ करे हर साल, जीमन में लाडू दाल,
विप्रों को बुलाय वह, मोद से जीमावे है ।
एक त्यागी विप्र आया, पंक्ति में उसे बैठाया,
तृप्त हुए भोजन से, सेठ यों सुनावे है ।
एक लाडू और खावो, रुपैया थे एक पावो,
त्याग चला सेठ बोला, खालो लाख आवे है ।
मेरे जैसा दाता और, मिलेगा न कहीं ठोर,
'सोहन' कहे रे त्यागी, विरला ही पावे ।। ९२ ।।

--- नाम का भूखा फसता है ---

सन्यासी शिष्यों के साथ, आये सुन फैली बात,
भेंटणा चढ़ावे पर, हाथ न लगावे है ।
त्यागी सन्त जान आवे, सेठ थैली भर लावे,
लेंगे नहीं नाम होगा, भेंटणा चढ़ावे है ।
शिष्य ने अन्दर लेली, सोचे सेठ आवे थैली,
साधु बोले रक्खें उसे, भाव से जो लावे है ।
त्यागी जान पास आया, माल गंवा दुःख पाया,
'सोहन' फंसेगा वो जो, झूंठा नाम चावे है ।। ९३ ।।

--- आतम समा सब जीव ---

माता कहे वृक्ष छाल, लेके आना सद्य चाल,
राह में सोचे यों लाल, जीव वृक्ष मांही है ।
छाल लूंगा होगा दुःख, सारे जीव चाहे सुक्ख,
अतः छाल अपनी ही, दे दूं मन आई है ।
चमड़ी उत्तार लावे, माता देख दुःख पावे,
तब पुत्र नामदेव, बात यों सुनाई है ।
जैसा सुख मुझे भावे, वैसा सब प्राणी चावे,
'सोहन' अनोखी चोखी, सन्त की बड़ाई है ॥ ९४ ॥

--- ठगों की जाल ---

कंदोई की हाट आके, ठगों ने बनाई बातें,
दीजिए सहस्र पेड़े, रुपय्ये ले लीजिए ।
दो सौ अभी ले लो दाम, शेष फिर देंगे शाम,
चल आया सराफां के, जेवर दे दीजिए ।
आठ सौ का ले सामान, कंदोई से कहे आन,
आठ सौ दे देना इन्हें, भूल मत कीजिए ।
पेड़ा गिने, मांगे दाम, वो तो गया निज ठाम,
'सोहन' ठगों से सदा, सावधान रीजिए ॥ ९५ ॥

--- दो नारी भरतार ---

चोर आया सेठ घर, देखे हाल वहां पर,
दोनों नारी कर पग, पकड़ के ताने हैं ।
सेठ रहा घबरायी, बोले अच्छी मौत आयी,
सारी देह खून भरी, दुःख प्रभु जाने है ।
प्रातः चोर बांध लाये, भूप सेठ को बुलाये,
परणा दो दोय नार, सदा सुख माने हैं ।
फांसी दे दो चोर कहे, दोय नार नहीं चहे,
'सोहन' दो नार जहां, घर वे मसाने हैं ॥ ९६ ॥

--- क्षमा ---

संतो में था लघु सन्त, लागे है क्षुधा अत्यन्त,
देख के तपस्वी उसे, सदा ही धिक्कारते ।
किन्तु था वो क्षमा वीर, सुन बात नमा सिर,
कहे धन्य आप नित्य, ममता को मारते ।
पर्व दिन लाया अन्न, देख के तपस्वी जन,
थूक के कहे है कैसा, आज भी न टारते ।
लघु मुनि क्षमा धार, कहे मुझे है धिक्कार,
'सोहन' हो केवली वो, जनम सुधारते ।। ९७ ।।

--- मध्यस्थ पुरुष ---

करे बंटवारा भाई, सारी चीजें ली बंटाई,
एक अंगूठी के लिये, हुयी यों लड़ाई है ।
एक कहे मैं लेऊंगा, दूजा कहे नहीं दूंगा ।
केई आये समझाने, समझ न आई है ।
एक सेठ वहां आया, अंगूठी ले घर धाया,
वैसी बना एक एक, दीनी कर मांही है ।
झगड़ा मिटाय दीना, जग में वो यश लीना ।
'सोहन' उदार नर, देवे समझाई है ।। ९८ ।।

--- सच्चे स्वामी ---

सांझ समै नित नाई, पग चंपी करे आई,
एक दिन घर तंगी, मन को सताई है ।
अंगूठी निकाल लीनी, लाके उसे वेच दीनी,
राणाजी का ध्यान गया, खोज करवाई है ।
अर्थाभाव से ही लीनी, वेतन दुगुनी कीनी,
तेरी नहीं भूल, भूल-मेरी दरसाई है ।
ऐसे हो मालिक जब, सुख पावे भृत्य तब,
'सोहन अमर नाम, किया जग मांही है ।। ९९ ।।

--- नाम नहीं काम चाहिये ---

युवा जोश लाके कहे, सेठ नाम ऊंचा रहे,
नहीं बरदास्त होगा, हमें सुन लीजिये ।
समाज में सभी सम, कौन छोटा, बड़ा, कम,
क्रमशः लिखेंगे नाम, ऐसा अब कीजिये ।
इतने में सेठ आया, खाली पत्र देख बोला,
मेरा नाम सबके ही, नीचे लिख दीजिये ।
नाम से क्या काम भाई, सेवा धर्म सुखदाई,
'सोहन' सरल बन, ऋजु-सुधा पीजिये ॥१००॥

--- काम चोर के बहाने ---

कृषक के भाई चार, लम्बा चौड़ा परिवार,
खेती मांही हुंशियार, काम दिन रात है ।
एक भाई सोचे ऐसे, काम से बचूं मैं कैसे,
पग पट्टि बांध सोया, दूखे मेरा गात है ।
केई दिन बीत गये, मौज करे मन चाहे,
नींद में पट्टी को बांधी, दूजे स्थान आत है ।
पूछे तब कहे भाई, फिरती बीमारी मेरे,
'सोहन' यों कामचोर, करे झूंठी बात है ॥ १०१ ॥

--- दानियों की उदारता ---

कवि घर विप्र आया, ऊंचे स्थान बिठलाया,
पूछने पे कहे वह, सारी निज वारता ।
कन्या के विवाह तांई, पास नहीं एक पाई,
सुनकर बात कवि, मन मांही धारता ।
पैसा नहीं मेरे पास, कैसे पूरूं विप्र आश,
सोती नारी की चूड़ी को, हाथ से निकारता ।
ये भी ले लो नार बोली, दूजी भी दीनी है खोली,
'सोहन' वे धन्य दानी, देखिये उदारता ॥ १०२ ॥

— मातृ पितृ सेवा ही प्रमुख है —

देव सब सोचे मौन, प्रमुख बनेगा कौन,
तब यह तय कीना, भू पे घूम आयगो।
शिवजी के पास जो ही, मुख्य पद पावे वो ही,
सुन सब देवता के, बोल मन भायगो ।
सभी ले सवारी प्होंचे, गणपति दिल सोचे,
मूसक वाहन मेरा, कैसे पार जायगो ।
मायत के चारों ओर, घूम आये उस ठोर,
'सोहन' गणेश देव, मुख्य पद पायगो ॥१०३॥

— नवकार मत्र की श्रद्धा —

मथुरा निवासी चोर, लोहखुरा अति घोर,
चोरी में पकड़ उसे, लाये सेठ द्वार से ।
शूली आज्ञा राजा देय, फिट फिट लोक केय,
मसाणों में करे शोर, दुःखी शूली मार से।
प्यास लगी चोर कहे, जिनदत्त सुनी अहे,
पानी लाऊं जाप-जप, मंत्र दुःख टार से ।
श्रद्धा रख जाप कीना, चोर स्वर्ग पद लीना।
'सोहन' शरण लेय, तिरा नवकार से ॥१०४॥

— नवकार मत्र की श्रद्धा —

श्रावक था गुप्त सेठ, नगर में पूरी पेठ,
सुता है श्रीमती जिन, जिन धर्म पाले है।
रुप देख मिथ्यामती, करे धर्म बनावटी,
सेठ ने इसी के संग, ब्याही घर चाले है।
मिथ्या धर्म देख करी, सेठी रही नहीं डरी,
पत्नी को मारन काज, सर्प घट डाले है ।
ले आओ फूलों की, माल 'सोहन' आदेश पाल,
नवकार जप माला फूल, की निकाले है ॥१०५॥

— अपने को देखो —

सोते वक्त सेठ नित, नेत्र में काजल आंजे,
प्रातः उठ हाथ फेरे, मुख पे स्वभाव से ।
एक दिन हुई देरी, नींद खुली हाथ फेरी,
चाबियां संभाल चला, हाठ पे उच्छाव से ।
देख के मजाक मांही, लोक बोले सेठ तांही,
काला मुंह कैसे ? सुन, गालियां दे ताव से ।
हाठ मांही कांच देख, समझा 'सोहन' सेठ,
निज भूल मान माफी, मांगता है भाव से ॥१०६॥

— दुनियां दुरंगी —

पिता पुत्र दोनों साथ, अश्व चढ़ी गांव जात,
लोक देख कहे यां की, बुद्धि तो बेढ़ंगी है ।
शब्द सुन शीघ्र बाप, पैदल हुआ है आप,
लोग कहे पुत्र धीठ, ज्ञान पर कंगी है ।
दोनों ही पैदल चले, लोग कहे कैसे हैं ये,
साथ में सवारी पर, मति तो बेरंगी है ।
जगत का यही हाल, इसका तजो खयाल,
'सोहन' कहे रे यह, दुनियां दुरंगी है ॥१०७॥

— दूसरों को सम्मान दो —

नदी के प्रवाह मांही, बहता पत्थर एक,
नारिकेल वृक्ष नीचे, पड़ा जब आन है ।
वृक्ष फल बोला ऐसे, अपमान सहे कैसे,
टोल हो पड़ा है मूढ़, नहीं कुछ भान है ।
पत्थर बना है देव, फल तोड़ा ततखेव,
चढ़ाया उसी को तब, खोयी निज शान है ।
चाहे जो सम्मान नर, छोटों से भी प्यार कर,
'सोहन' सरल मना, पाता नित मान है ॥१०८॥

--- लालच बुरी बला ---

योगी के समीप सेठ, अरज करे यों बैठ,
यदि आप राजी हैं तो, ऐसा वर दीजिये।
जिसके लगाऊं हाथ, वही चीज सोना बने,
कुछ भी न कमी रहे, मालोमाल कीजिये।
योगी से लेकर वर, आया सीधा निज घर,
रोटी, बहू, छुए तब, सोना देख छीजिये।
लोभी बोला दुःखी होय, लालच न कीज्यो कोय,
'सोहन' सन्तोषामृत, सभी जन पीजिये ॥ १०९ ॥

--- वचन भी शस्त्र है ---

काष्ठहार वन जावे, काष्ठ भार नित लावे,
एक दिन शेर मिला, आया पास सटके।
सिंह पैर घाव देख, पट्टी बांध कीनो सेक,
प्रसन्न हो काष्ठ भार, गांव पास पटके।
एकदा हुई है देरी, बोले कठिहारो जेरी,
सोहन यों शेर कहे, इतना क्यों झटके।
तू है मेरा उपकारी, वरना देता मैं मारी,
मिटे शस्त्र घाव पर, बोली बोल खटके ॥ ११० ॥

--- सत्य ही भगवान है ---

बद्रीनाथ विप्र जावे, चौधरी के गांव आवे,
कथा सुन बोला मेरी, सुपारी ले जाइये।
बद्री के हाथों में देना, नहीं तो वापिस लाना,
जाकर दिया तो हाथ, बाहर को आइये।
सुपारी ले हाथ गया, पुनः आ उसी को कहा,
मुझ से भी लें लें ऐसा, उपाय बताइये।
सच बोलो, प्रभु मिले, प्रातः उठ विप्र बोले,
'सोहन' मध्याह्न हुई, ईश कैसे पाइये ॥ १११ ॥

— जैसी नीयत वैसी बरकत —

काष्ट भारी लेने काज, कठिहारो सजो साज,
बन में गया तो प्यास, उसको सतावे है ।
सर तट बैठा आई, कुल्हाड़ी गिरी है मांही,
त्राहि त्राहि सुन देव, ढांढस बंधावे है ।
सोना चांदी रतनों की, कुल्हाड़ी लाता है देव,
भील ने मनाही की तों, लोहे की ले आवे है ।
देख कहे यही मेरी, देव सोचे नीति खरी,
'सोहन' प्रसन्न होके, सभी दे के जावे है ॥११२॥

— सहायक बनो —

दो ऊंटों के पीठ पर, बोझा धर चला नर,
चढते चढाई दुःखी, होय एक बोलियो ।
थोड़ा सा तू भार लेनी, दूजे ने मनाई कीनी,
आगे जाते थका ऊंट, प्राण तज चालियो ।
स्वामी अब सारा बोझ, दूजे पे डाले है रोज,
भार से दुःखित होय, दिल मांही सोचियो ।
यदि मैं बंटाता भार, पड़ती न खानी मार,
'सोहन' दुःखों को सब, आपस में बांटियो ॥११३॥

— भूखसिंहजी का मुजरा —

भूख से पीड़ित एक, राजपूत रावले के,
द्वार पे खड़ा है कुछ, भोजन की चाह से ।
अन्दर से दासी आई, बात उसे समझाई,
भूखसिंह मुजरा, कहावे राजमाय से ।
दासी ने जा बात कही, उत्तर मिला है यही,
नीराल बाई जी थांका, वारणा लिराय छे ।
सुनी के ठाकुर चला, यहां क्या मिलेगा भला,
'सोहन' भूखों के घर, आश फले काह सें ॥११४॥

— दूध के कटोरे को मत ढोलो —

भूखा महमान आया, घर में उसे बिठाया,
दूध में घी डाल सद्य, कटोरा मंगावे है।
'थका हूं मैं सोच कर, धोने लगा पांव कर,
देख यों कहे रे भाई, रुको पानी आवे है।
बात कुछ सुनी नांही, खोया सब धोने मांही,
भूख जो सताई तब, अति पछतावे है।
देह को कटोरा जानो, दूध सम आयु मानो,
'सोहन' भोगों में प्राणी, व्यर्थ ही गमावे है ॥११५॥

— मीठी वाणी का प्रभाव —

बुढिया के घर मांय, चार चोर घुसे आय,
देख बोली आओ बेटा, सभी चीजें थांरी हैं।
चोर कहे हल्ला छोड़, ना तो देंगे शिर फोड़,
सभी माल बांध कर, जाने की तैयारी है।
वृद्धा कहे ठंडा पाणी, पीओ थोड़ा सुन वाणी,
पानी पीके स्वच्छ दिल, देख यों विचारी है।
सभी माल छोड़ दीना, वृद्धा को नमन कीना,
'सोहन' मिठोड़ी बोली, सब को ही प्यारी है ॥११६॥

— जैसा को तैसा —

दक्ष नर परदेश, चला है मालव देश,
भूख लगी तब वह, गांव मांही आवे है।
गेहूं का आटा तुलाय, ब्राह्मणी को दीना लाय,
रोटियां बना दो कह, घूम कर आवे है।
भाणे देख जौ की रोटी, समझा है नीत खोटी,
मां जी से पूछा तो कहे, हवा से हो जावे है।
घीके मिस पात्र लीना, ठीकरा ला पुनः दीना,
'सोहन' जैसा को तैसा, कोई मिल जावे है ॥११७॥

— स्वार्थ का संसार —

जग है स्वारथ वाला, मुनि उपदेश आला,
सुनी सेठ परीक्षा का, करता विचार है।
घर आई थम्भों बीच, पैरों को फंसाया खींच,
मृत सा पड़ा तो लोग, आ गये तत्कार है।
निकले न पैर जब, तोड़ो थम्भा कहे सब,
नारी कहे काटो पैर, लाश में क्या सार है।
सुन सेठ दिल धारी, मुनि कही सच्ची सारी,
'सोहन' समझ पाया, स्वार्थ का संसार है ॥११८॥

— पुण्य ही रक्षक है —

कपोत दम्पती साथ, आपस में करे बात,
उसी क्षण पारधी आ, करता संधान है।
ऊपर को बाज एक, कपोती रही है देख,
कहे नाथ ! दोनों मरे, लगते ही बाण है।
इतने में सर्प आया, बधिक को काट खाया,
छूट तीर जा के लगा, बाज निष्प्राण है।
दोनों गये यम लोक, दम्पती का टला शोक,
'सोहन' रक्षक नित्य, पुण्य ही प्रधान है ॥११९॥

— अवसर का लाभ लो —

गरीबी हालत मांही, घर से चले दो भाई,
सेठ पास आई उन्हें, अरज गुजारी है।
सेठ बोला ससम्मान, तुम्हें देता दो दुकान,
पर लेओ मेरी मान, शर्त यों उच्चारी है।
मेरे आने के पश्चात्, दूंगा नहीं पाई जात,
पहले निकाल लोगे, पूंजी वो तुम्हारी है।
एक ने उठाया लाभ, दूजे न गंवाई आब,
'सोहन' मनुष्य बन, तुमने क्या धारी है ॥१२०॥

— गुरु आज्ञा स्वीकारो —

केई जन आय मिले, कमाने विदेश चले,
मार्ग भूल दुःख पाये, राह भय कारी है ।
दुःखी देख दया लाके, दयालु बोला यों आके,
चलो मेरे साथ तब, कीनी इनकारी है ।
आये संग दोय चार, दिखा उन्हें रत्नागार,
कहे तुम ले लो माल, इच्छा अनुसारी है ।
रत्न भर साथ लाये, देख सभी पछताये,
'सोहन' वे सुख पाये, गुरु आज्ञा धारी है ।। १२१ ।।

— छहों दिशा पूजिये —

सेठ ने अन्तिम सीख, दीनी है पुत्रों को ऐसे,
छहों दिशा पूज फिर, भोजन को पाइये ।
पिता की मृत्यु के बाद, छहों दिशा पूजे भ्रात,
रहस्य न जाने कोई, योगी समझा गये ।
पूर्व दिशा मात तात, दक्षिण भगिनी भ्रात,
पश्चिम श्वसुर, ज्ञाति-उत्तर बताइये ।
उर्ध्व दिशा देव गुरु, भृत्य वर्ग अधो दिशि,
'सोहन' दिशा पूजा का, ज्ञान इम पाइये ।।१२२।।

— फूलों की शय्या : सजा का स्थान —

शय्या पे बिछाने काज, फूल लाई भर छाब,
बिछा के सो गई दासी, निद्रा झट आई है ।
बादशाह देख हाल, हुक्म करे तत्काल,
कौड़ों की उड़ावो मार, दासी हरसाई है ।
दासी को बुला के पास, पूछा कैसे आई हांस,
'सोहन' निडर होय, दासी ने सुनाई है ।
मैं तो एक बार सोई, उसकी भी मार खाई,
गति क्या होवेगी नित्य, आपकी पोढाई है ।।१२३।।

— झूठी शान मत रखो —

कोटीपति सेठ एक, मन में विचारे ऐसे,
मीष्ठान्न बना के सारी, न्यात दूं जिमाई रे।
निमन्त्रण दे बुलाय, पंगत दीनी बिठाय,
सेठ खुद छाब लेके, पापड़ रखाई रे ।
क्रम से पापड़ धरे, खाण्डो देख तन झरे,
बड़ी[1] लेऊं मन करे, मकान बिकाई रे।
कोटीपति को बुलाय, खाण्डो रख हरसाय।
'सोहन' यों दुःख पाय, झूंठी शान मांई रे ॥१२४॥

— तप का विष : क्रोध —

विप्र एक क्रोध करी, कुटुम्बी से खूब लरी,
नदी तीर तप धरी, ऊभो ध्यान मांही है।
मास–मास तप करे, पानी बूंद मुख धरे,
तप से इन्दर डरी, अवधि लगाई है ।
क्रोध युक्त तप देख, समझावे रेत फेंक,
विप्र कहे मूर्ख ! तब, इन्द्र ने सुनाई है।
आना चाहूँ तेरे पास, विप्र बोले मूर्ख खास,
'सोहन' यों क्रोध युत, तपस्या भी नांही है ॥१२५॥

--- वाणी : खानदानी का चिन्ह ---

राजा ले सवारी खास, जा रहे नगर पास,
मिला एक सूरदास, भूप बतलावे हैं ।
सूरदास जी म्हाराज, सूर कहे सिर ताज,
पीछे आये मन्त्री राज, बोलो सिर नांवे है।
सूरदास जी राम राम, मंत्री बाबू ! राम राम,
शब्द देता है आराम, पीछे दास आवे है।
आन्धा भाई राम राम, बान्दा भाई राम राम,
'सोहन' जो जैसा बोले, वैसा सुन पावे है ॥ १२६ ॥

---
[1] बदला

--- आग की पाग ---

यादव के नाथ-भ्रात, धन्य जांके मात तात,
गज सुखमाल कुल - जात को उजाल ली।
सुन वाणी नेम मुख, पाया है परम सुख,
काटन करम दुःख, वेला को संभाल ली।
मिले है अनन्त बार, मात तात परिवार,
'सोहन' सम्पति छार, दीक्षा जग - सार ली।
जाय के मसाणे ध्यान, पाने हुं को मोक्ष स्थान,
आग हुं की पाग धन्य, शीश पर धार ली ॥ १२७ ॥

--- मजाक ठीक नही ---

मित्र दोय साथ चले, बदरी, शंकर भले,
एक दूसरे में बात ऐसी छिड़जाइये।
बदरी कहे रे भाई, मेरे मन ऐसी आई,
'शं' की बिन्दु दे हटाई, शकर बन जाइये।
सुन के शंकर कही, तेरे बिन्दु दे लगाई,
बन्दरी बनी के भाई, नाच दिखलाइये।
बदरी लजाया सुन, हांसी का ही पाया फल,
'सोहन' मजाक किये, बेइज्जती पाइये ॥ १२७ ॥

--- नकली से असली ---

एक चोर चोरी काज, आया नृप महलात,
महाराणी बोली नाथ, अर्जी सुन लीजिये।
ब्याह योग्य हुई बाई, उसे देवें परणाई,
भूप कहेः—कल साधु—मण्डली में खोजिये।
प्रथम मिलेगा साधु, बनावे उसी की वधु,
चोर सुन चला झट, साधु हो रहीजिये।
भूप आ विनय करे, 'सोहन' [illegible],
वेष से पाई जो पूजा, असली [illegible]

--- गुलराव मत चाटो ---

सेठ सुसराल जाय, गाड़ीवान मिला आय,
लीना साथ समझाय, बोला शर्त म्हारी है।
गुलराब दो खिलाय, हां भरी के सेठ लाय,
भाणे में मीठाई आय, करता इन्कारी है।
सेठ उसे भू पे डाल, मुख मांही ठूंसा माल,
स्वाद आया तब थाली, खाली कर डारी है।
ऐसे ही 'सोहन' सन्त, जबरन जगा खन्त,
सुना के अच्छे वृत्तान्त, करे भव पारी है॥ १३० ॥

--- बुरी शिक्षा : बुरा फल ---

सीख खोटी देवे कोई, फल पावे जीव वो ही,
एक दिन हय को वो, अज[1] सीख दीनी है।
तांगे मांही दुःख पाना, कहूं बैठे माल खाना,
खड्डे मांही गिर जाना, कही वैसे कीनी है।
हड्डी टूटी दुःख पाय, डाक्टर के पास लाय,
चाहे बकरे की अस्थि, ऐसे सुना दीनी है।
वो ही अज काम आया, किया वैसा फल पाया,
'सोहन' दे खोटी सीख, वो ही मृत्यु लीनी है॥ १३१ ॥

--- समय का क्या पता ---

मुनिजी गोचरी जाय, हवेली में घुस आय,
सेठ जी के मन तब, ऐसे भाव आये हैं।
बताऊं हवेली सारी, सुनो नाथ ! दया धारी,
हवेली के बनाने में, लाखों ही लगायें हैं।
दर्प देख मुनि बोलेः—द्वार क्यों रक्खा है भोले,
एक दिन उठा तुझे, इसी से ले जाये हैं।
सुन सेठ जग गया, धर्म मांही लग गया,
'सोहन' यों शिक्षा धार, जग तिर जाये हैं॥ १३२ ॥

[1] बकरा

--- बुद्धिमता ---

अन्धा लख दया आई, शिव बोले मांग भाई,
एक वर इच्छा हो सो, अभी ही ले लीजिये ।
बोला अन्धा हो प्रसन्न, रखो आप मेरा मन,
क्या मांगूंगा एक मांही, खैर ! दे ही दीजिये ।
सातवे मन्जिल पर, कंचन का थाल भर,
खीर खाते पोता देखूं, यही कृपा कीजिये ।
शिव सुन वर दीना, मन चाया मांग लीना,
'सोहन' यों बुद्धि से ही, सब काम सीजिये ।। १३३ ।।

--- सेवक की पहचान ---

सभा बीच आ के राजा, पूछे एक प्रश्न ताजा,
सच्चा जन-सेवी कैसा, होता दरसाइये ।
सभी निज बात कही, नृप के न जमी सही,
तभी आ किसान बोला, मेरी सुन पाइये ।
चिमनी मंगावे एक, रहस्य बतावे नेक,
तेल से प्रकाश देख, ऐसा सेवी चाहिये ।
चुप चाप जले मांही, शोर न मचावे कांही,
'सोहन' हो ऐसा भक्त, तभी जय पाइये ।।१३४।।

--- श्रम : सुख की चाबी है ---

कवि एक नृप पास, जाय करे अरदास,
दारिद्रय सतावे नाथ ! बात सुन लीजिये ।
पुत्र सोया भूमि पर, गाढ नीन्द उसे आई,
आके चने वाला वहां, कहे चने लीजिये ।
नारी सुन दौड़ी झट, पुत्र कान बन्द कीने,
सुन के जागा तो चने, मांगेगा ला दीजिये ।
'सोहन' कहे यों होती, कवियों की दशा नाथ,
धन देके भूप कहे, परिश्रम कीजिये ।। १३५ ।।

— मूर्खता हंसी का पात्र है —

राजा की सवारी आई, नमें लोग हरसाई,
भील देख बोला ऐसे, विना ही विचारी रे।
'जै हो ठूंठ सा० की' कही, सिपाही पकड़ वहीं,
कैद में धरा तो पुत्र, आके यों उच्चारी रे।
'ठूंठ पे कुठार पड़ो', कैद में इसे भी धरो,
भीलनी ने राणी से आ, अर्ज यों गुजारी रे।
म्हारो नहीं, थांरो धणी, जाण के छुड़ावो राणी,
'सोहन' यों मूर्ख नर, पावे हंसी भारी है ॥१३६॥

— बड़ों के वचन मानों —

कोटिपति सेठ एक, 'सोहन' भलाई नेक,
भतीजे का दर्प देख, सीख उसे दीनी है।
झूंठी झण्डी ना लगावो, सब माल ढंक खावो,
मुझे न सुनावो, झण्डी नव्वे लगा लीनी है।
प्रजा की रक्षा में धन, चाहे भूप सोचे मन,
मांगे अस्सो क्रोड़ तब, मना कर दीनी है।
लूट लीना जब वित्त, भतीजे का उठा चित्त,
हाय! काका! के' तो नित्त, सीख नहीं लीनी है ॥१३७॥

— पिता की सीख मानो —

सेठ लख मृत्यु पास, बुला लिया पुत्र खास,
कहे अब मुंह मोड़, व्यसनों की चाह से,
धन की कमी है नांही, मौज करो मन चाही,
बुरी वक्त आवे तब, ले दीवाल शाह से।
मिले नहीं यदि कुछ, काका से लेना तू पूछ,
काका जी से पूछ धन, पाया खूब वहां से।
प्रभु है 'सोहन' पिता, मुनि है काका के सम,
ले ले पूछ आत्म धन, छूटे जग थाह से ॥१३८॥

श्री जैन स्वाध्यायी संघ के प्रकाशन



१. सामायिक सूत्र (मूल)
२. प्रतिक्रमण सूत्र (मूल)
३. प्राज्ञ पुंज (अप्राप्त)
४. अधिक मास यन्त्रम्
५. धूल के फूल
६. तीर्थंकर लेखा
७. वल्लभ विनोद भाग १
८. ,, ,, ,, २
९. ,, ,, ,, ३
१०. ,, ,, ,, ४
११. सम्बोधना
१२ आत्म शुद्धि
१३ प्रवचन चन्द्रिका
१४. प्रवचन पचामृत
१५. प्राज्ञ गुण गरिमा
१६. चार महामंगल
१७ महकते पुष्प
१८. जैन तत्त्व शोधक ग्रन्थ
१९. धनदत्त चरित्र
२०. प्रत्याख्यान : विधि विधान
२१. थोक सग्रह
२२. दामनख चरित्र
२३. आनुपूर्वी (छोटे बड़े अक्षरों में)
२४. जैनाचार्य श्री नानक वंश परिचय
२५ पंच कथानक
२६ निर्भयसिंह चरित्र
२७. वीरसेन कुसुम श्री चरित्र
२८. गुण मंजरी चरित्र
२९. मानसिंह अभयसिंह चरित्र
३०. सप्त सरोज
३१. अमृत की सात बून्दे
३२. महाप्राज्ञ की जीवन यात्रा
३३. ज्ञान के मोती
३४ बोध सम्बोध
३५ श्री सोहन गुरु चालीसा
३६. महाप्राज्ञ श्री पन्नालालजी म. सा. जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व
३७. काव्य त्रिवेणी

प्राप्ति स्थान :

१. श्री जैन स्वाध्यायी संघ
गुलाबपुरा (राज.) ३११०२१

२. श्री प्राज्ञ महाविद्यालय
विजयनगर (राज.) ३०५६२४



:: शुभ-सूचना ::

श्री साधुजी, साध्वीजी म० सा० के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों के आवेदन पत्र आने पर पर्वाधिराज श्री पर्यूषण पर्व में स्वाध्यायी एवं व्याख्यानी श्रावकों को निःशुल्क

—: भेजने वाला :—

"श्री श्वे० स्था० जैन स्वाध्यायी संघ"

—: जो :—

विगत 48 वर्षों से जैन समाज की एक निष्ठा से सेवा करता आ रहा है।



—: जिसका :—

प्रधान कार्यालय

गुलाबपुरा (राजस्थान) में है



आप श्रावकों से भी सविनय निवेदन है कि इस संघ के सदस्य बनकर कर्म निर्जरा के भागी बनें।